

॥ ॐ ॥

वाक्य सुधा ।

मूल भाषा और विवेचन ।

लेखक,
परमहंस स्वामी योगानंद
(आलू वाले बाबा)

वेदान्त केसरी कार्यालय,
बेलनगंज—आगरा ।

१०००] संवत् १९८७ [मूल्य १)

मुद्रक और प्रकाशक—
बाबू सूरजभान गुप्त,
केसरी प्रेस, बेलनगंज आगरा।

प्रस्तावना।

आत्म बोध की प्राप्ति के हेतु विवेचन करके समझाने वाले छोटे बड़े अनेक वेदान्त के पुस्तक हैं परन्तु इस वाक्य सुधा रूप छोटे ग्रन्थ में जैसा राजयोग की ज्ञान समाधि का वर्णन है ऐसा क्वचित् ही मिलता है। योग की समाधि और ज्ञान समाधि में अन्तर है; चित्त वृत्तिका निरोध रूप योग समाधि होती है और ब्रह्माकार वृत्ति रूप ज्ञान समाधि होती है; दोनों समाधि में लौकिक वृत्तिका अभाव है। योग समाधि चित्त वृत्ति न रहने से समाधि है और ज्ञान समाधि में वृत्ति पलट कर ब्रह्माकार होजाना समाधि है उसका दृश्यानुविध और शब्दानुविध भेद से, बाह्य और आन्तर भेद से और सविकल्प, निर्विकल्प भेद से विवेचन सहित वर्णन किया है।

जो उत्तम अधिकारी है, वेदान्त की प्रक्रिया को जानता है वह इस ग्रन्थ का अधिकारी है; वह इसमें से सूक्ष्म रहस्य को ग्रहण करके स्वानुभव को प्राप्त कर सकता है।

—कर्ता।



वाक्य सुधा।



वाक्य रूपी अमृत जिसमें भरा हुआ है वह वाक्य सुधा है। अमृत का थोड़ा सा पान करने से भी पीने वालों को वह अमर कर देता है इसी प्रकार यह वाक्य सुधा छोटा सा प्रकरण होते हुए भी योग्य अधिकारियों को श्रवण मात्र से ज्ञान द्वारा अमर कर देता है। वेदान्त के अनेक ग्रन्थ हैं परन्तु नाम के अनुसार थोड़े शब्दों में अन्तिम फल को प्राप्त कराने वाला यह वाक्य सुधा ही है। इसका दूसरा नाम द्रष्टा दृश्य विवेक भी है। इसमें द्रष्टा देखने वाला और दृश्य दीखने वाला इन दोनों का विवेक भली प्रकार किया गयाहै। जैसे आत्मा और अनात्मा का विवेक, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विवेक, पंच कोष विवेक आदि आत्मबोध के साधन हैं वैसे ही यह भी साधन है। जगत् में दो ही पदार्थ हैं एक आत्मा और दूसरा अनात्मा। आत्मा अनात्मा के विवेक में जिसको आत्मा कहते हैं वह यहां द्रष्टा है और जिसको अनात्मा कहते हैं वह दृश्य है। द्रष्टा एक ही है और दृश्य अनेक हैं जितने दृश्य हैं वे सब मायिक हैं, परन्तु उनमें से कई द्रष्टा की छाया (आभास) लेते हुए आपेक्षिक द्रष्टा बनते हैं और वे किसी का दृश्य भी बनते हैं, जो वास्तविक द्रष्टा है वह किसी की अपेक्षा से रहित है वह सदा द्रष्टा ही द्रष्टा रहता है किसी का दृश्य नहीं बनता। यानी दृश्य दो हैं एक दृश्य ही रहता है और दूसरा द्रष्टा और दृश्य दोनों

वन जाता है। जो द्रष्टा, सदा द्रष्टा ही रहता है वह वास्तविक द्रष्टा है। उसीके सिवाय सब द्रष्टा दोनों प्रकार के होते हुए भी दृश्य ही हैं। द्रष्टा विकार रहित है और दृश्य विकार सहित है। दृश्य मायिक जड़ और दुःख रूप है, द्रष्टा तत्त्वस्वरूप, चैतन्य स्वरूप और सुख स्वरूप है। दृश्य में द्रष्टा का भान और द्रष्टा में दृश्य का भान हो रहा है, इस गड़बड़ी का नाम अज्ञान—अविवेक है और द्रष्टा को द्रष्टा और दृश्य को दृश्य समझने का नाम विवेक है।

इस वाक्य सुधा में समाधि के अनेक भेद और सूक्ष्म भाव-संस्कारों का वर्णन किया गया है जो समझने वालों को अत्यन्त उपयोगी हैं। इस छोटे से ग्रन्थ का कर्त्ता, कोई श्रीमान् आद्य शंकराचार्य को कहते हैं और कोई विद्यारण्य स्वामी को बताते हैं अथवा शंकराचार्य की गद्दी पर बैठे हुए किसी महात्मा ने किया हो और इसी से शंकराचार्य कृत कथन होता हो यह भी संभवित है। किसी का भी किया हुआ हो यह ग्रंथ मुमुक्षुओं को आदरणीय है। यह वाक्य सुधा वेदान्त केसरी के छठे साल के अङ्कों में शब्दार्थ रूप से आ चुका है परन्तु कई सज्जनों ने यह इच्छा प्रकट की है कि इसको विवेचन सहित समझाया जाय तो अधिक उपयोगी होगा—इसलिये विवेचन सहित प्रकट करते हैं।

रूपं दृश्यं लोचनं दृक्
तद्दृश्यं द्रष्टृमानसम्।
दृश्याधीवृत्तयः साक्षी
दृगेव न तु दृश्यते॥१॥

अर्थः—रूप का द्रष्टा नेत्र है रूप नेत्र का दृश्य है, यह नेत्र जो रूप का द्रष्टा है यही मन का दृश्य है। मन नेत्र का द्रष्टा है। मन जो बुद्धि की वृत्ति रूप है वह साक्षी का दृश्य है और साक्षी बुद्धि वृत्ति का द्रष्टा है, साक्षी किसी का भी दृश्य नहीं है। देखने वाले को द्रष्टा कहते हैं दीखने वाले को दृश्य कहते हैं। इसी प्रकार श्रोता मंता आदिक को भी समझना चाहिये। जो जिसका विषय होता है वही उसको ग्रहण करता है यानी इन्द्रियां और अन्तःकरण अपने २ विषयों को ग्रहण करते हैं।

विवेचन।

मनुष्य का जो स्थूल शरीर दीखता है उसमें बहुत अङ्ग और शक्तियां हैं जो अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त होती हैं। वह सब ठीक रीति से समझना चाहिये। दीखता हुआ स्थूल शरीर तीन परदे से युक्त है। वे तीन शरीर कहलाते हैं प्रथम कारण शरीर है जो गाढ़ निद्रा यानी सुषुप्ति में होता है। जो दोनों शरीरों के भाव में अपनी सत्ता को कायम रखते हुए उनके अनुसंधान वाला नहीं होता और जिस कारण रूप सुषुप्ति अवस्था में अबोध रूप से होता है ऐसे शरीर को जीव का कारण शरीर कहते हैं। यह शरीर अविद्या का बना हुआ है तो भी तीनों गुणों के भेद वाला नहीं है इसीसे अविद्या रूप ही कहा जाता है। जीव उपाधिकृत व्यक्तित्व वाला है परन्तु वहां उपाधि घन भाव को प्राप्त हुई होने से व्यक्तित्व की प्रतीति नहीं होती, वहां अविद्या की घनता ही उसकी उपाधि के अनुसंधान से रहित जो चैतन्य है वह ही शुद्ध आत्मा है यही द्रष्टा दृश्य विवेक का वास्तविक द्रष्टा है। इससे युक्त कारण अविद्या रूप कारण शरीर है जो

स्थूल सूक्ष्म द्रष्टि—बुद्धि इन्द्रिय का विषय नहीं है और चैतन्य के आश्रय में चैतन्यता को ढांप कर अपने कार्य सूक्ष्म और स्थूल भान को लय कर टिकी हुई आधार चैतन्य सहित अविद्या कारण शरीर है। इस आनन्दमय कोष वाले कारण शरीरमें से भोग के संस्कारों का उत्थान होता है तब तीनों गुणों के विभिन्न संस्कारों की प्रतीति सूक्ष्म शरीर कहलाता है। यह सूक्ष्म शरीर अनेक प्रकार के अङ्ग गुण और शक्तियों से वेष्टित होता है जीव भाव की पृथक्ता इस शरीर से मालूम होने लगती है। सूक्ष्म शरीर पृथक् समझने में आवे ऐसी स्वप्नावस्था है। सूक्ष्म शरीर तीन कोषों से युक्त है जो एक एक से स्थूल होते हुए भी तीनों एक सूक्ष्म शरीर में ही हैं। सूक्ष्म शरीर कारण शरीर सहित ही होता है कारण से भिन्न नहीं होता। तीन कोषों में विज्ञानमय कोष प्रथम है। विज्ञान बुद्धि को कहते हैं। बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रियों के सहित विज्ञानमय कोष होता है। कर्त्ताभोक्ता जीव विज्ञानमय ही है। अहंकार का समावेश बुद्धि में है। विषयों का पृथक् २ ज्ञान कराने वाली जो इन्द्रियां हैं वे ज्ञान इन्द्रिय कहलाती हैं वे बुद्धि मन दोनों से युक्त ज्ञान करने को समर्थ होती हैं। पंच भूतोंके अपंचीकृत अंश से प्रत्येक इन्द्रिय बनती है। पंच महाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं। जब एक दूसरों से मिल कर यह पांचां भूत घन भाव को प्राप्त होते हैं तब पंचीकृत किये हुए महाभूत कहलाते हैं। इन्द्रियां इस प्रकार भूतों के घन भाव से नहीं हुई इससे वे अपंचीकृत हैं, अपंचीकृत इन्द्रियां स्थूलता से जानी नहीं जातीं जैसे आंख, कान, नाक आदि। जिसको लोग इन्द्रियां कहते हैं वे इन्द्रियों के गोलक—द्वार हैं। स्थूल गोलक से इन्द्रियां प्रवृत्त होती हैं स्वयं वे सूक्ष्म ही हैं।

पांच ज्ञानेन्द्रिय क्रम से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तत्त्व की, कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका हैं। इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध हैं। विषय सूक्ष्म और स्थूल दोनों होते हैं। स्मृति-संस्कार में सूक्ष्म होते हैं और जाग्रत अवस्था के पदार्थ स्थूल होते हैं। सामान्यता से लोग विज्ञानमय कोष को ही जीव कहते हैं। यह विज्ञानमय कोष कर्त्ता रूप होने से करण (कार्य करने का साधन) रूप मनोमय कोष से सूक्ष्म है।

मनोमय कोष मन और ऊपर आई हुई पांचों ज्ञानेन्द्रियों से युक्त है। बुद्धि के साथ विज्ञानमय कोष में ज्ञानेन्द्रिय कर्त्ता रूप में सम्मिलित है और मन के साथ में वही करण रूप से सम्मिलित है। उसका विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। इन्द्रियां भिन्न नहीं हैं इससे विज्ञानमय और मनोमय में उसके विषय भी भिन्न नहीं हैं और विज्ञानमय कोष के समान यह भी अपंचीकृत पञ्च महाभूतों का कार्य है।

सूक्ष्म शरीर का तीसरा कोष प्राणमय है यह पृथक् चेष्टा का हेतु है, और पांचों कर्मेन्द्रियों से युक्त है। प्राण और कर्मेन्द्रियां जड़ हैं। क्रम से वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और गुदा, ये आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के कार्य हैं। कर्मेन्द्रिय क्रिया रूप हैं, इस प्रकार सूक्ष्म शरीर तीनों कोषमय है।

स्थूल शरीर वह है जिससे जगत् में सब प्रकार का व्यवहार किया जाता है। यह शरीर पंचीकृत किये हुए पंच महाभूतों का कार्य रूप है और जीवात्मा को टिकने का स्थान रूप है। स्थूल शरीर के उत्पन्न होने को जन्म और क्षय होने को मरण कहते हैं। स्थूल सब भोगों की सिद्धि उसीसे

होती है। यह शरीर कारण और सूक्ष्म शरीर सहित ही होता है। कारण और सूक्ष्म शरीरों का उनसे वियोग होता है, तब यह शरीर मृतक कहलाता है। जीवका कर्त्ता भोक्तापना और मन इन्द्रियों के करणपने की सिद्धि शरीर से होती है। इन्द्रियां और मन सूक्ष्म होते हुए भी शरीर और इन्द्रियों के गोलक द्वारा स्थूल में कार्य करते हैं। सूक्ष्म इन्द्रियां इसीसे स्थूल कार्य और ज्ञान करने में समर्थ होती हैं। स्थूल शरीर को ही अन्नमय कोष कहते हैं। यह अन्न से ही बनकर अन्न में टिकता है और अन्न रूप पृथ्वी में नाश होता है।

ऊपर बताये हुए तीन शरीर और पांच कोष एक एक से हीन और एक एक से श्रेष्ठ हैं। मुख्य आत्मा है, बाद बुद्धि, मन, इन्द्रियां और विषय हैं। इसी प्रकार क्रम से तुच्छ होते हुए भिन्नता वाले होते हैं। आत्मा का प्रकाश सर्वत्र है वह जिस २ उपाधि से युक्त होता है उस २ उपाधि में कार्य करने का उसे सामर्थ्य होता है। आत्मा वास्तविक द्रष्टा होने से मायिक पदार्थ में आपेक्षिक द्रष्टापना उसीके प्रकाश-आभास से आता है। अपेक्षा उपाधि की है और द्रष्टा का अंश प्रकाश है।

एक स्थान पर दो मनुष्य बात कर रहे थे। विषय पिता और पुत्र का चलता था तब एक मनुष्य बोलाः—"कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र है, सब ईश्वर की लीला है।" जगत् के व्यवहार के हेतु पिता पुत्र का नाता है वास्तविक तत्त्व तो एक ही है।

तब दूसरा मनुष्य बोलाः—पिता और पुत्र किसी प्रकार से एक नहीं होते, पिता पिता है और पुत्र पुत्र ही है, दोनों का शरीर भिन्न २ है।

प्रथम पुरुष बोला:—व्यवहार के निमित्त भिन्नता है, वस्तुत: जो पिता है वही पुत्र है, दोनों का चैतन्य एक ही प्रकार का है दोनों का शरीर भी पंच भौतिक है, इन्द्रियां भी एक प्रकार की अपने २ विषयों को ग्रहण करने वाली हैं। इसीसे अनेक होते हुए भी एक हैं एकही चैतन्य से सब चैतन्य वाले होते हैं। अचेतन जो चैतन्य के समान भिन्न प्रकार की चेष्टाओं का हेतु है, यह भिन्नता जड़ पदार्थों की है और चैतन्य में प्रतीत होती है।

दूसरा पुरुष बोला:—तो क्या चैतन्य एक ही है ? देखने में तो चैतन्य अनेक दीखते हैं, जैसे जड़ भी अनेक दीखते हैं। ऐसा क्यों है ?

प्रथम पुरुष बोला:—तत्त्वरूप एक ही पदार्थ है। तत्त्व और तत्त्व का विशेष रूप से अभाव इस प्रकार दो मूढ़ता से समझे जाते हैं। तत्त्व चैतन्य स्वरूप है और चैतन्य का विशेष बोध नहीं है तब जो प्रतीत होता है वह चैतन्य का अभाव का रूप है, चैतन्य कभी भी विकारी नहीं है और जड़ विकार स्वरूप होने से विकारी है। अविकारी चैतन्य की विकार वाली जो प्रतीति है वह चैतन्य का विवर्त है मूल तत्त्व को न छोड़ते हुए दूसरे प्रकार की प्रतीति विवर्त कहलाती है। और वही पदार्थ अचेतन (माया) का परिणाम है बदलकर होने वाले को परिणाम कहते हैं। अब पिता पुत्र के भाव से समझाता हूँ।

आत्माराम नामका एक पुरुष है। वह बुड्ढा है उसका बाप जीता नहीं है प्रत्यक्ष में वह पिता रहित है, उस आत्माराम का एक पुत्र है, उसका नाम मनसुखलाल है, मनसुखलाल का भी

एक पुत्र है, उसका नाम नयनचन्द्र है, नयनचन्द्र का भी एक पुत्र है, उसको लोग रूपलाल कहते हैं। इस प्रकार यह कुटुम्ब विस्तार को प्राप्त हुआ है, तो भी कुटुम्ब एक ही है और बुड्ढे आत्माराम की सत्ता चैतन्य से ही सब चैतन्य हैं ऐसे सब पिता पुत्रों को समझ।

रूपलाल पुत्र ही है वह किसी का पिता नहीं है। नयनचन्द्र रूपलाल का पिता है और मनसुखलाल का पुत्र है। मनसुखलाल नयनचन्द्र का पिता और आत्माराम का पुत्र है, आत्माराम मनसुखलाल का पिता है, वह किसी का पुत्र नहीं है। आत्माराम पिता ही है। रूपलाल पुत्र ही है। मनसुखलाल और नयनचन्द्र एक का पिता और एक का पुत्र है। यह सम्पूर्ण आत्माराम का विस्तार है, आत्माराम से उत्पन्न है। आत्माराम की सत्ता में टिके हुए हैं और उसी की सत्ता में लय होते हैं। आत्माराम को ईश्वर समझ। इससे ही सम्पूर्ण जगत् ईश्वर की लीला है। पिता पुत्र के विवेक से एक तत्त्व की सिद्धि होती है।

इस दृष्टान्त के अनुसार साक्षी, मन, नेत्र और रूपको समझना चाहिये। द्रष्टा देखने वाले को कहते हैं। पिता के समान आत्माराम साक्षी है। दृश्य (दीखने वाला) द्रष्टा रूप यानी पुत्र और पितारूप मनसुखलाल मन है ऐसे ही दृश्य और द्रष्टा-रूप यानी पुत्र और पितारूप नयनचन्द्र आंख है, और दृश्य यानी पुत्ररूप ही रूपलाल है।

साक्षी आत्मा सबको देखने वाला है वह किसी के देखने का विषय नहीं होता। जो जिसका विषय होता है उसीको वह

ग्रहण कर सकता है। मनको साक्षी जानता है इसीसे साक्षी मनका द्रष्टा है यहां मन दृश्य होता है और नेत्र को जब मन जानता है तब मनका विषय नेत्र होता है, वहां मन द्रष्टा बनता है, नेत्र भी जब रूपको जानता है तब रूपका द्रष्टा बनता है। मन और नेत्र वस्तुतः जड़ होते हुए भी चैतन्य के आभास से युक्त होने से एक का दृश्य और दूसरे का द्रष्टा बन सकते हैं, इस प्रकार साक्षी मन और नेत्र तीन द्रष्टा होते हुए भी द्रष्टा एक ही है। साक्षी ही पूर्ण द्रष्टा है, साक्षी के आभास से युक्त मन और नेत्र में द्रष्टापना आपेक्षिक है वह अपेक्षा रखते हुए ही द्रष्टा बनते हैं।

जैसे एक लेम्प का प्रकाश कांच (चिमनी) में से एक अंगूठी के नगीने पर पड़ता है और नगीने का प्रकाश दीवार पर पड़ता है ऐसे ये चार हैं; लेम्प, कांच, नगीना और दीवार। साक्षी लेम्प है, बुद्धि की वृत्ति रूप मन कांच है, नगीना नेत्र है और रूप दीवार है। मूल एक ही प्रकाश द्रष्टा है वह ही कांच और नगीना में प्रकाशित होकर दूसरे को प्रकाशता है। वह द्रष्टा और दृश्य दोनों बना है और दीवार प्रकाशित होती है वह दृश्य ही है।

नील पीत स्थूल सूक्ष्म
ह्रस्व दीर्घादि भेदतः।
नाना विधानि रूपाणि
पश्येल्लोचनमेकधा ॥ २ ॥

अर्थः—एक ही नेत्र, नीले, पीले, स्थूल, सूक्ष्म, छोटे, बड़े आदि भेद से अनेक प्रकार के रूप को देखता है, सब प्रकार के

रूप एक ही नेत्र के दृश्य हैं, द्रष्टा नेत्र एक ही है और दृश्यों में भेद हैं, दृश्य अनेक हैं।

विवेचन।

द्रष्टा से दृश्य की क्रम से अनेकता की सिद्धि के हेतुरूप जो दृश्य है उसकी अनेकता को दिखलाते हैं। जिस प्रकार एक वृक्ष की जड़ में एकता होती है और शाखाओं में जाकर अनेकता होती है, प्रति शाखा (डालियों की) अनेकता है और उन प्रति डालियों में पत्तों की अनेकता है इसी प्रकार साक्षी, मन, नेत्र और रूप को समझना चाहिये।

रूप जो नेत्र का दृश्य है उसमें अनेक प्रकार के भेद हैं। उन सब भेदों को दिखलाने वाला नेत्र एक है। दृश्य अनेक हैं और उनका देखने वाला द्रष्टा एक है। देखने के नेत्र दो हैं परन्तु वे एक ही इन्द्रिय होने से एक ही कहे जाते हैं। नेत्र का विषय रूप होने से नेत्र के सिवाय रूप को और कोई इन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकती। रूप आकृति रंग आदि भेद से अनेक प्रकार के होते हैं। आकृति भी अनन्त है उनकी कोई गिनती नहीं है। इसी प्रकार रंग भी एक दूसरे से मिलकर अनेक प्रकार के होते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि रूप वाली है, रूप परिछिन्नता वाला है और परिछिन्नता भी अनेक प्रकार की है। जगत् में जितनी अनेकता है उसको मुख्यता से दिखलाने वाला रूप ही है। पदार्थों का भास होना यही रूप है। सम्पूर्ण जगत् माया—अविद्या का कार्य है इससे उसके सब पदार्थ माया स्वरूप ही हैं और उन पदार्थों की आकृति आदि जो है वह रूप भी माया स्वरूप है। सम्पूर्ण माया दृश्य है इसी से उसी में का रूप भी दृश्य है।

इसी प्रकार रूप की अनेकता है। सम्पूर्ण पदार्थ माया के होते हुए भी माया स्वयम् अस्तित्व रहित है। वह स्वयं भी चेतन के आधार में है इससे उसके कार्य रूप पदार्थ भी चेतन के आधार में ही है। पदार्थों में रहा हुआ नाम और रूप माया स्वरूप है और मिथ्या है। नाम और रूप में नाम जीव सृष्टि का और रूप ईश्वर सृष्टि का है। जीव अपने समुदाय में व्यवहार के निमित्त नाम को निश्चित करता है इसीसे जिस समुदाय में लोग जिस नाम से जिस पदार्थ का सम्बोधन करते हैं उसी नाम से उसे समझते हैं। एक समुदाय का नाम दूसरे समुदाय वाले को अज्ञात रहता है, तब वह उस नाम से उस पदार्थ को नहीं पहिचानता। रूप में इस प्रकार नहीं होता; क्योंकि वह ईश्वर सृष्टि का है। ईश्वर सृष्टि सबको सामान्य है वैसे ही रूप भी सबको सामान्य है। आकृति रंग आदि जैसे हैं वैसे ही सबको दिखाई देते हैं। रूप अनेक हैं और उसका द्रष्टा नेत्र एक है ऐसा कहने से नेत्र की ही पदार्थों के रूप में अनेकता है ऐसा समझना न चाहिये। यहां नेत्र का कथन सब इन्द्रियों के निमित्त है। अर्थात् कर्ण इन्द्रिय एक है उसका विषय शब्द मंद, मध्यम, तीव्र, वर्णात्मक, नादात्मक और प्रतिध्वनि रूप इत्यादि अनेक प्रकार का है। त्वचा इन्द्रिय एक है उसका विषय स्पर्श, मृदु, कठोर, उष्ण, शीत, दाह युक्त इत्यादि अनेक प्रकार का है। नेत्र इन्द्रिय एक है और उसका विषय रूप, नीला, पीला, स्थूल, सूक्ष्म, छोटा, बड़ा इत्यादि अनेक प्रकार का है। जिह्वा इन्द्रिय एक है उसका विषय स्वाद खारा, खट्टा, तीता, मीठा, चरपरा इत्यादि अनेक प्रकार का है। नासिका इन्द्रिय एक है उसका विषय गंध, सुगंध, दुर्गन्ध, तीव्र गंध, मृदु गंध इत्यादि अनेक प्रकार का है। ऐसे प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों में भेद होता है।

अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म है। संसार दशा में वह सत् चित् और आनन्द स्वरूप उपाधियों से युक्त दीखता है, अज्ञान ने उस स्वरूप को ढांप दिया है और अपने स्वरूप के कार्य को उसके ऊपर चढ़ा दिया है; इसी से नाम रूप वाले पदार्थों में होनापन, दीखनापन और आनन्दपना मालूम होता है। वास्तविकता से देखें तो होनापन, चेतनपन यानी भासित होना और आनन्दपना में नाम और रूप की सिद्धि होती है। उसी के बदले अज्ञान ने सच्चिदानन्द की सिद्धि नाम रूप से दिखला दी। यह अज्ञान की करतूत है। सच्चिदानन्द स्वरूप जो साक्षी है वही द्रष्टा है और सम्पूर्ण दृश्य है।

शंका:—सब पदार्थ दृश्य हैं तब नेत्र को द्रष्टा क्यों कहा है?

समाधान:—नेत्र रूप को देखता हुआ भी दृश्य है। एक दूसरों की अपेक्षा से लोगों में वह द्रष्टा सा दीखता है, परन्तु द्रष्टा नहीं है, द्रष्टापने की पूर्ण सिद्धि साक्षी सिवाय और किसी में नहीं होती। मन नेत्रादिक में आभास द्वारा द्रष्टा मालूम होता है जब आभास ही मिथ्या के सहारे पड़ा हुआ होने से मिथ्या है तब उस मिथ्या द्वारा जिस द्रष्टा की सिद्धि हुई है वह भी मिथ्या ही है।

शंका:—जड़ पदार्थों के समान नेत्र नहीं है। पदार्थ जड़ होते हैं, नेत्र जड़ नहीं है चैतन्य है रूप को देखता है तब वह द्रष्टा क्यों नहीं है?

समाधान:—द्रष्टा कभी दृश्य नहीं होता और जो एक समय में एक का द्रष्टा बनता है और दूसरे समय में दूसरे का दृश्य

बनता है वह मिथ्या द्रष्टा है वास्तविक नहीं। मन और नेत्र जड़ हैं उसमें जो चैतन्यता दीखती है वह आभास की है, आभास साक्षी की दमक है, इसीसे चेतनता मन और नेत्र में नहीं है। अविद्या अपने सब कार्यों के सहित चैतन्य में अध्यस्त है उसका अधिष्ठान जो चैतन्य उसका विशेष बोध न होते हुए भी सामान्य बोध जाता नहीं। वही सामान्यता अपनी दमक द्वारा विशेष चेतन रूप से मालूम होती है।

शंकाः—जड़ पदार्थ भी अपना कारण अविद्या सहित चैतन्य में अध्यस्त है तो वह भी मन या नेत्र के समान चेतन मालूम होना चाहिये।

समाधानः—जड़ पदार्थ निर्मलता रहित हैं इससे चैतन्य के आधार में होते हुए भी चैतन्यता रहित दीखते हैं जो पदार्थ निर्मल होता है उसी में चैतन्य की दमक होती है। दमक मलीनता में नहीं दीखती इसी से लोगों में दमक वाले को चेतन और दमक रहित को जड़ कहते हैं।

शंकाः—पदार्थों में निर्मलता और मलीनता का हेतु क्या है?

समाधानः—प्रकृति-अविद्या त्रिगुणात्मक है, सतोगुण रजोगुण और तमोगुण स्वरूप है। जिस पदार्थ में सतोगुण की अधिकता होती है उसमें निर्मलता होती है और जिसमें तमोगुण की अधिक घनता होती है वही मलीनता वाली होती है। कोई भी पदार्थ चैतन्य के आधार से रहित नहीं है। आधार की दमक जिसे चिदाभास कहते हैं, वह निर्मलता में दीखती है मलीनता में नहीं। जैसा पदार्थ होता है वैसी ही उसमें दमक

होती है। दमक सहित चैतन्य और दमक रहित जड़। नेत्र में जो चैतन्य की दमक है वह इस प्रकार है:—साक्षी की दमक आभास बुद्धि-वृत्ति रूप मन में और मन में से इन्द्रिय रूप नेत्र में। दूसरी रीति से:—साक्षी का आभास व्यष्टि अज्ञान में—उसमें से अन्तःकरण में—उसमें से मन में और मन में से ज्ञान इन्द्रियों में, इस प्रकार वे अचेतन चेतन मालूम होते हैं।

आंध्य मांद्य पटुत्वेषु
नेत्रधर्मेषु चैकधा ।
संकल्पयेन् मनःश्रोत्र
त्वगादौ योज्यतामिदम् ॥ ३ ॥

अर्थः—रूप के अनेक भेदों को नेत्र देखता है, वह ही नेत्र जब मनका दृश्य होता है तब अन्धपना, मंदपना, चंचलपना आदि नेत्र के धर्मों के विषय में एक मन संकल्प करता है। इसी प्रकार श्रोत्र, त्वचा आदिक में भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन ।

ऊपर में जैसे एकही रूप को जब इन्द्रियां ग्रहण करती हैं तब अनेक प्रकार से ग्रहण करती हैं यानी एक रूप अनेक प्रकार का होता है और उसे ग्रहण करने वाला नेत्र एक रहता है। ऐसे ही जब नेत्र मनका विषय होता है तब मन नेत्र को अनेक प्रकार के भेद के भाव से ग्रहण करता है, यहां मन एक होता है और नेत्र अनेक प्रकार वाला होता है। इसी प्रकार अन्य चार इन्द्रियों के

धर्मों के भी एक मन संकल्प करता है। इन्द्रियों के धर्म इस प्रकार के हैं:—कर्णेन्द्रिय के धर्म न सुनना, कम सुनना वड़ी आवाज को सूक्ष्म सुनना और सूक्ष्म आवाज को वड़ा सुनना इत्यादि। त्वचा इन्द्रिय के धर्म स्पर्श ज्ञान का न होना, थोड़ा स्पर्श ज्ञान होना और स्पर्श ज्ञान का विपरीत होना इत्यादि। नेत्र इन्द्रिय के धर्म अंधपना, मंदपना, विपरीत दर्शन इत्यादि। रसना इन्द्रिय के धर्म रसज्ञान रहितता, विपरीत रसज्ञान और अस्पष्ट रसज्ञान इत्यादि। नासिका इन्द्रिय के धर्म गंधज्ञान रहितपना, स्पष्ट गंध ज्ञान, अस्पष्ट गंधज्ञान और विपरीत गंधज्ञान इत्यादि समझना चाहिये।

जिस प्रकार जगत् में राज तंत्र चल रहा है ऐसे शरीर में भी शरीर तंत्र चल रहा है। शरीर में चलते हुए तंत्र ही की वाहर नकल है। राज तंत्र स्थूल बुद्धि से भी समझ में आजाता है। शरीर का तंत्र राजतंत्र की अपेक्षा से सूक्ष्म है वह भीतर और उसीके सहारे से वाहर जगत् में चल रहा है, थोड़ा सूक्ष्म विचार करने से यह भी समझने में आ सकता है। एक अनेक का अधिपति होता है और यह अधिपति उसीके अधिपति के सामने तुच्छ नौकर होता है, ऐसे वहुतों में से यह एक होता है, इस क्रम से आगे भी चलता है। जैसे राजा एक है स्वतंत्र है उसका अधिपति इस जगत् में नहीं है। राजा के कई प्रधान होते हैं वे प्रधान राजा के नौकर हैं राजा उन सवका अधिपति है। इनमें से एक एक प्रधान अपने भिन्न भिन्न महकमे के हाकिमों का अधिपति है और भिन्न भिन्न महकमे के हाकिम उनके तावेदार हैं। महकमे के हाकमों के नीचे काम करने वाले वहुत से क्लर्क और चपरासी हैं महकमे का हाकिमों सवका अधिपति है और वे सब सके तावेदार हैं इसी प्रकार साक्षी मन, इन्द्रियाँ और विषय हैं।

कामः संकल्पसंदेहौ
श्रद्धाऽश्रद्धे धृतीतरे ।
ह्रीर्धीर्भीरित्येवमादीन्
भासयत्येकधा चितिः ॥४॥

अर्थः—काम, संकल्प, संदेह, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, ह्री (लज्जा), धी (बुद्धि), भय इत्यादि मन के धर्मों को एक चिति (आत्मा) ही प्रकाश करती है ।

विवेचन ।

जिसको प्रथम साक्षी करके कथन किया है उसी को चिति शब्द से कथन करते हैं. साक्षी चिति और आत्मा एक ही तत्त्व के नाम हैं। चिति यानी आत्मा मन के भिन्न २ धर्मों को प्रकाश करता है। मन से आदि लेके संपूर्ण प्रपंच और उनके सब पदार्थ मायिक, जड़ और प्रकाश रहित हैं। चिति के प्रकाश से सब और सब के भिन्न २ धर्मों का प्रकाश होता है इससे मन और इन्द्रियां चिति से प्रकाशित होकर अपने विषय के अनेक प्रकारके कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं। चितिका प्रकाश लेकर विषयोंको प्रकाश देने में वे आपेक्षिक द्रष्टापने को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार राजा की सत्ता से सत्ता वाले प्रधान, न्यायाधीश, चपरासी आदि कार्य करते हैं; ऐसे ही मन इन्द्रियां कार्य करने वाली हैं। चिति का द्रष्टृत्व अखंडित-भेद रहित है, भिन्न २ दृश्यों का प्रकाशक होते हुए भी विकार और भिन्नता से रहित है, आपेक्षिक द्रष्टा से उसमें यही विलक्षणता है, यह चिति स्वयम् प्रकाश स्वरूप है।

उसको जो द्रष्टा कह कर कथन किया है वह दृश्य से विलक्षण है ऐसा समझाने के निमित्त है। जगत् में देखने वाला भिन्न २ भेद सहित देखता है उसे द्रष्टा अथवा साक्षी कहते हैं जैसे कोई जमीन किसी ने बेची और किसी ने खरीदी ऐसे दोनों को जानता है, इस प्रकार की चिति साक्षी नहीं है। जैसे सूर्य सब पदार्थों का द्रष्टा है, परन्तु पदार्थ की भिन्नता में सूर्य हेतु नहीं है ऐसे चिति को जानो। सूर्य परिछिन्न प्रकाशक है और यह चिति तो अपरिछिन्न अदृश्य अव्यक्तस्वरूप आधार और प्रकाशक है ।

मन एक होते हुए अनेक वृत्ति वाला है वे वृत्तियां मन के धर्म कहलाती हैं। मन के धर्म रूप संपूर्ण वृत्तियों को एक चिति प्रकाश करती है। काम, संकल्प, संदेह, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, बुद्धि और भय इत्यादि मन के धर्म हैं। प्रथम श्लोक में बुद्धि की वृत्तिरूप मन कहा है और यहां मन के धर्म को बुद्धि कहा है, उसमें विरोध नहीं है। मन के कथन में, बुद्धि की वृत्ति मन है और बुद्धि के कथन में मन की वृत्ति बुद्धि है, यहां विज्ञानमय कोश का कथन होने से सब भिन्नता वाली वृत्तियां हैं विज्ञानमय में बुद्धि को समझा तो मन वृत्ति और मन को विज्ञान रूप समझा तो बुद्धि वृत्ति है।

काम कामना को कहते हैं। सम्पूर्ण संसार की जड़ कामना है, कामना-इच्छा करने से संसार में आना पड़ता है। व्यवहार में भी देखते हैं कि सब स्थूल क्रिया इच्छा के पश्चात् ही होती है अज्ञान से आच्छादित आसक्तियुक्त इच्छा-कामना है। संसार में विपत्तियों में पटकने वाली सब वृत्तियों और पदार्थों से

महा—बलिष्ट काम है। काम से वेष्टित होकर सब ब्रह्माण्ड घूम रहा है कामना नहीं हो तो घूमने का कोई हेतु नहीं। काम महान् अग्नि है, काम की पूर्ति होती नहीं, जैसे जैसे कामनायें पूर्ण करते जायँगे वैसे वैसे बढ़ेंगी। कामना पुरुषों को तुच्छ बनाती हैं, सम्पूर्ण कामना की निवृत्ति में तुच्छता नहीं रहती, महान् तपस्वियों को ऊपर न जाने देते हुए गिराने वाला काम ही है। काम जीत सर्व जीत है और काम से जीता गया काम का—मलीनता का किंकर है। काम से युक्त मन संसारी है और कामना से रहित मन शुद्ध स्वरूप है। काम की माता अज्ञान है इसी से अज्ञान में ही कामना होती है। स्वरूप के अज्ञान में से कामना की उत्पत्ति है।

संकल्पः—मन का किसी विषय पर चेतना-ध्यान करना—विचार करना संकल्प कहलाता है। सं-सम्यक् प्रकार से की हुई कल्पना संकल्प है और विरुद्ध प्रकार से की हुई अथवा विशेष रूप से की हुई कल्पना विकल्प कही जाती है। आरम्भ की हुई कल्पना संकल्प है उसे छोड़कर दूसरी कल्पना करना विकल्प है, प्रथम कल्पना की अपेक्षा से यह विकल्प है और उसे छोड़ कर और कल्पना करते हैं तब यह संकल्प हो जाती है और की हुई कल्पना विकल्प जो संकल्प है वह विकल्प और विकल्प संकल्प हो जाता है। यह मन का धर्म-वृत्ति है अथवा मन का स्वरूप है। संकल्प विकल्पात्मक मन कहा जाता है। संकल्प विकल्प अज्ञान की आवरण शक्ति से पैदा हुई विक्षेप शक्ति है।

संदेहः—है या नहीं है, ऐसा या वैसा, यह या वह किसी प्रकार का निर्णय नहीं कर सके यह संदेह है। बुद्धि का धर्म

निश्चय करना है, जिस वृत्तिसे निश्चय नहीं हो ऐसी वृत्ति को संदेह कहते हैं संशय भी उसी को कहते हैं निश्चय का प्रतिपक्ष-विरोधी पक्ष संदेह है। संदेह की अपेक्षा से निश्चय और निश्चय की अपेक्षा से संदेह जाना जाता है। न जानना अज्ञान, कुछ जानते हुए निर्णय न होना संदेह और ठीक जानना निश्चय है।

श्रद्धाः—प्रत्यक्ष में श्रद्धा की आवश्यकता नहीं होती। जब पदार्थ अप्रत्यक्ष होता है तब ही श्रद्धा से माना-जाना जाता है। श्रद्धा विश्वास को कहते हैं। वह दो प्रकार की होती है। श्रद्धा के पश्चात् जिस वस्तु के विषय में श्रद्धा की थी उसका प्रत्यक्ष हो सकना और श्रद्धा के पश्चात् जिसको श्रद्धा से जाना था उस पदार्थ का प्रत्यक्ष न हो सकना। श्रद्धा कथन करने वाले पर होती है, कथन करने वाले ने जिस विषय में, जिस पदार्थमें जिस प्रकार कहा है, पदार्थको प्रत्यक्ष न देखते हुए ऐसा ही मान लेना श्रद्धा है। गुरु और सत्शास्त्रके वाक्यों में श्रद्धा होती है। व्यवहार में सत्यवक्ता सज्जन के वचनों में भी श्रद्धा होती है, वह व्यवहार के निमित्तकी होती है। मुमुक्षुओंको श्रवण, मनन और निदिध्यासनके पश्चात् स्वरूपका बोध प्रत्यक्ष होता है यहजिसका विषय प्रत्यक्ष होसकता है ऐसी श्रद्धा है और लौकिक पदार्थोंका भी देश काल योग्यता के अनुसार प्रत्यक्ष होना संभव है यह श्रद्धा भी ऊपर के समान है शास्त्र के कथन के अनुसार स्वर्ग में भोग ऐश्वर्य आदिक का जानना दूसरे प्रकार की श्रद्धा है। किसी को भी इस जिंदगी में उस विषय का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

अश्रद्धाः—ऊपर श्रद्धा के लक्षण दिखलाये हैं इनसे विपरीत अश्रद्धा है। कोई संपूर्ण अश्रद्धा को धारण नहीं कर सकता

ऐसों का निर्वाह ही नहीं होगा। परम पद प्राप्ति के प्रयत्न में जो श्रद्धा रहित है उसका कभी भी कल्याण नहीं हो सकता विश्वास का न करना अश्रद्धा है। अश्रद्धा और श्रद्धा के बीच में की संदेह वृत्ति होती है।

धृति धैर्य को कहते हैं। शारीरिक और मानसिक दुःख में विचलित न होना-धैर्य को धारण किये रहना धृति कहलाती है हिम्मत का टूट जाना अधृति है तुष्टि को धारण किये रहना और इनसे विरुद्ध प्रसंगों में तुष्टि को छोड़ना नहीं उसे धृति कहते हैं। मनुष्य की कीमत धृति से है जिसमें अधिक धृति है वही सामर्थ्य वाला कहा जाता है जिससे धृति धारण की जाती है ऐसे लौकिक ध्येय अनेक हैं इसीसे उनसे हुई धृति भी अनेक प्रकार की होती है। परमार्थ स्वरूप सब किसी का एक है। उसीसे उसके अवलंबन से धृति भी एक है और सर्वोत्तम अंतिम धृति है इससे सब प्रकार से विरुद्धतावाली वृत्ति को अधृति कहते हैं चाहे लौकिक हो या पारलौकिक।

ह्री लज्जा को कहते है। लज्जित कर देने वाली वृत्ति का नाम "ह्री" है। किसी दोष के कारण से अथवा व्यवहार में अनुचितपने से कार्य हो जाने के पश्चात् मन की ग्लानि युक्त संकुचित स्थिति का होना 'ह्री' है। लज्जा कार्य को अयुक्त समझने से प्रसन्नता रहित होती है। लोग जिसे शरम करते हैं वह लज्जा है। मन को छुपाना शरीर या शरीर के अंग को छुपाना लज्जा है।

धी—बुद्धि को कहते हैं, जो पदार्थों के बोध का निश्चय कराने वाली है, निश्चय उसीका स्वरूप है। उसीको जीव भाव

से कर्त्ता कहते हैं और वृत्ति में करण होती है। जीवके व्यक्तित्व की सिद्धि-प्रसिद्धता बुद्धि से होती है। संसार की विभिन्नता सुख दुःखादिक का पृथक बोध बुद्धि से होता है यह बुद्धि भी मलीन शुद्ध, मोटी सूक्ष्म तीव्र आदिक भेद से अनेक प्रकार की होती है। यह संशय वृत्ति से विरुद्ध है।

भी—भय, दहशत, जिससे डर लगता है ऐसी वृत्ति को 'भी' कहते हैं। किसी प्रकार की हानि हो अथवा हानि की संभावना हो तव घवरा जाना—चौंक जाना अधिक हो तो वेहोश हो जाना जिस वृत्ति से होता है वह 'भी' है। डरने का विषय सच्चा हो अथवा मिथ्या हो, जिस क्षण में विचार से युक्त हों अथवा विचार करने का अवकाश न मिला हो, जब सच्चा समझा जाता है तब घवराहट जिससे हो यह 'भी' है। देहासक्ति-देहाध्यास अहं और मम से और अनेक जन्मों के किये हुए अनुभव के संस्कार जो अप्रत्यक्ष में होते हैं उनसे 'भी' वृत्ति तीव्र हो जाती है। संसारी कोई भी मनुष्य-प्राणी प्रयत्न करते हुए भी 'भी' वृत्ति को छोड़ नहीं सकता। जीवन्मुक्तों को भी संसार की अवस्था में 'भी' वृत्ति उदय हो जाती है जो विचार से शान्त हो जाती है।

नोदेति नास्तमेत्येषा
न वृद्धिं याति नक्षयम्।
स्वयं विभात्यथान्यानि
भासयेत् साधनं विना ॥५॥

अर्थः—यह चिति (आत्मा) न उदय होती है, न अस्त होती है, न वृद्धि को प्राप्त होती है और न क्षय को प्राप्त होती है, स्वयं प्रकाशित होती है और साधन विना दूसरों को भी प्रकाशित करती है।

विवेचन।

जो द्रष्टा ही द्रष्टा है वह चिति है उसको ही आत्मा कहते हैं इसका उदय और अस्त नहीं होता, जैसे सूर्य लोगों को प्रातःकाल में उदय होता और सायंकाल में अस्त होता मालूम पड़ता है इस प्रकार का आत्मा नहीं है अथवा जन्म और मरण से रहित है। उत्पन्न होना और नाश होना उसका वन नहीं सकता, जैसे ठूंठ से लेकर ब्रह्मापर्यंत के सब प्राणी पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नाशको प्राप्त होते हैं ऐसा आत्मा नहीं है और सम्पूर्ण प्रदार्थ जैसे वृद्धि और क्षयधर्म वाले हैं—वढ़कर नाश को प्राप्त होते हैं ऐसा आत्मा नहीं है। तव आत्मा कैसा है ? उसीके उत्तर में कहते हैं कि स्वयं प्रकाश रूप है, जिसका स्वरूप ही प्रकाश है, जो अपने आप प्रकाशित होता है और अन्य को भी प्रकाशित करता है। दूसरों के प्रकाश करने में भी उसको किसी का सहारा लेना नहीं पड़ता, विना साधन ही प्रकाश करता है। वह नित्य होने से उसका प्रकाश भी नित्य है इससे ही वह उदय और अस्त से रहित है। अजन्मा स्वरूप होने से उत्पत्ति, वृद्धि, विकार और नाश से रहित है। उसको कार्य की पृथक्ता की सिद्धि करना नहीं है इससे सवका एक साथ प्रकाशने वाला है। उसकी सत्ता में और कोई नहीं है न पृथक्ता है। सव व्यवहार उसीमें अध्यस्त है। वास्तविक न होते हुए जिसमें दीखे वह

उसमें अध्यस्त कहा जाता है। इस व्यावहारिक सत्ता में भी प्रकाश पारमार्थिक सत्ता का ही है। परमपद में, तीनों शरीरों में, व्यावहारिक पदार्थों में और भ्रांति आदिमें उसका प्रकाश ज्यों का त्यों ही रहता है। अवस्था वाला अवस्था के पदार्थों को जाने अथवा न जाने, अवस्थान्तर को स्मृति से जाने अथवा न जाने यह सब भेद-विकार पदार्थ और जानने वालों का है स्वयम् प्रकाश आत्मा तो अखंडित प्रकाशता ही है।

एक योगी योग के अभ्यास में बहुत बढ़ा हुआ था, योग क्रिया द्वारा होने वाले अनेक प्रकार के संयमों को भली प्रकार और जल्दी से कर सकता था, अनेक वर्ष उसने इस क्रिया में व्यतीत किये थे, बहुत प्रकार की सिद्धियां प्राप्त करली थीं, लोगों में महान् सिद्ध कहलाता था, दूरदर्शन दूरश्रवण अन्तर्ध्यान और परकाया प्रवेश आदि कार्य उसका सहज खेल था, समाधि कई दिन तक लगा लेता था, आश्चर्य तो यह था कि ऐसी योग क्रियायें जानने वाला होकर आत्म ज्ञानसे रहित था। अपने आत्माको नहीं जानता था कई वर्षों तक सिद्धियों के चमत्कार में लगे रहने के पश्चात् सिद्धियों की तरफ से रुचि हट गई। अन्त करण शुद्ध होने से यह विचार हुआ कि मैं योगी हूँ इसमें शक नहीं है परन्तु जो लोग महात्मा कहलाते हैं, त्याग से रहते हैं और शांत चित्त वाले होते हैं ऐसा मैं क्यों नहीं? योग की क्रियाओं ने मुझे अशांत और दुःखी कर डाला है, सब कुछ ऐश्वर्य प्राप्त होते हुए भी अशांत हूँ। वे महात्मा लोग मेरे समान सिद्धियों को प्राप्त किये हुए नहीं हैं, फिर भी वे शांत और प्रसन्न दीखते हैं। सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हाय ! तब क्या मेरी योगकी सब क्रियाएं निष्फल हैं। योगसे शांति होती है

ऐसा कोई कहे अथवा स्वयम् ब्रह्मा ही आकर कहे तो भी मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि यह कथन गलत है। योगसे शांति होती हो तो मेरे को अवश्य होनी चाहिये।

ऊपर के अनुसार विचार ने उसे व्यग्र किया जहां जहां महात्मा सुने गये थे वहां जाने लगा और किस प्रकार शांति प्राप्त हो यह पूछने लगा। महात्मा लोग भी यह समर्थ योगी है इस प्रकार उसे जानते थे। कई महात्मा, योगी की अधिक प्रशंसा करते हुए कहते थे कि आप हमसे कई दरजे अधिक हो हम आपको क्या उपदेश दे सकते हैं? हम तुच्छ हैं हम कुछ नहीं जानते ऐसा कह कर टहला देते थे। योग के अभिमान से भरा हुआ होने के कारण से कई सच्चे महात्माओं ने भी योग्य अधिकारी न समझ कर उपदेश व्यर्थ जायगा जानकर युक्तिपूर्वक वचन कह कर उसे टहला दिया।

इस समय में योग की क्रिया उसके समान दूसरा कोई करने वाला दीखता नहीं था इसीसे अभिमान वाला अवश्य था परन्तु शांति होती नहीं थी इसीसे अभिमान भी ढीला पड़ता जाता था और शांति की चाहना दिन पर दिन बढ़ती जाती थी।

जिस प्रकार योग की क्रियायें उसने दृढ़ता से की थीं और उनके निमित्त अनेक कष्ट भी भोगे थे इस प्रकार ही शांति प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा। कई स्थानों पर जाने से, सन्तोंसे मिलने से कार्य होता हुआ न देखकर भी निराश न हुआ, सन्तों की खोज में भ्रमण करता ही रहा। जब किसी स्थान पर

टिके तब एकांत में बैठ कर शांति के ऊपर भी संयम करने लगा, आश्चर्य यह था कि संयम से भी जैसी शांति महात्माओं में वह देखता था ऐसी उसे प्राप्त होती नहीं थी, जैसे रोगी अनेक वैद्य, डाक्टर और हकीमों की औषधि लेते हुए भी जब रोग निवृत्त नहीं होता तब भी औषधि करना छोड़ता नहीं है वैसे अशान्ति रूपी रोग की औषधि लेने के लिये संतों के पास जा रहा है कोई औषधि देते थे तब भी उसका रोग निवृत्त नहीं होता था।

प्रथम जिन महात्माओं ने उसे प्रशंसाकर निकाल दिया था उन्हीं में के एक महात्मा के पास वह फिर से पहुंचा। सब स्थान और सब महात्माओं के पास घूमने से उसे निश्चय होगया था कि मेरा कार्य होगा तो सच्चिदानन्द स्वामी के पास ही होगा। अब मैं धरना देकर उन्हीं के पास पड़ूंगा और अब कहीं नहीं जाऊंगा, यदि शान्ति प्राप्त न हुई तो प्राण त्यागूंगा परन्तु यहां से हटूगा नहीं। स्वामी अपने स्थान पर टिकने नहीं देंगे तो उनके सामने मार्ग पर ही पड़ा रहूंगा।

सच्चिदानन्द स्वामी एक स्थान में एकान्त में रहते थे। योगी ने उनके पास जाकर नम्रतापूर्वक विनती की "हे महात्मन्! मैं सब स्थानों पर घूमकर अन्त में आपके शरण में आया हूँ। मैं तुच्छ हूँ, अबोध हूँ। आज तक मैंने जो योग के अभ्यास का परिश्रम किया है वह व्यर्थ गया है। आप मुझे जानते हैं। मैं प्रथम आपके पास आया था तब आपने मेरी प्रशंसा करके मुझे टहला दिया था। अब मैं आपके पास से जाने वाला नहीं हूं। आप शान्ति का सच्चा मार्ग मुझे दिखलाइए। यदि आपके

उपदेश के योग्य मैं नहीं हूँ तो मुझे उपदेश के योग्य होने के लिये जिस २ क्रिया और गुण की आवश्यकता हो सो बताइए, मैं उसका आचरण करके योग्य बनूंगा।"

स्वामी बोले:—हे योगिराज आप यह क्या कहते हो? आप स्वयम् समर्थ हो। आपको उपदेश क्या? आप में कौनसी योग्यता नहीं है?

योगी बोला:—महाराज मैं दुखी हूँ, मुझ पर कृपा करिये मेरी सामर्थ्य भाड़ में गई, उसने तो मुझे अधिक से अधिक दुःखी किया है। सब लोग तो तुच्छ इन्द्रियों के भोग में लगे रहते हैं मेरी इन्द्रियां दिव्य हैं, अप्रतिबद्ध व्यवहार करती हैं वे ही मुझे बहुत दुःख दे रही हैं। जगत् के और लोग तो इन्द्रियों के थोड़े विषय में फंसे हैं, मैं उनसे हजार गुना फंसा हुआ हूँ। अब मेरे को यह फांसी स्पष्ट मालूम होती है। मैं सबको छोड़ता हूँ मुझे आप संसार और उसकी सिद्धियों के जाल से हाथ पकड़ कर निकालिये मैं शांति चाहता हूँ।

स्वामी ने समझ लिया कि अब उसके दोष धुल गये हैं। प्रथम आया तब अभिमान से युक्त था अब अभिमान रहित हुआ है, शांतिकी प्यास भी पूर्ण लगी है, दीन भावसे अत्यन्त दुःखी, व्याकुल होकर शरण में आया है, उसे सच्चे मार्ग में प्रवृत्त करना चाहिये। योगी से बोले आज से तू सिद्ध योगी नहीं है, मैं तेरा नाम साधक रखता हूँ। जब तू मेरी शरण में आया है, मेरा शिष्य होता है तब तो मैं जिस प्रकार कहूँ उसी प्रकार तुझे वर्त्तना होगा। अपने भाव को देश निकाला कर देना होगा। सिद्धियों का मन से भी ख्याल करना नहीं और अधिकारी के

लक्षणों से युक्त रहना होगा। यह सब बात तुझे कबूल हो तो कुछ रोज के बाद योग्यता देखकर उपदेश करूंगा।

साधकः—महाराज अब मैं न योगी रहा न सिद्ध रहा आपने मुझे साधक बनाया है। साधक आपका शिष्य है। जिस प्रकार आप आज्ञा करें दास उसे करने को तय्यार है। इस अधम को आपने बड़ी कृपा करके शिष्य के स्थान पर स्थापित किया है। अब मुझे पूर्ण निश्चय होगया है कि जिस शान्ति की खोज में मैं दूर २ भटकता रहा, अब वह शान्ति दूर नहीं है। आपके समीप आने से, आपकी कृपा दृष्टि के मधुर वचन श्रवण करने से मेरी बहुतसी अशांति-व्यग्रता निवृत्त होगई है।

साधक कुछ समय तक स्वामी के पास टिका, हठ योगी होने से हठ करने में प्रवीण था। जिस प्रकार उसने कथन किया था उसी प्रकार वर्तता रहा और उसकी श्रद्धा स्वामी में पूर्ण थी, अंतःकरण भी आज्ञाकारी था और अधिकारी के लक्षणों से युक्त देखकर स्वामी ने अपने पास बुलाया और बोलेः—

साधक तू अब शुद्ध हुआ है। तुझे शांति प्राप्त करने की इच्छा है। जब तक स्वरूप का बोध नहीं होता तब तक योग की हजारों क्रियायें करने पर भी शान्ति नहीं होती, यही तेरा हाल है। तुझे आत्मबोध होते ही पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जायगी तू योग समाधि का अभ्यासी है थोड़े में ही समझ कर स्वरूप को प्राप्त होगा। बड़ा आश्चर्य है! तूने योग क्रिया में अत्यन्त

परिश्रम किया परन्तु स्वरूप का बोध न हुआ। कारण कि तू अन्तःकरण से मलीन था, अब मेरे उपदेश से अवश्य बोध होगा। श्रवण कर:—

आत्मा उदय और अस्त से रहित है इसका समाधि में तैंने प्रत्यक्ष किया है परन्तु यह ही आत्मा है ऐसा ज्ञान नहीं होने से अशान्ति है। जो समाधि को नहीं जानता उसे तो अनुमान से काम लेना पड़ता है। अविद्या और अविद्या के कार्य का बाध करके आत्मा समझा जाता है तत्त्व में स्थिति होने से ही प्रत्यक्ष होता है। होते हुए—दीखते हुए जिनका बाध करना है उन सबका आप ही आप बाध हो जाता है। इससे समाधि करने वाले को थोड़ा समझा देने से अपरोक्ष बोध हो जाता है। तुझे समाधि की स्थिति मालूम है। समाधि के समय में मैं समाधि करने वाला हूँ ऐसा बोध नहीं रहता और अद्वैत स्वरूप ही हो जाता है। सुषुप्ति के समान जड़ता भी नहीं रहती समाधि का और सुषुप्ति का भेद तुझे मालूम हो गया है। सुषुप्ति में सो जाता है, समाधि में सोता नहीं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से यह विलक्षण है वहां जो है सो अनुभव स्वरूप है, शांति-स्वरूप है, वहां मैं तू अँधेरा प्रकाश आदि लौकिक नहीं है और जो है सो ही आत्मा है ऐसा जान।

साधक:—समाधि का वर्णन आपने ठीक किया है परन्तु वहां आत्मा है यह कैसे जाना जाय वहां तो मुझे अपना भी पता नहीं है तो मैं आत्मा को कैसे जानूं ?

स्वामी:—यही तेरी भूल है तू और तेरा आत्मा दो नहीं हैं तू ही आत्मा जब देखने वाला बना, तब दीखने वाला आत्मा

और कहां से आवेगा। तू अपने शरीर में रहे हुए चैतन्य के टुकड़े को मैं समझ रहा है। वास्तविक तू चैतन्य का टुकड़ा नहीं है प्रत्येक टुकड़ा—व्यक्ति अविद्या उपाधि से है समाधि में वह निवृत्त हो गई है इसी से तुझे अपनी अविद्याकृत पृथकता नहीं दीखती वहां एक रस शुद्ध स्वरूप है वही तेरा आत्मा है। समाधि में कुछ नहीं है मैं तू आदि भी नहीं है यह कहना ठीक है क्योंकि जितना कुछ है वह सब अविद्या का है वहां स्वरूप में अविद्या कहां? कुछ न होते हुए जो अनुभव है वही तेरा आत्मा है पृथकता को छोड़ते हुए वहां का अनुभव तुझे है वही तू आत्म स्वरूप है। बोल, क्या तूने अपने आत्मा को जाना?

साधकः—वहां अनुभव है वही आत्मा है ऐसा मैं जानता नहीं था, जब वही आत्मा है तब उसमें जानने का क्या? मैंने हजारों बार समाधि में उस स्वरूप को प्राप्त किया है। उसको मैं आत्मा नहीं जानता यह ही मेरा अज्ञान है क्या इस अज्ञान से ही शांति होती नहीं थी?

स्वामीः—जगत् के पदार्थों के जानने में और आत्मा के जानने में अन्तर है। जगत् के पदार्थ जानने वाला, जानने की वृत्ति और जानने का पदार्थ इस प्रकार त्रिपुटी में जाना जाता है और आत्माको जानने के समय में तो ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय सब आत्म स्वरूप हैं इसीसे आत्मा को जानते हुए भी नहीं जानते। न जानने से ही आत्माका निश्चय नहीं होता, इसलिये यह ही आत्मा है ऐसे जानने की आवश्यकता है उसमें सुख दुःख अशान्ति नहीं है भ्रांति से ही सुख दुःख मानते हैं, ठीक २

समझ जाते हैं तब अशांति नहीं रहती पूर्ण शांति होती है। अब बोल इस आत्माका क्या कभी उदय और अस्त होता है ? समाधि में जो तत्त्व है उसका कभी उत्पन्न होना नहीं होता। जो प्रथम न हो और पश्चात् हो उसको उत्पन्न होना कहते हैं और फिर न रहे उसे लय कहते हैं समाधि में अनुभव तत्त्व (आत्मा) समाधि हो या न हो तब भी ज्यों का त्यों रहता है। जाग्रत, स्वप्न अथवा सुषुप्ति में समाधि नहीं होती। समाधि का होना न होना मनके धर्म हैं। तत्त्व में ऐसा कोई भेद नहीं, एक सा है। वृद्धि और क्षय रहित है तूने कई बार समाधि लगाई है सब में अनुभव एक ही प्रकार का था इसीसे विकार से रहित है।

साधक:—आपके समझाने से यह समझ में आ गया कि समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव होता है वही आत्मा है। उदय और अस्त से, वृद्धि और क्षय से रहित है। परन्तु वहां प्रकाश कहां है वहां तो प्रकाश और अंधेरा दोनों ही नहीं तब शास्त्र और महात्मा लोग उसे स्वयम् प्रकाश और सब को प्रकाशित करने वाला क्यों कहते हैं ?

स्वामी:—जैसा प्रकाश तू जगत् में देखता है वैसा भौतिक प्रकाश आत्मा का नहीं है इसीसे तू कहता है कि प्रकाश कहां है ? तुझे समाधि में जो अनुभव होता है वह विना प्रकाश कैसे होगा, इसीसे ही वह प्रकाश स्वरूप है। भिन्नता रहित बोध ही उसका प्रकाश है, इसीसे स्वयं प्रकाश कहा जाता है। उसमें जो प्रकाश है वह दूसरे में से आया हुआ नहीं है। जैसे मट्टी मट्टी ही स्वरूप है ऐसे आत्मा प्रकाश स्वरूप ही है। जैसे मिसरी

मिठास स्वरूप ही है, मिठास को हटा देने से मिसरी नहीं रहती; इसी प्रकार आत्मा स्वयम् प्रकाश है, जैसे मिसरी में मिठास स्वतः है, दूसरे से आई हुई नहीं है ऐसा आत्मप्रकाश है। आत्मा को दूसरों के प्रकाशित करने में अन्य कोई साधन की भी आवश्यकता नहीं है वह सब को ही प्रकाश देता है। प्रकाश की भिन्नता और न्यूनाधिक का हेतु अविद्या और अविद्या का कार्य रूप संपूर्ण उपाधि है। वह स्वतः सामान्य प्रकाश देता है।

साधकः—आत्मा का प्रकाश सूर्य के समान कोई अधिक प्रकाश होगा ऐसा मैं समझता था। अनुभव ही स्वयम् प्रकाश है यह आपके कहने से समझा और भिन्नता और त्रिपुटी का भी निषेध इसीसे समझने में आया कि आत्मा उदय अस्त से रहित है, वृद्धि और क्षय से रहित है, स्वयम् प्रकाशित होकर साधन विना अन्य को भी प्रकाशित करता है यह सब लक्षण ठीक ठीक उसी में मिलते हैं इतना ही नहीं विचारने से शास्त्र की सब विधि और निषेध रूप वाक्य भी ठीक ठीक लग जाते हैं अब मैं आत्मा को ठीक समझ गया हूँ अब आप बताइये कि ऐसे आत्मा को जानने से शांति किस प्रकार होती है?

स्वामीः—जब तूने आत्मा को जान लिया है तब इसके सिवाय जो कुछ अन्य है वह मृग तृष्णा के समान देखने में व्यवहार में आते हुए भी मिथ्या ही है, जब मिथ्या समझ लिया, तब उसी में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कैसे हो? आज है कल नहीं, क्षण क्षण में बदलने वाले हैं उसमें आत्मा की कोई लाभ हानि नहीं है तब अशान्ति कैसे हो? आत्मा व्यक्तित्व रहित है यह समाधि में तुझे स्वतः अनुभव है व्यक्तित्व भ्रांति है व्यक्ति में ही सुख, दुःख, लाभ, हानि, मेरा, तेरा, लेना, देन

सम्पूर्ण है, संसार है। तू व्यक्ति नहीं तब व्यक्तिका विकार तेरे में कहां से ? इस प्रकार के विवेक से और आत्मतृप्ति से पूर्ण शान्ति हो जाती है। तेरे स्वरूप में कभी भी विकार नहीं है ऐसा समझ कर उसीमें टिक जाय तो शरीर होते हुए भी शरीर, मन और इन्द्रियां आदि के विकार से अशान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। स्वरूप के बोध में ही पूर्ण शान्ति है। विचार और देख, तेरे में अशान्ति कहां है ?

साधकः—विचार करके हर्षित होते हुए बोला—अहा हा ! मेरे में अशान्ति का लेश भी नहीं है। मैं पूर्ण शान्ति का समुद्र हूँ। मेरी कितनी मूर्खता थी मैं शान्ति स्वरूप में अशान्ति को देखता था धन्य हो ! धन्य हो ! कितनी सहज बात है, जब तक मेरी समझ में नहीं आया तब तक व्याकुल था। अब मैं अपनी मूर्खता पर हँसता हूँ। हे योग ! तेरा बहुत परिश्रम उठाते हुए भी तूने मुझे शान्ति प्रदान न की। जय हो सच्चिदानन्द स्वामी की ! महाराज की कृपा से सहज उपदेश में ही अनन्तकाल के चले आये हुए सम्पूर्ण संकट दूर हो गये।

स्वामीः—साधक ! योग ने भी तेरी बहुत मदद की है। प्रथम सिद्धियों की प्राप्ति से तू अधिक अहंकार में आ गया था अब अभिमान के टूटने से अन्तःकरण की शुद्धि होते ही तू शान्ति की चाहना करने लगा। तेरा अन्तःकरण योग के प्रताप से ही जल्दी शुद्ध हुआ है इसीसे जल्दी समझ गया है। तेरा योग परब्रह्म से होता था परन्तु किसका योग होता है उसका ज्ञान न होने से फल नहीं होता था। तेरे में सब मसाला तय्यार था मात्र दियासलाई लगाने से ही ज्ञान दीप प्रकट हो गया है अब

तू पूर्ण शान्ति से आप्त काम होकर विचर। तेरे शिष्य भाव ने तुझे कृतार्थ किया है।

चिच्छायाऽऽवेशतो बुद्धौ
भानं धीस्तु द्विधा स्थिता।
एकाहंकृति रन्या स्या—
दन्तःकरण रूपिणी ॥६॥

अर्थः—बुद्धि में चिति की छाया के प्रवेश से ज्ञान होता है, बुद्धि दो प्रकार की है एक अहंकार रूप और दूसरी अन्तःकरण रूप।

आत्म तत्त्व का सुलभता से बोध होने के निमित्त वेदान्ताचार्यों ने जो प्रक्रिया बांधी है उसमें पदार्थ की तीन प्रकार की सत्ता को कायम किया है। पारमार्थिक सत्ता, व्यवहारिक सत्ता और प्रातिभासिक सत्ता उसको आभासवाद कहते हैं। अवच्छेद वाद, अजात वाद आदि वादों में मुमुक्षुओं को समझने के लिये यह वाद सुलभ है और भाष्यकार ने उसीका ग्रहण भी किया है।

परब्रह्म के सिवाय और कुछ भी किंचित मात्र नहीं है इस अनुभव को पारमार्थिक सत्ता कहते हैं। इसमें त्रिपुटि नहीं है इसीसे ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद नहीं है। व्यवहारिक और प्रातिभासिक पदार्थों का अभाव है। यह अभेद-अद्वैत स्वरूप और स्वयम् प्रकाश रूप है सच्चिदानन्द होते हुए भी सत् चित् आनन्द का पृथक् २ बोध नहीं होता। बोध करने वाले की पृथक्ता नहीं होती। तत्त्व स्वरूप है यथार्थ अबाधित है। माया और

अविद्या और उसके देश, काल आदिक के भेद का वहां पता नहीं है यह पारमार्थिक तत्त्व होने से पारमार्थिक सत्ता कही जाती है ।

जिसमें सब प्रकार का व्यवहार चलता है ऐसी अवस्था चाहे इस लोकमें हो, चाहे स्वर्ग लोक में या चाहे ब्रह्मलोक में हो, यह सब व्यवहार रूप होने से व्यवहारिक सत्ता कही जाती है यह संपूर्ण ब्रह्मांड का व्यवहार स्वरूप है। मैं तू वह लेकर सब भिन्न व्यवहार का हेतु है। जन्म मरण बंध मोक्ष सब इस सत्ता में है।

प्रातिभासिक सत्ता जिसे लोग व्यवहार में भ्रांति कहते हैं, जो व्यवहार में झूठा होता है। व्यवहार का पदार्थ नहीं होता और पदार्थ मालूम होता है उसे प्रातिभासिक सत्ता कहते हैं। यानी संसार पारमार्थिक सत्ता की अपेक्षा से मिथ्या है और उस मिथ्या में भी जो मिथ्या है वह प्रातिभासिक होता है। जैसे रस्सी में सर्प अथवा स्वप्न के पदार्थ।

पदार्थ के अनुसार ज्ञान होता है, जिस सत्ताका पदार्थ होता है ज्ञान भी उसी सत्ता में होता है; इस प्रकार से ज्ञान भी तीन प्रकार का है। पारमार्थिक ज्ञान व्यवहारिक ज्ञान और प्रातिभासिक ज्ञान।

पारमार्थिक सत्ता का ज्ञान; ज्ञान स्वरूप होने से ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटि से रहित होता है इससे व्यवहारिक सत्ता को ही मुख्य मानने वालों को समझना कठिन होता है वे लोग जिस प्रकार के ज्ञानको समझते हैं वैसा पारमार्थिक सत्ता का ज्ञान न होने से वे उसको ज्ञान नहीं कहते। ज्ञानका अर्थ चैतन्य

है, प्रकाश है और भिन्नता रहित एक सामान्य रूप है ऐसा ज्ञान ज्ञानी पुरुषों को स्वरूप में होता है। सामान्य मनुष्य इस ज्ञान स्वरूप को नहीं जानते इतना ही नहीं अन्य शास्त्रकार भी उस ज्ञानको चैतन्य कहने में हिचकते हैं और आत्मा को जड़ कहते हैं। वे लोग विशेषता वाले, पृथक् भान कराने वाले त्रिपुटी युक्त ज्ञान को ही ज्ञान कहते हैं। पारमार्थिक सत्तामें यह भेद युक्त नहीं है। पारमार्थिक ज्ञान तो ज्ञान स्वरूप है अभेद और स्वयम् प्रकाश है।

दूसरा व्यवहारिक सत्ता का ज्ञान, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटि युक्त होता है। पदार्थ प्रत्यक्ष हो अप्रत्यक्ष हो अथवा स्मृतिजन्य हो, इन्द्रिय सहित अथवा इन्द्रिय रहित अन्तःकरण की वृत्ति से ग्रहण किया हुआ ज्ञान होता है जो चिदाभास के प्रकाश से प्रकाशित होता है। जब अन्तःकरण की वृत्ति का सम्बन्ध शरीर के आंतर सुख दुःखादि से सीधा होता है इन्द्रियों द्वारा नहीं होता तब साक्षी का प्रकाश होता है चिदाभास के प्रकाश का उपयोग नहीं होता तो भी व्यवहारिक सत्ता का ज्ञान कहा जाता है। सब लोकों में व्यवहारिक सत्ता का ही ज्ञान होता है, उसमें पदार्थ की भिन्नता, भिन्नता का ज्ञान और ज्ञानका करने वाला भिन्न होता है यह ज्ञान उत्पत्ति और नाश वाला होता है और पारमार्थिक ज्ञान की अपेक्षा से अज्ञान कहलाता है। अध्यात्म बोध का विशेष ज्ञान भी इसी सत्ता में होता है परन्तु विशेष अज्ञान का नाश करने वाला है। विशेष ज्ञान का विषय ब्रह्म होता है और अज्ञान का विषय अविद्या है-इतना अन्तर है।

पारमार्थिक सत्ता के ज्ञानरूप ज्ञानमें केवल स्वयम् प्रकाश होता है और व्यवहारिक ज्ञानमें स्वयम् प्रकाश के प्रकाश सहित

बुद्धिमें पड़ा हुआ चैतन्य का आभास भी होता है। बुद्धि परिच्छिन्न है इसीसे उसमें पड़ा हुआ आभास भी परिछिन्न है, और पदार्थ भी परिछिन्न है इससे उसका ज्ञान करने में वह समर्थ होती है, बुद्धि चिदाभास के प्रकाश में ज्ञान करती है। स्वरूप के बोध में और सुख दुःख के ज्ञान में साक्षी का प्रकाश है परन्तु वह बुद्धि की वृत्ति से ही ज्ञान होता है इससे व्यवहारिक सत्ता में ही है।

तीसरा प्रातिभासिक सत्ताका ज्ञान है उस ज्ञान में आत्माका सामान्य प्रकाश होता है और अविद्या की वृत्ति से पदार्थ का ग्रहण होता है। कई कारण से चिदाभास होते हुए भी अपना प्रकाश नहीं कर सकता और व्यवहारिक सत्ता के पदार्थ का जब आवरण से ठीक बोध नहीं होता तब अज्ञान में क्षोभ होकर अविद्या का परिणाम रूप अविद्या की वृत्ति से ग्राह्य, काल्पनिक पदार्थ का भान होता है जो व्यवहार की दशा में मिथ्या सिद्ध होता है। व्यवहारिक पदार्थ का बोध अन्तःकरण की वृत्ति से ही होता है यहां अन्तःकरण की वृत्ति और चिदाभास का प्रकाश न होने से पदार्थ का ज्ञान प्रातिभासिक होता है जिसे लोग भ्रान्ति कहते हैं।

प्रातिभासिक पदार्थ और उसका ज्ञान दोनों व्यवहार में मिथ्या होते हैं। व्यवहारिक पदार्थ और उसका ज्ञान ऐसे ही प्रातिभासिक पदार्थ और उसका ज्ञान पारमार्थिक में मिथ्या होता है। अज्ञान से न दीखता हुआ भी पारमार्थिक तत्त्व कभी भी मिथ्या नहीं होता। समाधि में पारमार्थिक सत्ता होती है व्यवहार में व्यवहारिक सत्ता और स्वप्न अथवा भ्रान्ति में प्रातिभासिक सत्ता है। सुषुप्ति अर्ध समाधि कही जाती है वहां भिन्नता न होते हुए भी

पारमार्थिक सत्ता नहीं है—अविद्या युक्त है। त्रिपुटि दीखती नहीं है परन्तु सूक्ष्म में है और अभाव रूप अज्ञान की वृत्ति भी है इसीसे वहां व्यवहारिक सत्ता का अवोध है।

चैतन्य के आभास को चित् छाया कहते हैं यह आभास जब बुद्धि में पड़ता है तब बुद्धि इन्द्रिय द्वारा सब पदार्थों का बोध करने को समर्थ होती है। चैतन्य सब स्थान में भरा हुआ है परन्तु सामान्य बोध का हेतु है। पदार्थ हो अथवा न हो किसी प्रकार का हो चैतन्य एक रस ही रहता है जिस प्रकार इन्द्रिय के विषय को इन्द्रिय छोड़कर बुद्धि बोध नहीं कर सकती इसी प्रकार आत्मा भी किसी का भिन्नता से बोध नहीं करता।

जैसे सूर्य का प्रकाश सब स्थान में सामान्य है तो भी पदार्थ की भिन्नता से पदार्थ के प्रकाश में भिन्नता है जैसे आतशी शीशे में वही प्रकाश अधिक प्रकाश वाला होता है। सामान्य प्रकाश रुई को जलाता नहीं है और आतशी शीशे में से हुआ विशेष प्रकाश रुई को जलाने में समर्थ होता है इसी प्रकार सामान्य आत्म प्रकाश कर्ता भोक्ता के भाव से रहित है वही बुद्धि से आभास युक्त होता है तब कर्ता भोक्ता जीव होता है यानी आभास से युक्त बुद्धि कर्ता भोक्ता रूप से वर्तती है।

यद्यपि चैतन्य का आभास व्यष्टि अज्ञान में है परन्तु व्यष्टि अज्ञान का पृथक् भाव जल्दी समझने में नहीं आता। शास्त्रकारों ने स्थूल दृष्टि वालों के समझने के लिये बुद्धि में आभास का वर्णन किया है, व्यष्टि अज्ञान भी बुद्धि कृत ही है कारण शरीर में बुद्धि स्पष्ट मालूम नहीं होती इसीसे बुद्धि में चैतन्य

के आभास का कथन किया है। यह आभास युक्त बुद्धि दो प्रकार की है, एक अहंकार रूप और दूसरी अन्तःकरण रूप। कर्ता रूप अहंकार और करण रूप अन्तःकरण है। जीव की पृथक्ता विज्ञानमय कोष में स्पष्ट मालूम होती है इससे वही विज्ञान—बुद्धि कर्ता भोक्ता अहंकार रूप कही जाती है। ज्ञान को करने वाला अहंकार हुआ तब ज्ञान करने के साधन की आवश्यकता हुई वह आंतर साधन—करण, अंतःकरण हुआ। जैसे घट को जाना अहंकार ने और बुद्धि द्वारा घट जाना गया। इस तरह एक ही बुद्धि अहंकार रूप और अन्तःकरण रूप है।

शंकाः—एक ही बुद्धि कर्तारूप अहंकार और अन्तःकरण रूप करण किस प्रकार होती है ?

समाधानः—बुद्धि में पड़ा हुआ चैतन्य का आभास चैतन्य-अधिष्ठान सहित ही होता है। जब बुद्धि अपने में रहे हुए आभास और अधिष्ठान को एक करके मैं हूँ इस प्रकार का अज्ञान से निश्चय करती है तब अहंकार रूप होती है। बोध करना—निश्चय करना बुद्धि का कार्य है यह बोध दोनों तरफ होता है। जब आत्मा के अज्ञान से आत्मा को अपने साथ मिलाकर व्यक्ति रूप से "मैं हूं" ऐसा निश्चय करती है तब यह बोध अहंकार रूप है और जगत् के पदार्थ का ज्ञान करती है तब यह बोध अन्तःकरण रूप है।

शंकाः—चिदाभास किस को कहते हैं ? जो चैतन्य का आभास है तो चेतन से भिन्न सत्ता वाली बुद्धि के ऊपर आभास किस प्रकार पड़ता है ?

समाधानः—चिदाभास चैतन्य का ही आभास है, आभास दमक को कहते हैं. जैसे कोई अंगूठी में नगीना जड़ा हुआ हो

और रात्री के समय वत्ती के प्रकाश में हाथ हिले तब नगीने में पड़ा हुआ वत्ती का प्रकाश विशेप रूप से बाहर दमकता है—तारे के समान चमकता है आभास इस प्रकार का है। चैतन्य और बुद्धि दोनों की सत्ता भिन्न है। चैतन्य पारमार्थिक सत्ता का है और बुद्धि व्यवहारिक सत्ता की है तो भी चैतन्य का आभास बुद्धि पर पड़ सकता है क्योंकि व्यवहारिक सत्ता का आधार पारमार्थिक सत्ता है। पारमार्थिक आधार में बुद्धि आधेय है। जैसे रस्सी की सत्ता भिन्न है और भ्रांति से उसमें प्रतीत होते हुए सर्प की सत्ता भिन्न है तो भी रस्सी के अस्तित्व का भान सर्प में होता है इसी प्रकार चैतन्य का आभास बुद्धिमें हो सकता है। चैतन्य अखंड है और चिदाभास बुद्धिमें पड़ा हुआ होने से बुद्धि की परिछिन्नता से परिछिन्न है, बुद्धि मिथ्या होने से उसमें पड़ा हुआ आभास भी मिथ्या है।

शंका:—चैतन्य सत्य सामान्य प्रकाश वाला है और चिदाभास विशेप मिथ्या प्रकाश वाला क्यों है ?

समाधान:—चैतन्य परम तत्त्व है अखंडित है, सम्पूर्ण ब्रह्मांड और उनके पदार्थों का अधिष्ठान-आधार है इसीसे ही सामान्य है। सामान्य होने से ही अन्य विशेप मिथ्या चैतन्य का विरोध वाला नहीं है। विशेपता बुद्धिकी की हुई है। बुद्धि परिछिन्न होने से विशेपता भी क्षणिक और परिछिन्न है जैसे लालटेन में बत्ती जल रही है वह प्रकाश सामान्य है उसके ऊपर कांच की चिमनी लगाने से वत्ती से अधिक प्रकाश चिमनी के बाहर मालूम होता है यह विशेपता कांच की है कांच जिस प्रकार का होगा उसके अनुसार प्रकाश की अधिकता में अन्तर होगा। कांच लाल;

हरा, पीला आदि जिस रंग का होगा उसमें पड़ा हुआ प्रकाश भी उसी रंग का होगा। प्रकाश में रंग देखने मात्र का मिथ्या है वास्तविक नहीं है, इसी प्रकार चिदाभास है। सामान्य प्रकाश के किरणों को बुद्धि एकत्र करती है इसीसे मिथ्या चिदाभास में विशेषता है।

शंका:—जिसका आभास होता है वह आभास प्रकाश से रहित स्थान पर होता है। परब्रह्म का प्रकाश सब स्थान पर है तब चिदाभास कहां होगा ?

समाधान:—जिसका आभास हो उस प्रकाश को छोड़कर अन्य स्थान पर आभास हो यह नियम नहीं है। एक सामान्य प्रकाश में ही दूसरा विशेष प्रकाश होता है। सामान्य सहित ही विशेष प्रकाश होता है। दोनों की सत्ता में भेद होने से ऐसा हो सकता है क्योंकि सामान्य विशेष का आधार है दोनों एक सत्ता के हों तब भी सामान्य प्रकाश के ऊपर विशेष प्रकाश हो सकता है।

छायाऽहंकार योरैक्यं
　　तप्तायःपिण्ड वन्मतम् ।
तदहंकार तादात्म्या
　　देहश्चेतन तामियात् ॥७॥

अर्थ:—छाया (चिदाभास) और अहंकार की एकता से देह चेतनता को प्राप्त होता है। छाया और अहंकार का तपे हुए लोहे के पिन्ड के समान तादात्म्य सम्बन्ध है इसीसे अहंकार चेतनता वाला प्रतीत होता है।

विवेचन।

चिदाभास जो छाया रूप है और बुद्धि रूप जो अहंकार है वे दोनों एक दूसरे में मिलने से एक ही रूप वाले हो जाते हैं। उसमें अहंकार की और आभास की भिन्नता मालूम नहीं होती–तादात्म्य सम्बन्ध होता है। चिदाभास ही अहंकार और अहंकार ही चिदाभास इस प्रकार होता है। जैसे अग्नि में लोहे को तपाया जाय तब लोहा अग्नि होजाता है और अग्नि की आकृति लोहे की होजाती है ऐसे ही चिदाभास और अहंकार की एकता होती है इसीसे अहंकार जो अचेतन है वह चेतन होजाता है और चिदाभास जो आकृति रहित है वह अहंकार की आकृति वाला होजाता है। यह तादात्म सम्बन्ध अनिर्वचनीय है, उसको सच्चा सम्बन्ध अथवा झूठा सम्बन्ध और सच्चा झूठा मिला हुआ सम्बन्ध कह नहीं सकते। यह सम्बन्ध सब से विलक्षण होने से अनिर्वचनीय है। जिसको जीव कहते हैं, उसकी सिद्धि इस प्रकार से है कि अहंकार, अधिष्ठान (आत्मा) और आभास सहित जीव है। जीव तत्त्व से नित्य होते हुए भी अनित्य के समान वर्तता है, शुद्ध होते हुए पाप पुण्य वाला होता है; जीव भाव और जीव भाव के साथ सबका सम्बन्ध अनिर्वचनीय अविद्या का है वह सम्पूर्ण शुद्ध चैतन्य में अध्यस्त है।

गंगा किनारे एक ज़ंगल में कई ऋषि लोग तपश्चर्या करते थे, जंगल के अनेक प्रकार के फल फूल और कंदों से वे अपना निर्वाह करते थे। यज्ञ उपासना और ज्ञान चर्चा में अपना समय व्यतीत करते थे, वहां से पांच कोश पर एक बड़ा शहर था

वहां के कई मनुष्य यज्ञादिक की सामग्री पहुँचा दिया करते थे और दर्शन के निमित्त आकर के अन्य प्रकार से सत्कार किया करते थे कुछ समय में जंगल भी महान तपोभूमि वन गया। देश परदेश में तपोभूमि और तपस्वियों की प्रशंसा होने लगी और दर्शकों की भीड़ होने लगी। जो एकान्तवास करने वाले तपस्वी थे उन लोगों को अच्छा न लगा, वे जन समुदाय से अलग रहने को चाहते थे, अधिक लोगों का अपने पास आना जाना पसन्द नहीं करते थे ऐसे कई तपस्वी उस स्थान को छोड़ कर कुछ दूरी पर पहाड़ों की तरफ़ गुप्त भाग में जाकर रहने लगे और वहां के फल फूल से ही निर्वाह करने का निश्चय कर रखा, शहर की वस्तुयें और शहर वालों से सम्पर्क न रखने लगे। वे भिन्न भिन्न प्रकार के जंगल के फलों का उपयोग करते थे एक वूढ़े तपस्वी को एक अज्ञात वृक्ष के नीचे एक सुन्दर फल मिला उसके खाने से वूढ़ा शरीर युवान होगया। शरीर पुष्ट हुआ और शक्ति वहुत वढ़ गई, सफेद हुए वाल फिर से काले हो गये और पांचों प्रकार के विषयों की इन्द्रियां सतेज हो गईं, विषयों की लालसा वढ़ गई ऐसा देख सोचने लगा कि यह शरीरादिक का परिवर्त्तन कैसे हुआ? सब ऋषियों ने मिल कर निर्णय किया कि जो फल इसने खाया है वह अमरफल था। हम ऋषि लोगों को ऐसा फल खाना न चाहिये हम परमपद की इच्छा वाले हैं, स्थूल पंच भौतिक शरीर मर हो अथवा अमर हो दुःख रूप ही है। दूसरे साल उस वृक्ष पर फिर एक फल हुआ उसे भी फल खाने वाले ऋषि ने तोड़ लिया परन्तु खाया नहीं एक फल खाने से क्षुधा तेज हो गई थी इसीसे वह दुःखी था उसने सोचा यह फल राजा को देना चाहिये राजा को खाने के पादर्थ वंहुत होते

हैं और सब प्रकार के भोग की सामग्री भी बहुत होती है। फल लेकर राजा को देने के लिये चला मार्ग में ही रात्री हो जाने से एक पेड़ के नीचे सो रहा और फल को पेड़ की जड़ में रख लिया। रात्रि में वहां सर्प रहता था उसने अपना विष फल के ऊपर डाला इससे फल विष वाला हो गया, ऋषि को फल विष वाला होने की मालूम न थी सुबह उठ कर ऋषि चला और मध्याह्न के पश्चात् राज दरबार में पहुँच कर राजा को अमर फल भेट किया। राजा अमर फल देख कर और ऋषि से प्राप्त हुआ जानकर प्रसन्न हुआ ऋषि को बहुत सा धन देकर विदा किया। राजा ने उसी दिन अमर फल खाना उचित न समझा अच्छा दिन और मुहूर्त में खाने का निश्चय करके रख छोड़ा।

दो दिन के बाद राजा जब अमर फल खाने को तय्यार हो रहा था तब उसके मंत्री ने कहा:—महाराज आप यह फल मत खाइये। यह फल सुन्दर है क्या खबर यह अमर फल ही है या विष फल! आज कल वेषधारी तपस्वी भी बहुत घूमते हैं! आपको मारने के लिये किसी दुश्मन ने यह विषफल आपके पास भेजा हो तो क्या मालूम? यदि आपको यह फल खाने की इच्छा है तो किसी को प्रथम खिला कर पीछे आप खाइये। राजा ने मन्त्री का कहना मान कर उसमें से एक टुकड़ा काट कर एक कौए की तरफ फेंका कौए ने टुकड़ा उठा लिया और पास के वृक्ष के ऊपर जा बैठा और खाने लगा, थोड़ी देर में कौआ वृक्ष से नीचे गिर कर मर गया। कौए को मरा देख कर राजा को निश्चय हो गया कि यह अवश्य विषफल है इसे किसी को खाने न देना चाहिये, फल में आश्चर्य अवश्य है। गूदे को निकाल कर जमीन में गढ़वा दिया और गुठली को अपने बगीचे में एकान्त स्थान में बोदी।

उसके चारों तरफ पक्की दीवार चुनवादी। एक पहरेदार भी रखा जिससे वृक्ष और वृक्ष के फल को कोई खाने न पावे। कुछ रोज में वृक्ष बड़ा हो गया और एक फल भी आगया गाम वाले सब लोगों को मालूम था कि राजा ने अपने बगीचे में एक विष वृक्ष बोया हुआ है।

एक ब्राह्मण बहुत दुखी, अनेक रोगों से पीड़ित, अकेला और दरिद्री था समय पर खाने को न मिलने से वह अपनी जिन्दगी से निराश हो गया था, शरीर का अंत होना चाहता था परन्तु ऐसे दरिद्री से मृत्यु भी डरती है। एक दिन विचार किया कि जीने में कष्ट ही है, राजा के बगीचे में जाकर वहां जो विष वृक्ष लगा है उसके फल को खाकर जिन्दगी को समाप्त कर देना चाहिये। सायंकाल के समय वह बगीचे में घुस गया और पेड़ की आड़ में छिप रहा। अर्ध रात्रि होते ही जब चौकीदार सो गया तब फाटक खोल विषवृक्ष के पास पहुँचा और फल को तोड़ कर खा गया। फल खाते ही शरीर में अपूर्व ताकत आगई! वह आश्चर्य में पड़ा और कहने लगा:-हाय मृत्यु! तू मुझ से दूर क्यों भागती है? मैं मरने को चाहता हूं तू मुझे मारने को नहीं चाहती। हे विष वृक्ष! क्या मुझ दुःखी को देख कर तैने भी अपने विष को छोड़ दिया। हे फल क्या तू मेरे लिये अमर फल हो गया। आवाज सुनकर चौकीदार उठा और ब्राह्मण को पकड़ लिया दूसरे दिन ब्राह्मण को राजा के पास ले जाकर खड़ा किया। ब्राह्मण ने फल खाना कबूल करते हुए अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया, मैंने विष फल समझ कर खाया परन्तु उसने मुझे समर्थ और जवान बना दिया क्या यह विष वृक्ष नहीं है अमर फल का वृक्ष है? ब्राह्मण को छोड़ दिया राजा अत्यन्त आश्चर्य में पड़ा कुछ समझ न सका।

जिस प्रकार अमर फल अमर फल ही था परन्तु सर्प के विष के संयोग से विष फल हुआ, अमर करने के बदले मरण करने वाला हुआ। कौए की मृत्यु विष के फल से हुई। विष का असर ऊपर ऊपर गूदे में ही रहा वास्तविक अमरता जो गुठली में थी उसमें विष का कुछ भी असर न हुआ गूदे का आधार गुठली थी। इसी प्रकार सब का अधिष्ठान स्वरूप आधार स्वरूप आत्मा है वह गुठली के समान है, आभास युक्त अहंकार विष युक्त गूदा है। इस प्रकार का तादात्म्य सम्बन्ध से आत्मा सुखी दुःखी मरने वाला होता है।

अहंकारस्य तादात्म्यं
चिच्छाया देह साक्षिभिः।
सहजं कर्मजं भ्रान्ति
जन्यं च त्रिविधं क्रमात् ॥८॥

अर्थः—चिच्छाया, देह और साक्षी के साथ अहंकार का सहज (स्वाभाविक), कर्म जन्य और भ्रान्ति जन्य क्रम से तीन प्रकार का तादात्म्य सम्बन्ध है।

विवेचन।

अहकार को सिद्ध करके अहंकार के सम्बन्ध को दिखलाते हैं। चिदाभास जो चैतन की छाया है उसके साथ में अहंकार का सहज यानी स्वाभाविक सम्बन्ध है। सामान्य को सहज कहते हैं दोनों में से किसी की भी विशेष क्रिया न होते हुए जो सम्बन्ध होता है वह स्वाभाविक है। जैसे एक ग्राम में एक

मकान है उस मकान का उस ग्राम के साथ जो सम्बन्ध है वह स्वाभाविक है पृथिवी में के सब प्राणियों का पृथिवी के साथ जो सम्बन्ध है वह स्वाभाविक है। सूर्य की धूप में आतशी शीशा धरने से विशेषता युक्त धूप का बिन्दु बन जाता है उस विशेषता वाले बिन्दु में रुई को जलाने की सामर्थ होती है। विशेष बिन्दु के जलाने की सामर्थ्य के साथ जो सम्बन्ध है यह स्वाभाविक है।

अहंकार का शरीर के साथ में कर्मजन्य सम्बन्ध है। पूर्व में जिस प्रकारके कर्म अहंकार ने किये उसके अनुसार संस्कार बने उससे अन्य शरीर धारण करने का अदृश्य बना और वर्त्तमान शरीर उन कर्मों के अनुसार बना है इसीसे अहंकार का शरीर के साथमें कर्म जन्य सम्बन्ध है। अहंकार ने ही कर्म किये थे और उसीके अनुसार भोग के निमित्त शरीरको धारण किया है। जैसे कोई कार्य करने से किसी के साथ में किसी का सम्बन्ध हो इस प्रकार है इसीसे कर्म जन्य है।

अहंकार का साक्षी के साथ में भ्रांति जन्य सम्बन्ध है। अहंकार माया का कार्य है और साक्षी शुद्ध चेतन है, अहंकार व्यवहारिक सत्ता का है और साक्षी पारमार्थिक स्वरूप है ऐसे दोनों की भिन्नता होने से दोनों का सम्बन्ध बन नहीं सकता और सम्बन्ध से ही अहंकार वर्तता है इससे अहंकार का यह सम्बन्ध भ्रांति से है। अज्ञान से अहंकार अपने को जीव-आत्मा समझकर वर्तता है और कर्त्ता भोक्ता बनता है। शुद्ध चेतन में कर्त्ता भोक्ता की सिद्धि नहीं होती ऐसे चेतन को छोड़कर अहंकार कर्त्ता भोक्ता बनने को समर्थ नहीं है, और व्यवहार में बनता है यह भ्रांतिजन्य तादात्म्य सम्बन्ध से होता है।

इस तरह अहंकार का तीनों के साथ तीन प्रकार का सम्बन्ध है उस सम्बन्ध से ही कर्त्ता भोक्ता जीव बनता है और संसारी होकर अनेक योनियों में घूमता रहता है जब तक ऊपर वाले तीनों सम्बन्ध का विच्छेद न हो तब तक अहंकार रूप जीव चौरासी लच्च योनिओं में भ्रमण किया ही करता है।

एक वैश्य के चार लड़के थे धंधा भी अच्छा चलता था। तीनों बड़े लड़के माता पिता की आज्ञा में वर्तते थे और धंधा भी चित्त लगाके करते थे इसीसे वे माता पिताको प्यारे थे सबसे छोटा चौथा लड़का पिताकी आज्ञा नहीं मानता था और अपनी इच्छानुसार वर्तता था धंधा करता नहीं था और इधर उधर घूमा करता था। एक दिन छोटे लड़के पर घरके सब नाराज़ होगये लड़का भी गुस्से में आकर अन्ट संट बकने लगा। सबने गुस्सा होकर घरमें से निकाल दिया; लड़के ने घर से निकल कर जंगल की राह ली पांच कोश जाने के बाद वह एक पानी का झरना और फूंस की कुटी देखकर बैठ गया। झरने में से पानी पीया, कुटी पर एक साधु दिखाई दिया। साधु के पास जाकर अपनी सब कहानी सुनाई। साधु को दया आई और प्रेम दृष्टि से लड़के को कहने लगे:—जगत् में सब कोई स्वार्थ के हैं अपने स्वार्थ की सिद्धि न हो तो कोई किसी को पूछता नहीं है। तू योग्य उमर का हुआ है अब तुझे कोई उद्यम अवश्य करना चाहिये।

लड़का:—महाराज मैं आपके कहने के अनुसार करूंगा। मैं घर पर नहीं जाऊंगा। यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपके पास रह सकता हूँ।

साधु:—भले ही घर पर मत जा तुझे कोई उद्यम अवश्य करना होगा। तू कुछ रोज़ मेरे पास टिक सकता है, हमेशा यहां

रह नहीं सकता। आलस में पड़े रहना ठीक नहीं और भीख मांगना तो बहुत ही खराब है। बिना मतलब इधर उधर घूमना भी ठीक नहीं है इस प्रकार बुद्धि भ्रष्ट होती है। ऐसा कह कर कुछ खिलाया और कहा यहां ताड़ के पेड़ बहुत हैं उन्हीं के पत्तों को काट कर पंखा बना कर बेचने से तेरा गुजारा हो जायगा।

साधु ने लड़के से पत्ते कटवा मंगवाये और पंखा बनाना सिखा दिया। प्रथम दिन पांच पंखे बनाये दूसरे दिन दस इस प्रकार अधिक २ बनाता गया और साधु के कहने से शहर में जाकर दुकानदारों को बेच आने लगा। कुछ दिनमें दो दो रुपया रोज पैदा करने लगा। गरमी की ऋतु समाप्त होने से ताड़ के पंखे की बिक्री कम होगई तब साधु ने अन्न मंगवाकर थोड़ी दूर पर एक तालाब के किनारे डलवा दिया वहां प्रति दिन मोर अन्न खाने आने लगे और यहां मोर के पंख मिलने लगे। लड़का उसके पंखे बनाने लगा उन पंखों के दाम बहुत आने लगे एक सालमें ही उसके पास एक हजार रुपया होगया साधुके कहने से तालाब के किनारे झोपड़ी बनाकर रहने लगा। पंखा बनाकर बेचने का कार्य करता ही रहा आठ साल में वह पूरा मालदार बन गया। अब उसने झोंपड़ी के स्थान पर एक बड़ा मकान बनाने का निश्चय किया और मकान बनवाने लगा।

लड़के का कुटुम्ब जिस शहर में था वहां प्लेग की बीमारी बहुत जोर से चली बहुत से मनुष्य मर गये उसमें उसके तीनों भाई भी प्लेग के शिकार बने पश्चात् छः मास में उसकी माता का देहान्त होगया, पिता अकेला ही रह गया। धंधे में दिन पर दिन टोटा बढ़ने लगा धंधा चलना बन्द हुआ और करजा

चढ़ गया बारबार करजे के तगादे के दुःखसे ग्राम छोड़ देना पड़ा देहात में चला गया और मजूरी करके पेट भरने लगा। शरीर जीर्ण होगया था शरीर की शक्ल बदल गई, शरीर पर के वस्त्र भी फटे पुराने और मैले थे जो उसे भली प्रकार जानने वाले थे वे भी यकायक उसे पहिचान नहीं सकते थे। जब लड़के ने अपना मकान बनाना आरम्भ किया तब से वह वैश्य मजदूरी करने को आया करता था। लड़का उसे न पहिचान सका और लड़के को उसने भी नहीं पहचाना, मकान पूर्ण बन गया था थोड़ी आसपास की सफ़ाई बाकी थी मकान के नागर करने के समय पर लड़के को विचार हुआ कि यह मनुष्य जो बहुत दिन से मजूरी करने को आया करता है वह अच्छा मनुष्य मालूम नहीं होता उसकी निगाह अच्छी नहीं है, बदमाश दीखता है मेरे घर का पूरा जानकार होगया है कौन वस्तु कहां रहती है सब उसे मालूम है, कहीं रात्रि को आकर मुझे लूट न ले, इससे उसका नाम पता मालूम कर लेना चाहिये। ऐसा विचार कर उसको बुलाने के लिये एक मनुष्य भेजा।

मजदूर के पास आकर मनुष्य ने कहा चल मालिक तुझे बुलाता है? मजदूर ने कहा मेरा क्या काम है? मनुष्य ने कहा काम की मुझे कुछ खबर नहीं है मकान की प्रतिष्ठा ग्रह शान्ति यज्ञ आज होने वाला है उसीके निमित्त ही बुलाते होंगे। मजदूर ने विचार किया आज मेरा बलि दिया जायगा यज्ञ में बलि देने को मुझे बुलाते होंगे? (उस समय नये मकान की प्रतिष्ठा के यज्ञ में मनुष्य का बलि दिया जाता था) हाय अब क्या करना चाहिये? मैं अधिक से अधिक दुःखी हो गया हूं अब अन्त में प्राण जाने की नौबत आ पहुँची है। मनुष्य से बोला अब मुझे मजदूरी करना नहीं है मैं जाता हूँ। मनुष्य

बोला मालिक के पास चल मजदूर ने कहा मैं नहीं जाऊंगा ऐसा कह कर चलने लगा, लड़के ने उसे जाते देखा और शंका दृढ़ हुई यह मजदूर अवश्य बदमाश है तुरंत दो मनुष्य भेजकर अपने पास बुलाया। मजदूर कांपता हुआ जबरन दो मनुष्यों के साथ लड़के के पास आया और हाथ जोड़ कर बोला:—मैं बहुत दुःखी ग़रीब मनुष्य हूँ मुझे छोड़ दीजिये, बहुत से मजदूरों में से आप किसी को बलि के निमित्त ले सकते हैं। लड़का उसके दीन वंचन सुनते हुए सूक्ष्मता से चेहरा देखता रहा उसे मालूम हो गया कि यह मेरा ही पिता है। ऐसे ही मजदूर भी लड़के को सूक्ष्मता से देखने लगा और उसे भी निश्चय हुआ कि यह मकान बनवाने वाला मेरा ही सबसे छोटा लड़का है जिसे हम सब लोगों ने घर में से निकाल दिया था। दोनों थो ी देर अवाक् रह गये बाद लड़का बोला लक्ष्मीशंकर नाम के वैश्य तुम ही हो। मजदूर ने कहा हाँ और तू लक्ष्मीशंकर वैश्य का सब से छोटा लड़का है। लड़के ने कहा हाँ। वैश्य के पुराने कपड़े बदलवा दिये और नये वस्त्र धारण कराये बहुत दिन के बाद पिता पुत्र मिले और आनन्द से रहने लगें।

ऊपर के दृष्टांत में जितना समझने का अंश है उसी का ही ग्रहण करना चाहिये। लड़का अहंकार है, पिता चिदाभास है, मजदूर शरीर है और मनुष्य साक्षी है। लड़के का पिता से सहज सम्बन्ध है। मजदूर से कर्म जन्य सम्बन्ध है और मनुष्य से भ्रान्तिजन्य सम्बन्ध है इसी प्रकार अहंकार का चिदाभास से सहज सम्बन्ध है, शरीर से कर्म जन्य सम्बन्ध है और साक्षी से भ्रान्ति जन्य सम्बन्ध है।

सम्बंधिनो सतोनास्ति
निवृत्तिः सहजस्यंतु।

कर्मक्षयात्प्रबोधाच्च
निवर्तेते क्रमादुभे ॥६॥

अर्थः—दोनों सम्बंधियों के रहते हुए स्वाभाविक तादात्म्यक सम्बंध की निवृत्ति नहीं होती और दूसरे दोनों सम्बन्ध तो क्रम से कर्मों के नाश से और ज्ञान से निवृत्त होते हैं ।

विवेचन ।

चेतन के आभास (चिदाभास) और अंतःकरण की वृत्ति रूप अहंकार दोनों का तादात्म्य सम्बंध किसी खास कारण से नहीं है, दोनों का भान होने से दोनों के सम्बंध की सिद्धि है इसी से यह सहज सम्बंध है। जब तक दोनों रहते हैं तब तक उनके सम्बंध की निवृत्ति नहीं होती; जब कोई भी कारण से उत्पन्न हुआ सम्बंध होता है तब कारण निवृत्त होते ही सम्बंध की निवृत्ति होती है, चिदाभास और अहंकार का सहज सम्बंध किसी कारण से उत्पन्न हुआ नहीं है इससे निवृत्त नहीं होता दोनों के भान में ही सम्बंध है। जब तक वे दोनों रहते हैं तब तक उनका सहज सम्बंध भी रहता है ।

अहंकार का शरीर के साथ में कर्मजन्य सम्बंध है और अहंकार का साक्षी के साथ में भ्रांति जन्य सम्बंध है। ये दोनों सम्बंध रहते हुए चिदाभास और अहंकार का सहज संबंध निवृत्त नहीं होता क्योंकि भ्रांति से अहंकार में कर्तापना है और कर्म से बने हुए शरीर में आभास से चेतनता है दोनों के सम्बंध से अहंकार और कर्ता चेतन बनता है। ज्ञान के पश्चात शरीर रहता है तब तक जो व्यवहार होता है वह भुने हुए अन्न

के समान है वहां भ्रांति का नाश हुआ है परन्तु कर्म का क्षय नहीं हुआ इससे चिदाभास और अहंकार का सहज सम्बंध भी रहता है।

अहंकाररूप कर्ताने कर्म किये और उन कर्मोंका फल भोगनेके लिये कम के अनुसार शरीर बना इसीसे शरीरका कारण कर्म है, शरीर कार्य है कर्म उसका कारण है। कर्म करने में अहंकार का अभिमान है इसीसे कर्म का कर्त्ता अहंकार है उस अहंकार का शरीर के साथ जो सम्बंध है वह कर्मजन्य सम्बंध है, कर्म से शरीर बना हुआ है जब कर्मों के नाश से शरीर का नाश होता है तब अहंकार का उस शरीर के साथ का कर्म जन्य सम्बंध का भी नाश होता है।

ऐसे अनेक शरीरों के साथ अहंकार का कर्म से सम्बंध होता है और कर्म के क्षय होने से सम्बंध का भी नाश हुआ ही करता है, जब तक भ्रांति का नाश नहीं होता तब तक कर्म जन्य सम्बंध का नाश होना और उत्पन्न होना हुआ ही करता है।

अनादि अविद्या कृत सम्बंध, कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर से है उस सम्बंध की निवृत्ति समूल अविद्या की निवृत्ति से होती है। साक्षी के साथ जो अहंकार का भ्रांति जन्य सम्बंध है वह जब प्रबोध से निवृत्त होता है तब कारण शरीर का और सूक्ष्म शरीर का सम्बंध भी निवृत्त हो जाता है।

दोनों शरीरों से अविद्या का सम्बंध निवृत्त होने के पश्चात् ही स्थूल शरीर के कर्म जन्य सम्बंध की निवृत्ति कर्म के क्षय से होती है, यह ही अपुनरावर्ति है।

भ्रान्ति जन्य सम्बन्ध जो अहंकार का साक्षी के साथ में है उस सम्बन्ध की निवृत्ति प्रबोध से होती है। बोध स्वरूप आत्मा होते हुए भी स्वरूप के अज्ञान से अपने को तुच्छ अनात्म समान मरने जीने वाला सुखी दुःखी जीव मानता है, जब स्वरूप का यथार्थ बोध होता है तब अज्ञान निवृत्त होजाता है, ज्ञान स्वरूप आत्मा को अज्ञान का भान ही भ्रांति है। स्वरूप के अबोध में भ्रान्ति है इसीसे स्वरूप के बोध से उसकी निवृत्ति होजाती है।

तीनों सम्बन्ध में भ्रांति का मुख्य सम्बन्ध है, भ्रांति के संबंध की निवृत्ति से कर्म जन्य सम्बन्ध की निवृत्ति होती है और जब भ्रांति और कर्म जन्य सम्बन्ध की निवृत्ति होती है तब तीसरा सहज सम्बन्ध भी निवृत्त होजाता है।

एक राजा अपने राज्य में आनन्द से राज्य करता था, कई वर्षों के बाद शहर में चोरों का उपद्रव बढ़ गया। चालाक चोर अनेक युक्तियों से चोरी करते थे, राजा और प्रजा अत्यन्त दुःखी हो रहे थे। राज्य कर्मचारियों को बहुत प्रयत्न करते हुए भी चोरों का पता लगता नहीं था। राजा ने अनेक गुप्तचर रक्खे और चौकीदार भी बढ़ा दिये तब भी जब चोरों का पता न लगा और चोरी की संख्या बढ़ती ही गई तब राजा ने चोर न पकड़े जाने तक राजमहल में न जाने की प्रतिज्ञा की, व्याकुल हुआ राजा रात दिन चोरों की तलाश में घूमने लगा। एक दिन दोपहर के समय में राजा ने एक मनुष्य को शहर से बाहर जंगल में दौड़ कर जाते हुए देखा। राजा ने उसका पीछा किया मनुष्य थोड़ी देर में ही राजा की दृष्टि से गायब होगया, राजा आगे ही जाता रहा, एक समय फिर मनुष्य दिखाई दिया और गुम

होगया। राजा को पानी की प्यास लगी और थक गया था इसीसे एक पानी के झरने के पास घोड़े से उतर कर पानी पिया, थोड़ी देर आराम करने को पेड़ से घोड़े को बांध कर पेड़ के नीचे जा बैठा, राजा थका हुआ था ही, ठंडी हवा लगने से नींद आगई।

राजा को ऐसा मालूम हुआ कि मैं एक प्रसिद्ध चोर हूँ मेरा नाम कुशल है मैं चतुराई के साथ अनेक चोरियाँ करता रहा, चोरी के माल से मालदार भी बना हुआ हूँ। हाय! अब मेरा सब धन मेरे किस काम का? मैं अन्तिम चोरी करते समय पकड़ा गया हूँ और जिंदगी भर की सजा हुई है क़ैदखाने में पड़ा सजा भोग रहा हूँ ऐसे विचारता हुआ सड़क की मट्टी खोद रहा है, जेल के चपरासी डंडा मार कर काम करा रहे हैं। दोपहरी में काम करने वाले पाँच क़ैदी और उसके पहरे वाले सिपाही एक पेड़ की छाया में जाकर बैठे, वहाँ एक घूमता हुआ साधु आ पहुंचा वह भी सबके साथ बैठ गया। कुशल ने साधु को प्रणाम किया और साधु के पूछने से कुशल ने अपना सब वृत्तान्त इस प्रकार कहा:—

एक दिन मैं अपने पिता के पास बैठा था तब मेरे पिता ने कहा, हे कुशल! मेरे कहे हुए कार्य को जो तू कर सकेगा तो मैं तुझे धन्यवाद दूँगा; इस देशके राजा की रानी के गले में एक सुवर्ण की बहुमूल्य माला है उसे तू चुराकर मेरे पास ला सके तो मैं तुझे चोर विद्या में निपुण (पक्का चोर) समझूँगा, इस कार्य से तेरी कीर्त्ति भी होगी। मैंने पिता की बात मानली और रानी के गले की माला को किसी प्रकार से चुराकर लाने का निश्चय किया। मैं राजमहल के आस पास चक्कर लगाने लगा। राजमहल के भीतर किस प्रकार की व्यवस्था है किस तरफ

कितने और किस प्रकार फाटक हैं, वे किस प्रकार से खोले जाते हैं या खुले ही रहते हैं, दरवान किस प्रकार का बन्दोबस्त रखते हैं, रानी का शयन मंदिर किस जगह है, शयन मंदिर में रात्रिको कोई और रहता है या नहीं, रानी कब सो जाती है आदि सब बातों का निर्णय कर लिया।

मुझे ठीक मालूम होगया कि रानी का शयन मंदिर तीसरी मंजिल पर है और उस स्थान पर जाने के समय एक मुख्य फाटक और दो छोटे फाटकों में से जाना पड़ता है प्रत्येक फाटक के ऊपर दस २ शस्त्र धारण किये हुए सैनिक रात्रि के समय पहरा देते हैं, तीन तीन घन्टे पर जब पहरा बदला जाता है तब दूसरे दस सैनिक आजाते हैं।

मैंने अपने शरीर को काले वस्त्र से ढांप लिया और राजमहल के मुख्य फाटक पर आकर खड़ा हुआ। सात बजे पहरा बदला गया इस समय दस पुराने पहरे वाले और दस नये बदलने वाले कुल बीस पहरेदार इकट्ठे हुए इस गड़बड़ में मौका देखकर मैं मुख्य फाटक के भीतर चला गया, इसी प्रकार दोनों छोटे फाटकों में से भी मैं भीतर घुस गया और रानी के महल के नीचे जा पहुंचा। रात्रिके नौ बजने के समय पर रानी के महल में पूर्ण प्रकाश था, एक दासी रानी के पलंग के पास बैठकर कुछ बात कर रही थी, नीचे की सीढ़ी बन्द थी इससे दिवाल में कीलें ठोके बिना ऊपर जा नहीं सकता था, नौ बजे का जब घन्टा बजने लगा तब एक एक आवाज के साथ में एक एक कील को ठोकता गया, फिर ऐसे ही दस बजने पर कील ठोकता गया ग्यारह बजे कीलें ठोककर उन पर से रानी के शयन मंदिर में पहुंच गया बारह बजे दासी और रानी दोनों ठीक नींद में पड़ी

हुई देखीं। प्रथम तो दासी के पास जाकर उसके मुख में कपड़े को ठूंस दिया तब वह जाग्रत होकर जोर करने लगी उसी समय तलवार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उसके वस्त्र उतार कर मैंने पहन लिये और रानी के पलंग के पास जा बैठा। जब पूरा निश्चय होगया कि रानी पूर्ण निद्रा में है तब धीरे से रानी के गलेमें से सुवर्ण की माला खोलकर निकाल ली, कीलों पर रस्सा बांध उसके सहारे मैं नीचे उतर आया जब प्रथम फाटक के पास पहुंचा तो फाटक बन्द था और वहां एक चौकीदार खड़ा था फाटक के बाहर सैनिक खड़े थे, मैंने दरवान से कहा "दरवान! जल्दी से फाटक खोल—रानी साहिब के एक जरूरी काम के लिये मुझे जल्दी से बाहर जाना है।" दरवान दृढ़ और चतुर था, मेरी आवाज में उसे शक हुआ तुरन्त उसने मेरे पैरों की तरफ देखा। शक बढ़ता गया, उसने मुझे कहा तू कौनसी दासी है तेरी आवाज मुझे अपरिचित मालूम होती है मैं कुछ उत्तर दूं इसके प्रथम ही दरवान ने आकर मुझे पकड़ लिया बिजली की बत्ती के प्रकाश में मेरा मुख देख कर उसे मालूम हो गया कि यह स्त्री नहीं है; तुरन्त रस्से से मुझे बांध लिया और घसीटते हुए लेजा कर फाटक खोला और सीटी बजाई सब सैनिक दौड़ आये और कुलाहल मच गया।

आवाज से रानी की नींद खुल गई तो देखती है कि दासी का शिर और धड़ अलग पड़ा है और लोहू फैला हुआ है घबराहट में चिल्लाई तब नीचे से एक दासी आई और रानी को नीचे का सब हाल सुनाया।

दरवान ने मुझे बाँध लिया अधिक मनुष्य आ गये तब मेरा वस्त्र खींच लिया। मेरी खाना तलाशी ली मेरे पास से रानी

की माला निकली बहुत मनुष्यों ने मुझे इस समय खूब पीटा मैं वेहोश हो गया। रानी को खबर हो गई कि दासी का खून करने वाला और माला का चोर पकड़ा गया है। दस बजे के अन्दाज पर मुझे राज कचहरी में राजा के पास खड़ा किया ।

मैं किस प्रकार पकड़ा गया, किसने पकड़ा इत्यादि सब हाल दरबान और सैनिकों द्वारा राजा ने मालूम कर लिया था । मेरी पहिचान और लोगों से कराकर के राजा ने निश्चय कर लिया कि मैं पक्का चोर और खूनी हूं।

राजा ने मुझसे पूछा तू राजमहल में कैसे घुसा ? मैं कुछ बोला नहीं। राजा ने मुझे फिर पूछा तैने दासी का खून क्यों किया ? फिर भी मैं कुछ न बोला, तब राजा गुस्सा हुआ और राज कचहरी में ही मुझे ताड़ना देने लगा। जब अधिक मार से मैं घबरा गया तब मैंने राजा से कहा. मैं चोर हूँ बहुत सी चोरियां और खून भी मैंने कर डाले हैं मैं अभी तक पकड़ा नहीं गया था आज कुछ मेरा ग्रह विपरीत होने से ही पकड़ा गया हूँ।

राजा:—रानी को मालूम न होते हुए उसके गले में से सुवर्ण माला तैने किस प्रकार निकाली ?

चोर:—यह ही मेरी चतुराई थी। माला को मैंने एक तरफ से खोल दी और रानी ने जब करवट ली तब धीरे से खेंच ली।

राजा:—तैने दासी को किस प्रकार मारा और महल के ऊपर कैसे चढ़ा ?

चोरः—सात बजे पहरा बदलते समय में मैं तीनों फाटक के भीतर घुस गया घण्टे की आवाज के साथ में दिवाल में कीलें ठोक कर कीलों के सहारे ऊपर चढ़ा, दासी और रानी दोनों सोई हुई थीं मैंने दासी के मुख में कपड़ा ठूँसा और तलवार से सिर अलग कर दिया। काम तो बहुत चतुराई से किया था, दासी के वस्त्र पहन कर फाटक खुलवा कर जाने को ही था दरवान को शक हुआ और उसने मुझे पकड़ा अब तो आप ही मालिक हैं।

राजा को चोर की चालाकी से बहुत आश्चर्य हुआ। खूनी को फांसी की सजा देना ठीक न समझा, जिन्दगी भर की सख्त क़ैद की सजा दी। यही सजा मैं जेलखाने में भोग रहा हूँ। महा कष्ट है पाप की सजा भोग रहा हूँ, छूटने का कोई उपाय नहीं है। कुशल साधु को प्रणाम करते हुए बोला इस कष्ट की निवृत्ति का कोई उपाय हो तो बताइये, मैं बहुत दुःखी हूँ।

साधु ने कहा मुझे एक महा मंत्र याद है इस मन्त्र को सुनते ही तेरा सब कष्ट निवृत्त हो जायगा मेरे पास आ। कुशल पास गया। साधु ने कुशल के कान के पास मुख ले जाकर कहा. चेत होशियार हो तू चोर नहीं है राजा है। कुशल के कान में आवाज़ पड़ते ही वह एक साथ चौंका और देखता है तो राजा पोशाक सहित एक पेड़ के नीचे बैठा है और पेड़ से घोड़ा बँधा है राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। हाय! क्षण भर में क्या क्या तमाशा होगया। नींद खुलते न चोर है न साधु है और चोर जिस सड़क पर काम करता था न वह सड़क है। राजा स्वप्न के कष्ट से निवृत्त होकर घोड़े पर सवार होकर राज्य में चला गया।

राजा साची रूप है निद्रा रूप भ्रांति से, अहंकार का सम्बंध होते ही राजा को अपना बोध न रहा और मैं चोर हूँ ऐसा भान हुआ—चोर ही हो गया। राजा का चोरपना भ्रान्ति से है।

राजा के अस्तित्व रूप प्रकाश का ही आभास चोर के अस्तित्व में है यह आभास और अहंकार एक स्थान पर टिके होने से दोनों का स्वाभाविक सम्बन्ध है।

कर्त्ता रूप अहंकार ने बहुत अधर्म किये जिससे चोर रूप शरीर हुआ और चोरी करना रूप कर्म का फल जेलखाने में शरीर से भोग रहा है यह कर्म जन्य सम्बन्ध है।

साधु ने जब, तू राजा है ऐसा उपदेश दिया तब तुरन्त भ्रान्ति निवृत्त हुई और राजा की नींद खुल गई। चोर के कर्मों का चय होने से चोर का शरीर न रहा ऐसे भ्रान्ति का और कर्म का चय होने से राजा को अपना होश हुआ तब चोर रूप व्यक्ति में "मैं हूँ" यह अहंकार और चिदाभास भी न रहा और उसका सहज सम्बंध भी न रहा। भ्रान्ति निवृत्त होते ही दोनों सम्बन्ध निवृत्त हुए स्वरूप को प्राप्त हुआ।

आत्मा राजा है अज्ञान की निद्रा में जीव चोर है और कष्ट को भोग रहा है गुरु कृपा से बोध होते ही अज्ञान निवृत्त होकर परमानंद प्राप्त होता है।

अहंकारलये सुप्तो
भवेद्देहोऽप्यचेतनः ।

अहंकार विकासार्धः
स्वप्नः सर्वस्तुजागरः ॥१०॥

अर्थः—सुषुप्ति अवस्था में अहंकार का लय हो जाने पर देह भी अचेतन हो जाता है, अहंकार का आधा प्रकाश स्वप्न है, और जाग्रत में पूरा प्रकाश होता है।

विवेचन।

अहंकारको कर्ता भोक्तारूप होनेसे एक प्रकारसे शरीरका मालिक समझा जाता है अहंकार से ही शरीर चेतनवाला मालूम होता है। शरीर को तीन अवस्थायें होती हैं, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत, इन अवस्थाओं से तीन प्रकार का शरीर कहा जाता है, कारण सूक्ष्म और स्थूल। अवस्था के भेद से अहंकार के प्रकाश में भेद होता है। कारण शरीर सुषुप्ति की अवस्था में अहंकार का लय होता है इससे शरीर अचेतन हो जाता है या यों कहो कि अहंकार अपनी कारण अविद्या में सो जाता है—विश्रान्ति लेता है। सुषुप्ति अवस्था में शरीर को अचेतन कहा है यह भीतर बाहर ज्ञानशून्य होने से कहा है, मुरदे के समान की अचेतनता सुषुप्ति में नहीं है, मुरदा प्राण रहित होता है और सुषुप्ति में मुख्य प्राण रहता है इन्द्रियां और उनके गोलकों के साथ सम्बंध रखने वाला प्राण नहीं होता (दबा रहता है) सुषुप्ति से जाग्रत और स्वप्नावस्था को प्राप्त होता है और मृत्यु के बाद इस शरीर में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति कोई भी अवस्था नहीं रहती।

सुषुप्ति अवस्था में अहंकार का लय होने से अहंकार और अहंकार के कार्य की प्रतीति नहीं होती स्वप्नावस्था में अहंकार

अर्ध प्रकाश वाला होता है यानी वाहर से ज्ञानशून्य हो कर आंतर में संस्कार की त्रिपुटी में रमण करता है और जाग्रत अवस्था में अहंकार का पूरा प्रकाश रहता है, इसलिये वाहर के स्थूल व्यवहार को और मानसिक सूक्ष्म व्यवहार को भी करता है।

सुपुप्ति में अहंकार अत्यंत सूक्ष्म होने से—कारण रूप होने से पृथक् रूप से प्रतीत नहीं होता तो भी वहां अहंकार है अवश्य। वहां का अहंकार जैसे गर्भ में वालक होता है इस प्रकार का है, स्वप्नावस्था में थोड़ा विकाश वाला प्रकट होता है जैसे वालक जन्मने के पश्चात् वालक रूप से मालूम होता है। जाग्रत अवस्था में अहंकार पूर्ण विकाश वाला है जैसे वालक युवावस्था में वड़ा और दृढ़ होता है। इसी प्रकार अहंकार है।

अहंकार तीनों शरीर के सम्बंध से तीन प्रकार का होता है, कारण शरीर के सम्बंध से कारण रूप, सूक्ष्म शरीर के सम्बंध से सूक्ष्म रूप और स्थूल शरीर के सम्बंध से दृढ़ स्थूल रूप होता है। जब कारण शरीर में अहंकार कारण रूप होता है तब उसकी सूक्ष्मता और स्थूलता का तिरोभाव होता है यानी सूक्ष्मता और स्थूलता वाला विकास नहीं दीखता। सूक्ष्म शरीर के साथ अहंकार का सूक्ष्म रूप होता है तब कारण अहंकार सहित होता है और स्थूल अहंकार का तिरोभाव होता है और जब स्थूल शरीर में स्थूल अहंकार होता है तब कारण और सूक्ष्म सहित ही स्थूल होता है।

जैसे किसी ने एक वीज जमीन में वोया कुछ जड़ जमीन में गई है, ऊपर मट्टी है इस हालत में कौन से वृक्ष का वीज है, जड़

कितनी और कैसी है कुछ मालूम नहीं होता। बीज का उत्पत्ति स्थान मृत्तिका है वह उसके साथ एक भाव को प्राप्त हुआ है तैसे सुषुप्ति अवस्था में अहंकार का भी यही हाल है वह भी अपने उत्पत्ति स्थान अविद्या के साथ एक भाव को प्राप्त हुआ होता है।

बीज जड़ दृढ़ होते ही ऊपर को कुल्ला देता है और बढ़ कर वृक्ष हो जाता है तब कई शाखायें और पत्तों से युक्त होता है इस समय कौन सा वृक्ष है यह मलूम हो जाता है, पत्तियां और शाखायें छोटी छोटी होती हैं वृक्ष में पूर्ण रस भरा हुआ नहीं है और फल फूल भी आये हुए नहीं हैं, स्वप्नावस्था का अहंकार भी इसी प्रकार का है।

वृक्ष जब बहुत बडा हो जाता है तब अधिक विस्तार वाला होता है दूर से ही मालूम होता है कि अमुक वृक्ष है फल फूल और पत्तों से शोभायुक्त होता है फल देता है और सूर्य की धूप को रोक कर छाया करने वाला होता है। जाग्रत अवस्था का अहंकार इसी प्रकार का है, अधिक फैला हुआ है और फल भी देता है, संसारी मनुष्यों को संसार में शुभ कर्म करने से छाया देने वाला समझा जाता है।

अन्तःकरणवृत्तिश्च
चितिच्छायैक्यमागता।
वासनाः कल्पयेत्स्वप्ने
बोधेऽक्षैर्विषयान्बहिः ॥११॥

अर्थः—अन्तःकरण की वृत्ति, चिति और चिदाभास के साथ एकता को प्राप्त होकर स्वप्न में वासनाओं की कल्पना

करती है और जाग्रत में इंद्रियों द्वारा बाहर के विषयों की कल्पना करती है।

विवेचन।

अंतःकरण, चेतन और चेतन के आभास सहित होता है इसीसे जहां अंतःकरण की वृत्ति होती है वहां चेतन और आभास सहित ही होती है। आभास और अधिष्ठान चेतन रहित न अंतःकरण होता है न अंतःकरण की वृत्ति ही होती है, इसीसे जहां अंतःकरण की वृत्ति होती है वहां तीनों का एक भाव होता है ऐसे एक भावको प्राप्त हुआ अन्तःकरण स्वप्न में वासनाओं की कल्पना करता है और बाहर जाग्रत में इंद्रियों द्वारा विषयों में व्यवहार करता है।

निद्रा में जब जाग्रत अवस्था का भान नहीं रहता और पूर्ण लय को यानी सुषुप्ति को भी प्राप्त नहीं होता तब आंतर में कंठ की हिता नाड़ी में सृष्टि का भाव होता है उसे स्वप्न कहते हैं। स्वप्न जाग्रत की अपेक्षा से आंतर है उस अवस्था में जाग्रत अवस्था के देखे सुने और अनुभव किये हुए आदिक जो सूक्ष्म संस्कार आंतर में पड़े हुए हैं उनकी तरफ चेतता है यानी संकल्पों में सृष्टि की कल्पना करता है वहां वासना से युक्त अंतःकरण विषय और इंद्रिय रूपमें परिणाम होजाता है यहां द्रष्टा दृश्य और दर्शन की त्रिपुटी की रचना करके प्रत्यक्ष रूप से व्यवहार करता है। जैसे जाग्रत अवस्था में व्यवहारिक रथ है रथ में जुतने वाले घोड़े हैं घोड़ों को चलने का मार्ग है ऐसा रथ और मार्ग वहां नहीं है इसीसे वह काल्पनिक है और व्यवहार होते हुए भी स्वप्न है।

स्वप्न की संपूर्ण रचना अंतःकरण का परिणाम है। पृथक् फल चेतन (चिदाभास) जो इंद्रिय जन्य वृत्ति में पड़ा हुआ (आभास) है उसका स्वप्नमें उपयोग नहीं है। इससे स्वप्न प्रातिभासिक सत्ता का है। जब अंतःकरण की वृत्ति इंद्रिय द्वारा दीर्घ होकर विषय पर्यंत जाती है तब वहां (फल चेतन) आभास का उपयोग होता है और चिदाभास के प्रकाश से विषय प्रकाशित होता है, स्वप्न में इंद्रिय द्वारा अंतःकरण की वृत्ति विषय तक नहीं जाती क्योंकि सब अंतःकरण में कल्पित है इससे स्वप्न के पदार्थ चिदाभास से प्रकाशित नहीं है।

जाग्रत के सुख दुःखादिक में तो अंतःकरण की सुखाकार और दुःखाकार वृत्ति का साक्षी से सीधा सम्बंध है लेकिन यह साक्षी भास्य होते हुए भी और इनमें चिदाभास का उपयोग न होते हुए भी व्यावहारिक सत्ता के हैं। साक्षी भी अंतःकरण की वृत्ति की अपेक्षा से प्रकाशता है इससे पृथक् बोध हो सकता है किंतु स्वप्न में तो अंतःकरण ही स्वप्न पदार्थों का उपादान है उसमें साक्षी का प्रकाश होते हुए भी वृत्ति प्रमाता (विश्वनामा जीव) की नहीं है इससे प्रातिभासिक है। सुख दुःखमें सुख दुःखाकार वृत्ति है और स्वप्नमें निद्रा दोष है।

तीन सत्ता मानने वाले कोई आचार्य स्वप्न को अंतःकरण का परिणाम न कहते हुए निद्रा दोष से साक्षात् अविद्या का ही परिणाम कहते हैं और ब्रह्म चेतन से उसका प्रकाश मानते हैं अथवा अंतःकरण की वृत्ति ही निद्रा दोष से अविद्या की वृत्ति होजाती है। चाहे स्वप्न को अंतःकरण का परिणाम मानें चाहे अविद्या का परिणाम मानें दोनों प्रकार से स्वप्न में चिदाभास जो फल चेतन है उसका उपयोग नहीं होता इससे स्वप्न प्रातिभासिक है। जब स्वप्न को अंतःकरण का परिणाम मानते हैं तब उसमें

साक्षी का प्रकाश मानते हैं और जब अविद्या का परिणाम मानते हैं तब ब्रह्म चेतन का प्रकाश मानते हैं।

व्यावहारिक सत्ता में स्वप्न की सत्ता मिथ्या समझी जाती है। स्वप्न काल्पनिक है वहां सम्पूर्ण रचना कल्पना के बाहर नहीं होती, सब वासनामय है स्वप्न के लाभ हानि और व्यवहार जाग्रत में काम नहीं आते। जाग्रत अवस्था की अपेक्षा से स्वप्नावस्था न्यून देश कालवर्ती है और वहां जो कुछ है सब द्रष्टा से लेकर दृश्य जड़ पदार्थ पर्यंत स्वप्न रूप ही है।

जाग्रत अवस्था में अहंकार इन्द्रियों द्वारा बाहर के विषयों का बोध करता है यहां बोध के सब विषय ईश्वर सृष्टि के होते हैं अधिक करके विषय बाहर ही होते हैं। जो जिस इन्द्रिय का विषय होता है उस विषय को अन्तःकरण रूप अहंभाव उस इन्द्रिय द्वारा मनसे युक्त होकर बोध करता है, ऐसे ही कर्मेन्द्रिय में भी मनसे युक्त होकर वर्तता है यह स्थूल उपाधि से युक्त होने से विश्वनामा जीव कहलाता है। जब संसार में सब प्रकार का व्यवहार प्रमाता होकर करता है तब विषयों का भान चेतन के आभास से होता है उसे व्यावहारिक सत्ता कहते हैं। व्यवहार में यह बोध और पदार्थ सच्चा माना जाता है।

स्वप्न और भ्रान्ति प्रातिभासिक सत्ता में है। वहां सब पदार्थ भ्रान्ति रूप कल्पना के होने से व्यावहारिक प्रकाश करने वाले चिदाभास की यहां आवश्यकता नहीं है। पदार्थ भ्रांति का होने से अविद्या की वृत्ति से ग्रहण किया जाता है और सामान्य प्रकाश जो भ्रान्ति का विरोधी नहीं है उस प्रकाश से ही पदार्थ प्रकाशित होता है और प्रमाता अपनी व्यावहारिक सत्ता से निकल कर भ्रांति की सत्ता वाला होजाता है।

व्यवहार के पदार्थों में एक अज्ञान और दूसरी अविद्या ऐसे दो प्रकार का अन्धेरा होता है उसके नाश करने को चेतन और चिदाभास दोनों के प्रकाश की आवश्यकता होती है। पदार्थ में अस्ति भाति प्रियका प्रकाश चेतन से होता है और नाम रूपको चिदाभास प्रकाशता है।

मनोऽहंकृत्युपादानं
लिङ्गमेकं जडात्मकम् ॥
अवस्थात्रयमन्वेति
जायते म्रियते तथा ॥ १२ ॥

अर्थः—मन और अहंकार का उपादान कारण जड़ रूप जो एक लिंग है, वह तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होता है, जन्मता है और मरता है।

विवेचन।

मन और अहंकार जो अन्तःकरण रूप है अथवा मन और अहंकार अन्तःकरण की वृत्ति रूप है, मन करण कार्य करने का औजार है, और अहंकार कर्त्ता भाव से युक्त करने वाला है, ऐसे मन और अहंकार के उपादान कारण को दिखलाते हैं—

मनका आश्रय संकल्प यानी संकल्प रूप ही मन होता है, संकल्प-विकल्प ही मनका स्वरूप है, और अहंकार का आश्रय वासना है यानी भावना रूप अहंकार होता है। यह दोनों मन

और अहंकार चिदात्म भावको-चेतनता को प्राप्त होकर मैं हूं इस प्रकार मानते हैं। अन्तःकरण में पड़े हुए चैतन्य के आभास से अन्तःकरण चेतन होकर वर्तता है, उसीसे संकल्प और अहंभाव होता है, यह जिसमें होता है ऐसा एक चिह्न रूप लिंग शरीर है, जिसको समष्टि रूप हिरण्यगर्भ कहते हैं। यह अविद्या से उत्पन्न है और पंच महाभूतों का सूक्ष्म विकार रूप एक और जड़ है। जिसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं वही लिंग शरीर है। मन और अहंकार उसीमें से उत्पन्न होते हैं, इसीसे यह मन और अहंकार का उपादान कारण है। जिसमें से जिसकी उत्पत्ति होवी है, वह उसका उपादान कारण होता है। लिंग शरीर पंच भूतात्मक यानी अपंचीकृत पंच महाभूतों से बना हुआ है, तब उसमें से उत्पन्न हुए मन अहंकार आदि भी भूतात्मक ही हैं।

हिरण्यगर्भ रूप समष्टि लिंग शरीर ही भिन्न भिन्न प्रकार की उपाधियों से व्यष्टि रूप होता है और उपाधियां नाना होने से लिंग शरीर भी अनेक हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति यह जो तीन अवस्था हैं, उनको लिंग ही प्राप्त होता है, जब कारण शरीर की सुषुप्ति अवस्था में लिंग जाता है, तब अविद्या में दब जाता है, यह ही लिंग शरीर की सुषुप्ति होती है, सूक्ष्म भूतों के वासनामय में लिंग होता है, तब सूक्ष्म ऐसी स्वप्नावस्था होती है, और वह लिंग जब पंचीकृत पंच महाभूतों से स्थूल युक्त होता है तब स्थूल शरीर की जागृत अवस्था होती है, मूर्छा अवस्था और समाधि को भी लिंग ही प्राप्त होता है। जन्मना और मरना लिंग शरीर के सहारे ही प्रतीत होता है, लिंग युक्त स्थूल शरीर का होना जन्म है, और स्थूल शरीर से लिंग का हट जाना ही मृत्यु है।

समष्टि लिंग एकही होने से लिंग एक कहा है, और लिंग का उपादान कारण जड़ आवरण रूप शक्ति है, इसीसे लिंग भी जड़ है। स्थूल शरीर के सम्बन्ध और वियोग से जन्म और मृत्यु होते हैं, लिंग का मृत्यु नहीं होता, जिस अविद्या की आवरण-शक्ति से लिंग की उत्पत्ति है; उसके नाश के विना लिंग का नाश नहीं होता।

अनादि अनिर्वचनीय परब्रह्म के आश्रय में रही हुई जो माया है उसकी दो शक्तियों में से दूसरी विक्षेप शक्ति रूप लिंग है, उसको सूक्ष्म शरीर और पुर्यष्टका भी कहते हैं। आठ समुदाय से युक्त पुर्यष्टका है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, पांच महाभूत, अन्तःकरण, अविद्या, काम, और कर्म, इन आठों से वना हुआ लिंग शरीर है और यह ही सुखी दुःखी होने वाला और कर्त्ता भोक्ता है।

शंकाः—जव तीनों शरीर की अवस्था को लिंग प्राप्त होता है तव वह आत्मा ही होगा। अवस्था भिन्न २ हैं और उसमें रहा हुआ लिंग एक है।

समाधानः—लिंग तीनों अवस्था को प्राप्त होते हुए भी लिंग आत्मा नहीं है, क्योंकि लिंग भूतात्मक है माया का कार्य है, जड़ है और विकारी है, अवस्था के साथ लिंग विकार वाला होता है इसीसे अविकारी ऐसा आत्मा लिंग नहीं है। आत्मा से लिंग के सव लक्षण विरुद्ध हैं। आत्मा सत है, लिंग असत है, आत्मा शुद्ध है, लिंग मलिन है, तव लिंग आत्मा कैसे हो?

शंकाः—लिंग छोड़कर आत्मा का कोई स्वरूप प्रतीत नहीं होता, तव आत्मा कौन है?

समाधानः—लिंग शरीर जो माया के सूक्ष्म भूतों का विकार रूप है, इसका स्वयम् अस्तित्व नहीं है आत्मा के अस्तित्व से ही लिंग है ऐसा मालूम होता है। तीनों अवस्था का प्रकाशक तीनों अवस्था से भिन्न जो शुद्ध चेतन है वही साक्षी आत्मा है, उससे युक्त लिंग व्यावहारिक जीव कहलाता है। आत्मा वस्तु है और लिंग उसकी उपाधि है, ऐसा लिंग शुद्ध आत्मा नहीं है। त्वं पद जो जीव है उसके वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों अर्थ होते हैं। लिंग उपाधि है जिसकी, ऐसा उपाधियुक्त आत्मा जीव है यह त्वं पद का वाच्यार्थ है और उपाधि का बाध करके रहा जो शुद्ध आत्मा-साक्षी वह त्वं पद का लक्ष्यार्थ है उसकी परब्रह्म से एकता है। त्वं पद के वाच्यार्थ को सिद्ध करने के लिये लिंग का वर्णन किया है।

उपाधि उपाधि वाले से भिन्न होती है। उपाधि सहित और उपाधि रहित दोनों प्रकार से बोध कर सकते हैं। जैसे कोई राजा हो वह राज्य की उपाधि सहित ही राजा कहलाता है और जब राज्य की उपाधि का बाध करते हैं तब राजा में रहा हुआ मनुष्यत्व ठीक समझने में आता है। ऐसे लिंग की उपाधि सहित आत्मा जीव है और जीव में से लिंग की उपाधि का बाध करने से शुद्ध स्वरूप साक्षी ही शेष रहता है।

लिंग शरीर जब वर्ताव करता है तब चेतन के आभास के युक्त ही होता है चेतन के आभास रहित लिंग शरीर नहीं होता। जब सुषुप्ति में लिंग शरीर कारण अविद्या में दब जाता है तब भिन्नता युक्त कोई चेष्टा नहीं होती तो भी व्यक्तित्व को क़ायम रखने से लिंग कहलाता है। यह लिंग व्यक्ति का हेतु है अव्यक्त में से व्यक्त करने वाला लिंग शरीर ही है।

शक्ति द्वयं ही मायाया
विक्षेपावृत्ति रूपकम् ।
विक्षेप शक्ति लिङ्गादि
ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत् ॥१३॥

अर्थः—माया की दो शक्तियां हैं, विक्षेप रूप और आवरण रूप । विक्षेप शक्ति लिंग (सूक्ष्म शरीर) से लेकर ब्रह्मांड पर्यंत जगत् को उत्पन्न करती है । विक्षेप शक्ति चंचलता वाली है और आवरण शक्ति परदा रूप है ।

विवेचन ।

जो पदार्थ का यथार्थ भान होने न दे और उसीके बदले दूसरे पदार्थ का भान कराकर उसीमें वर्ताव भी करावे उसीका नाम माया है, उसीको प्रकृति भी कहते हैं, अविद्या भी वही है । "है", इस प्रकार के प्रमाण सिद्ध भूत भौतिक संपूर्ण जगत् जिसका कार्य है और जो जगत् का कारण है वह माया है । कारण दो प्रकार का होता है, निमित्त और उपादान । श्रुति और युक्ति द्वारा विचारने से यह कारण पारमार्थिक नहीं है परन्तु मायामय है । "माया को प्रकृति जानो और जिसकी माया है उसे महेश्वर (परब्रह्म) जानो" इस प्रकार श्रुति प्रकृति को माया शब्द से कथन करती है । जगत् का उपादान कारण माया है अथवा दूसरे शब्दों में अनादि अज्ञान है । माया परब्रह्म के आश्रय में है इसीसे परब्रह्म का अस्तित्व माया में और माया

के कार्य में प्रतीत होता है। अव्यक्त नाम वाली तीनों गुणों से परे और कार्य द्वारा पंडितों को अनुमान से जानने में आवे ऐसी परमेश्वर की शक्ति माया है उसे सच्ची या झूठी नहीं कह सकते, सच्ची झूठी मिली हुई भी नहीं कह सकते, परब्रह्म से भिन्न है अथवा अभिन्न है और भिन्नाभिन्न मिली हुई है ऐसी भी नहीं कह सकते, अंग वाली है अथवा अंग रहित है या अंग और अनंग दोनों मिली हुई है ऐसी भी नहीं कह सकते, ऐसा महान अद्भुत अनिर्वचनीय उसका रूप है। उसकी आवरण शक्ति पदार्थ के ऊपर परदा कर देती है, जिससे पदार्थ का भान यथार्थ नहीं होता, दूसरी विक्षेप शक्ति से जो नहीं है ऐसे अनेक पदार्थ का भान होता है। विक्षेप शक्ति की उत्पत्ति आवरण शक्ति से है, विक्षेप शक्ति रजोगुण वाली है। काम, क्रोध, लोभ, दंभ, अहंकार, ईर्षा आदिक और सम्पूर्ण जगत उसी से उत्पन्न होता है। जो पुरुष उसके संसर्ग में आता है उसको उलटा निश्चय कराती है और संशय में हमेशा रखती है, सब किसी के अधःपतन का कारण भी विक्षेप शक्ति है, महदादि से स्थूल देह पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व माया का कार्य है, मायामय है।

एक समय मार्कण्डेय ऋषि ने नारायण की बहुत स्तुति की तब नारायण प्रसन्न होकर प्रकट स्वरूप से कहने लगे—हे ब्रह्मर्षिवर्य! तप स्वाध्याय और संयम करने से तुम मेरी दृढ़ भक्ति को प्राप्त हुए हो और चित्त की एकाग्रता से सिद्ध हुए हो तुम्हारे इस प्रकार के नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ मुझसे जो चाहो सो वर मांग लो।

मार्कण्डेय बोले, हे देवेश! ब्रह्मादिक के भी ईश्वर, दुःखी शरणागत के कष्ट नष्ट करने वाले, अच्युत! आपके दर्शन से

ही मेरी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होगई अब मैं और कुछ नहीं चाहता। दीर्घ काल के योगाभ्यास से शुद्ध मन द्वारा जिसके चरणकमल के दर्शन द्वारा साधारण मनुष्य भी परब्रह्म को प्राप्त होते हैं वे ही आप मेरे नेत्र के सन्मुख खड़े हैं इससे बढ़ कर और वर मैं क्या मांगू? हे कमलनयन जिसमें मोहित होकर सम्पूर्ण लोक और लोकपाल गण सत् वस्तु में भेद भावना करते हैं ऐसी आपकी अद्भुत माया को मैं देखना चाहता हूँ। तब नारायण ने कहा "तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी" और मुसकराते हुए नारायण बद्रिकाश्रम को चल दिये।

मार्कण्डेयजी अपने आश्रम में भगवान् की भक्ति करते हुए भगवान् की माया देखने के समय की राह देखा करते थे। एक दिन नित्य नियम के अनुसार सन्ध्या के समय पुष्पभद्रा नदी के किनारे बैठकर हरि की उपासना कर रहे थे; अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, पृथिवी, वायु, आकाश और अपने में सर्वत्र भगवान् की भावना करके मानसिक पूजन कर रहे थे तब अकस्मात् बड़े वेग से आंधी चली और वायु के थपेड़ों से भारी शब्द होने लगा, काले काले बादलों ने आकाश मंडल घेर लिया, मेघ गर्जना सहित बिजलियां चमकने लगीं, और तुरन्त ही मूसल धार पानी बरसने लगा। भयानक जल जन्तुओं से पूर्ण समुद्र उमड़ कर चारों तरफ से पृथिवीको जल मग्न करने लगा, पृथिवी को जलमें डूबती हुई देख मार्कण्डेयजी शारीरिक और मानसिक अत्यन्त क्लेश को प्राप्त हुए। ज्ञानी होने पर भी व्याकुल और अत्यन्त भयभीत हुए।

मुनि के देखते ही देखते समुद्र से प्रचण्ड लहरों और मूसल धार वर्षा से जल ने बढ़कर द्वीप खंड और पर्वत सहित सम्पूर्ण

पृथिवी को जल मग्न कर दिया। पृथिवी, आकाश, स्वर्ग और सब दिशाएँ यानी तीनों लोक जल में डूब गये मार्कण्डेयजी ही बच रहे। मुनि की जटाएं फैल गईं और वे जड़ और अन्ध के समान इधरसे उधर बहने लगे। भूख प्यास तथा मगर आदिक जल के जन्तुओं से पीड़ित होने लगे। मुनि प्रलय सागर के जल में अन्धकार में कभी ऊपर और कभी नीचे भ्रमण करने लगे। उनको यह नहीं जान पड़ता था कि कौन दिशा किधर है, आकाश कहां है और पृथिवी कहां है, कभी जल में डूब कर गहरे में चले जाते थे कभी तरंगों की टक्करों से टकराते थे और कभी जल के घोर जन्तुओं के पेट में चले जाते थे। इसी प्रकार विष्णु की माया से आत्मा आवृत्त होने से मार्कण्डेयजी दस हजार लाख वर्ष पर्यन्त उस महासागर के जल में बहते हुए गोते खाते रहे।

एक समय बहते हुए मुनि ने एक छोटा सा टापू देखा और उस टापू में एक छोटा बरगद का प्रफुल्लित पेड़ देखा, उस वृक्ष के ईशानकोण में एक शाखा में एक सुन्दर बालक सोया हुआ था। बालक अत्यन्त प्रकाश वाला था इसीसे वहां का अंधेरा दूर होगया था। पन्ना के समान श्याम वर्ण बालक का मुख कमल के समान श्री से सम्पन्न है, ग्रीवा शंख के समान है, वक्षस्थल विशाल है, नासिका ऊंची और सुन्दर है, भृकुटी कमान जैसी मनोहर हैं, दोनों कान शंख के भीतरी भाग के समान हैं और उसमें अनार के फूल शोभा दे रहे हैं, मधुर मुसकान की कान्ति है, कोमल चरण के अंगूठे को मुखमें डाले हुए ललाई लिये हुए हैं, ऐसे सुन्दर बालक को देखकर मुनि बहुत विस्मित हुए और परम आनन्द को प्राप्त हुए मुनि का

हृदय प्रफुल्लित हो गया। तुम कौन हो ऐसा प्रश्न करने के विचार से आगे बढ़े, पास पहुंचते ही मुनि एकाएक बालक के श्वास के साथ मच्छर के समान उड़कर उसके उदर में चले गये वहां जाकर मुनि ने देखा कि प्रलय के प्रथम जैसा जगत् देख पड़ता था वैसा ही उस बालक के पेट में स्थित है। मुनि के आश्चर्य की सीमा न रही और मोहित होकर कुछ निश्चय न कर सके कि वास्तव में यह क्या है।

आकाश, अन्तरिक्ष, तारागण, पर्वत समूह, सम्पूर्ण सागर, सब द्वीप, सब खंड, सब देश, देवगण, असुरगण, सब वन, सब देश की नदियां, नगर, पाषाण, चारों आश्रम, वर्ण, उनकी सब वृत्तियां, पांचों तत्त्व, सम्पूर्ण भौतिक पदार्थ, खेट, पुर, ग्राम, युग, कल्प आदि अनेक भेद संपूर्ण भिन्न २ संज्ञाओं को प्राप्त सब प्रकार का काल और लोक व्यवहार का हेतु अनेक पदार्थों सहित ठीक २ मालूम हो रहा है, वहां मुनि ने हिमालय पर्वत, पुष्पभद्रा नदी जहां नर नारायण के दर्शन प्राप्त हुए थे वह स्थान और अपने आश्रम के स्थान को भी देखा, इस प्रकार विश्व को देखते देखते मुनि बालक के उदर से श्वास के साथ बाहर निकल पड़े और उसी प्रलय सागर के जल में गिर पड़े। उसी पृथिवी के उच्च प्रदेश में खड़ा हुआ वट वृक्ष की शाखा में पत्रपुट पर शयन कर रहे बालक मुकुन्द को देखकर और नयन द्वारा हृदय में बैठा कर संतुष्ट चित्त होकर आलिंगन करने के विचार से पास जाने के लिये जैसे मुनिवर चले वैसे ही योगेश्वरों के अधिष्ठान लीला शरीरधारी अन्तर्यामी बाल स्वरूप साक्षात् नारायणदेव ऋषि के सामने से अन्तर्धान हो गये; ऋषि का उद्यम निष्फल गया।

बाल मुकुन्दके अदृश्य होते ही वट वृक्ष, जलमय महासागर और लोकों का प्रलय सब क्षण में अदृश्य हो गया। मुनि ने अपने को पहले की भांति अपने आश्रम में नदी तट पर बैठे हुए देखा। मार्कण्डेयजी बहुत आश्चर्य को प्राप्त हुए, तुरन्त ही स्मृति हो आई कि अहा हा! भगवान् ने मुझे अपनी माया दिखलाने का वरदान दिया था सो ही माया मैंने देखी। कैसा आश्चर्य है सब कुछ दुःखादिक होते हुए भी कुछ नहीं हुआ। यह विश्व भी नारायण की इसी माया द्वारा निर्माण हुआ है। दुःखमय माया से निवृत्त होने के लिये विष्णु के शरण में ही जाना चाहिये। हे हरि! दुःखी जनों को अभय दान देने वाले, मैं आपकी शरण में आया हूँ मुझ पर कृपा करो, आपके भजन बिना आपकी ज्ञानवत् भासती इस अज्ञानमयी माया में अपने को ज्ञानी मानने वाले देवगण भी मोहित होते हैं, इस योगमाया के प्रभाव को मैं मन्दमति किस प्रकार कह सकता हूं?

इस प्रकार मार्कण्डेयजी ने माया का अनुभव भगवान् का वरदान पाकर किया। माया वास्तविक कुछ न होती हुई भी सब कुछ करती है जन्म मरण सुख दुःख को भुगवाती है। जिसमें कार्य कारण का कोई वास्तविक सम्बन्ध न हो ऐसी यह माया है। भूल में पटक कर अन्य का अन्य अनुभव करा देने वाली माया है। सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा दिखलाना इसका स्वाभाविक कार्य है। अधिष्ठानके अज्ञानमें रही हुई अविद्याही माया है। वह अधिष्ठान के पूर्ण बोध में निवृत्त हो जाती है। संपूर्ण भूत प्राणी संसार और संसार की प्रतीति अनिर्वचनीय महान् शक्ति वाली अद्भुत माया से है। जो माया के पति के शरण में जाता है उसकी माया निवृत्त हो जाती है। ईश्वर के शरण में जाने के सिवाय माया की निवृत्ति का और कोई उपाय नहीं है।

सृष्टिर्नाम ब्रह्म रूपे,
सच्चिदानन्द वस्तुनि ।
अब्धौ फेनादिवत्सर्वं,
नाम रूप प्रसारणम् ॥१४॥

अर्थः—समुद्र के फेन आदि के समान ब्रह्म रूप सच्चिदानन्द में समस्त नाम रूप की उत्पत्ति को सृष्टि कहते हैं, ब्रह्म रूप वस्तु में तत्त्व से कोई विकार न होते हुए नाम रूप की प्रतीति मात्र का नाम सृष्टि है ।

विवेचन ।

ब्रह्म एक वस्तु स्वरूप है उसमें अनेक प्रकार के चित्र क्रिया आदिक देखे जाते हैं यह जो दृश्य हैं उसी को सृष्टि कहते हैं। माया की आवरण और विक्षेप शक्ति का कार्य सृष्टि है । माया से सृष्टि होते हुए भी परब्रह्म से कोई भिन्न पदार्थ न हुआ । संपूर्ण पदार्थों सहित सृष्टि वस्तुतः ब्रह्म ही है । नाम रूप वाली आकृतियां, क्रिया आदिक दीखती हैं, उसमें सब प्रकार का व्यवहार होता है सुख, दुःख, जन्म, मरण, स्वर्ग और नरक होता है यह सबका होना परब्रह्म रूप पदार्थ में माया से अंकित है इसीसे वस्तु रूप परब्रह्म ही है ।

सृष्टि संसार को कहते हैं, संसार संसरने (चलने) से होता है, संसरना मन से होता है। मन जिस प्रकार की कल्पना करता है, कल्पना के पदार्थ दीखते हैं पदार्थ में क्रिया भी मालूम

होती है परन्तु सब मन स्वरूप ही है मन को छोड़ कर 'पदार्थ और उसकी क्रिया अन्य कोई नहीं है इसी प्रकार संपूर्ण विचित्र सृष्टि परब्रह्म स्वरूप ही है। जैसे एक वस्त्र के ऊपर अनेक प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, मार्ग, जंगल आदि के चित्र निकाले गये हों रंग बिरंगे दीखते हों तो भी वस्तुतः वह वस्त्र ही है ऐसे संपूर्ण सृष्टि ब्रह्म स्वरूप ही है। जैसे समुद्र के जल में फेन-बुद्-बुदे-तरंग आदि कई प्रकार से हैं, नाम और रूप भिन्न २ होते हैं, हो हो करके लय भाव को प्राप्त हो जाते हैं यह सब कुछ होते हुए भी सब समुद्र के जलस्वरूप ही हैं इसी प्रकार अनेक प्रकार के सुख दुःख और विचित्रता दिखलाने वाली सृष्टि ब्रह्म स्वरूप ही है परब्रह्म से अन्य कुछ भी नहीं है। जल को हटा लेने से फेन बुद्बुदा तरंगादिक की स्थिति ही नहीं रहती ऐसे ही बिना परब्रह्म सृष्टि का भी अभाव होता है।

जैसे अनेक प्रकार के मट्टी के बरतन भिन्न २ नाम और रूप वाले भिन्न २ रीति से उपयोग में आते हुए भी स्वरूपसे मृतिका ही बरतन के रूप से भासित होती है इसी प्रकार परब्रह्म ही नाम रूपादि सृष्टि के रूप से भासित होता है। मृतिका में नाम और रूप आ जाने से मृतिका के स्वरूप में कुछ भी अन्तर न हुआ इसी प्रकार सृष्टि और सृष्टि के वर्ताव से परब्रह्म स्वरूप में किसी प्रकार से किंचित अन्तर नहीं पड़ता। सुवर्ण के अनेक गहने जिस प्रकार सुवर्ण से भिन्न नहीं होते इसी प्रकार गहने रूप सृष्टि पदार्थ से सुवर्ण रूप ब्रह्म भिन्न नहीं, जैसे गहने सुवर्ण ही हैं ऐसे सृष्टि ब्रह्म ही है।

संपूर्ण सृष्टि का अधिष्ठान परब्रह्म है और सृष्टि अध्यस्त है अधिष्ठान से अध्यस्त की सत्ता भिन्न नहीं होती इसीसे अध्यस्त

दीखता हुआ भी वस्तु स्वरूप अधिष्ठान ही होता है। अधिष्ठान में मिथ्या अध्यास भ्रांति से होता है भ्रांति का अध्यास अधिष्ठान से विपरीत स्वभाव वाला दीखता है, व्यवहार होता है तो भी अधिष्ठान से कुछ अन्य हुआ नहीं है इसीसे अधिष्ठान का स्वरूप ही उसी का स्वरूप है। इसी प्रकार संपूर्ण सृष्टि ब्रह्म स्वरूप है। उपाधि से उपाधि वाले के स्वरूप में कुछ अन्तर नहीं पड़ता, उपाधि होते हुए और न होते हुए स्वरूप, स्वरूप ही है, ऐसे ब्रह्म में माया के नाम रूप की उपाधि है, यह नाम रूप ही सृष्टि है, इस उपाधि से परब्रह्म जो सच्चिदानन्द स्वरूप है उसमें किसी प्रकार का अन्तर (विकार) नहीं होता इसीसे यह सृष्टि भी स्वरूप से ब्रह्म ही है।

एक स्थान पर एक योगी रहता था, उसने अपने रहने के स्थान को रमणीक बना रखा था, चारों ओर से पक्का बंधा हुआ एक शिवालय, एक तालाब, रहने का पक्का मकान और एक गुफा बना रखी थी, आस पास में सुशोभित बगीचा भी बना रखा था, योगी एकान्त स्थान में ही रहता था उसको कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त थीं, आस पास के सैकड़ों कोस के मनुष्य उसे मानते थे, पूज्य दृष्टि से देखते थे और बहुत आदर किया करते थे, यह सब होते हुए भी वह निस्पृह रहता था, लोगोंसे बहुत कम मिलता था, वाक् सिद्धि होने से लोग योगी का बहुत ही पीछा करते थे परन्तु योगी ने अपने स्थान की ऐसी व्यवस्था कर रखी थी जिससे लोगों का उपद्रव न होने पावे कभी योग की समाधि लगाता था, कभी सिद्धियों की सैर किया करता था और कभी आत्म चिंतन भी करता था, इस प्रकार योगी अपना समय व्यतीत करता था। योगी बहुत अच्छा

था उसे आत्मा का साक्षात्कार हुआ था परन्तु सिद्धि की तरफ का भाव निवृत्त न होने से आत्मा में दृढ़ टिकाव नहीं था। कभी कभी उसे सिद्धियों की तरफ तिरस्कार भी होता था परन्तु सिद्धि की तरफ का आंतर प्रेम होने से, भीतरी प्रबलता से सिद्धियों में रमण करने लग जाता था। सिद्धियों के प्रेम और तिरस्कार में वारंवार युद्ध होता था और अधिक समय प्रेम ही जीत जाता था।

एक समय योगीराज ने अपने स्थान में बनी हुई गुफा में पन्द्रह दिन की समाधि लगाकर बैठने का निश्चय किया, और शिष्यों तथा बगीचे के मनुष्यों को गुफा न खोलने को, और किसी को गुफा में न आने को कह दिया फिर योग क्रिया द्वारा उदर को साफ करके गुफा में जाकर गुफा को भीतर से बन्द करके, पन्द्रह दिन में समाधि उतरने का दृढ़ संकल्प हृदय में धारण करके समाधि लगा ली। दो दिन तक समाधि में स्थिर रहने के पश्चात् समाधि के स्थान से चित्त चलित हुआ, और स्थूल में न आते हुए सूक्ष्म में ही संकल्प द्वारा विचरने लगा।

योगीराज सिद्धिओं में रमण करता था तब सूक्ष्म शरीर में टिक कर संकल्प द्वारा विचरता था और उनके पदार्थ देशकाल आदि का संयम किया करता था, ऐसा दृढ़ अभ्यास था, इसी से समाधि से चलित होकर मन अनेक प्रकार के दृश्य देखने लगा।

योगी को मालूम हुआ कि मैं सुवर्णपुर का राजा हूँ, मेरा राज्य समृद्धि वाला है, मेरी प्रजा सब प्रकार से सुखी है, मैं न्याय के अनुसार राज्य कर रहा हूँ. सब प्रकार से आनन्द होते हुए

भी संतान न होने से दुःखी हूँ, संतान के लिये अनेक प्रकार के यत्न कर चुका हूँ परन्तु संतान की प्राप्ति न होने से मेरे दुःख की निवृत्ति नहीं होती। हाय! इस समृद्धि वाले राज्य को मेरे पश्चात् कौन भोगेगा? मैं निःसन्तान होने से मेरी गति भी किस प्रकार होगी, हाय! पुत्र के न होने से मुझे राज्य का सब वैभव तुच्छ दिखलाई देता है। इस प्रकार राजा अत्यन्त दुखी होने से उसका राज-काज में चित्त नहीं लगता था।

राज्य की देखा भाली छूटते ही सरदार लोग अपनी मन मानी करने लगे, रिशवत का जोर बढ़ गया, अधिकारी वर्ग लोगों को दुःख देने लगे, सैन्य के सिपाही और सरदार ऐश-आराम में पड़ गये, चोर और डाकू बढ़ गये, इस प्रकार सुवर्णपुर में सब प्रकार से अव्यवस्था होगई।

सुवर्णपुर के उत्तर दिशा में स्थित चंपानगरी का राजा बहुत दिन से सुवर्णपुर को ले लेना चाहता था, परन्तु जब तक राजा योग्यता से राज्य को संभालता रहा तब तक उसकी हिम्मत सुवर्णपुर पर चढ़ाई करनेकी न हुई। सुवर्णपुर की ऐसी दुर्दशा देख, चढ़ाई कर दी, चारों ओर से घेर लिया। सुवर्णपुर के राजा की रानी गर्भवती थी, भय से रानी की मृत्यु होगई। यह देख राजा अत्यन्त दुःखी हुआ। एक तरफ गर्भ सहित रानी की मृत्यु, दूसरी तरफ दुश्मन शहर घेर कर पड़ा है, ऐसे समय में क्या करना चाहिये, राजाको सूझता नहीं था। वह चंपानगरी के राजा के साथ लड़ने में असमर्थ था, तो भी सब सरदारों सहित क्षत्रिय भावसे प्रेरित होकर जो कुछ सैन्य एकत्र हुआ उसे इकट्ठा करके दुशमन से लड़ने लगा। दो दिन तक घोर संग्राम होता रहा दोनों तरफ से लड़ने वाले बहुत से मनुष्य मारे गये। अब

सुवर्णपुर के राजा को निश्चय हुआ कि हम किसी प्रकार से भी चंपानगरी के राजा को युद्ध में परास्त नहीं कर सकते, हमारे बहुत से योधा मर चुके हैं, अब बचे हुओं का लड़कर प्राण खोना व्यर्थ है, किसी प्रकार से अर्थ की सिद्धि नहीं होगी ऐसा विचार करके किले में से गुप्त मार्ग द्वारा राजा और कुछ मनुष्य सुवर्णपुर से बाहर निकल गये, राजा प्रथम निकल गया, और पीछे मनुष्य जा रहे थे, इसी समय चंपानगरी की सैन्य ने सब मनुष्यों को पकड़कर कैद कर लिया।

राजा अकेला ही घोड़े को भगाता हुआ बहुत दूर निकल गया और घोर जंगल में प्रवेश कर गया अनेक प्रकार की आपत्तियों को भोगता हुआ पीछे न देखता हुआ भागता रहा, दो रात्री दिन चलकर नदी के किनारे एक साधु की झोंपड़ी के पास विश्रांति ली। घोड़ा भी बहुत भूखा और थका हुआ था, जैसे ही घोड़े को पानी पिलाया कि वैसे ही उसके प्राण निकल गये। घोड़े के मरने से राजा अधिक दुःखी हुआ, आपत्ति पर आपत्ति आने से घबरा गया, अब कहां जाना, किस प्रकार जाना, किससे मिलना, क्या करना आदिक विचार करता था; परन्तु किसी प्रकार से कोई निर्णय न कर सका। भूख भी खूब सता रही थी, अन्तमें साधु की कुटी में जाने का निश्चय किया। कुटी में जाकर देखा तो वहां कोई भी मनुष्य नहीं है, खाने का कोई पदार्थ भी न मिला, एक कौने में एक गढा देखा, वहां जाकर देखा तो नीचे तहखाना मालूम हुआ, नीचे उतर कर देखता है तो एक मूर्ति आसन लगाये हुए बैठी है। यह पाषाण की मूर्ति है या कोई मनुष्य है, अन्धेरे में इस बातका ठीक निश्चय न कर सका, राजा ने जाकर उसके शरीर पर हाथ रक्खा, मनुष्य

मालूम हुआ, धक्का देकर हिलाया। साधु समाधि में था, समाधि का भंग हुआ, साधु ने आंख खोली, सामने एक मनुष्य को खड़ा देखकर जोर से उसके गाल में एक तमाचा मारा, हाय! करते हुए राजा नीचे गिर पड़ा और अपनी गुफा में जहां समाधि लगाकर बैठा था, वहां जागृत होगया!

योगेश्वर को अपने स्थान पर गुफा के भीतर समाधि में बैठे हुए पन्द्रह दिन होगये थे, आज समाधि खुलने की खबर होने से बहुत लोग इकट्ठे हुए थे और बाजे बजा रहे थे समाधि में से उतर कर योगीराज को बहुत आश्चर्य हुआ और कहने लगा, हाय! मैं समाधि में न रहा, मैं माया के चक्कर में भ्रमण ही करता रहा! हाय यह क्या होगया! कहां राजा कहां रानी, और उसका मरना, राज्य का छिन जाना, घोड़े का मरना, और साधु से तमाचा खाना, यह सब रचना पन्द्रह दिनमें कैसे होगई? हाय! माया! विचित्र माया!

योगीश्वर योगीश्वर ही था, उसने जो जो अनुभव किये सब माया की रचना थी, सब मन का संकल्प था। योगीश्वर की गुफा से कोई वस्तु बाहर न थी, योगीश्वर से कोई भिन्न वस्तु न थी, योगीश्वर के मनके बाहर कुछ न था। सब कुछ दुःखादि होते हुए भी योगीश्वर में कुछ भी न हुआ था, इस प्रकार यह सम्पूर्ण सृष्टि भी संकल्प मात्र है। योगीश्वर परब्रह्म है, जैसे योगीश्वर में कुछ विकार न हुआ तैसे ही इस सृष्टि का सम्पूर्ण वर्ताव होते हुए भी परब्रह्म रूप ही है। नाम रूप से सृष्टि अनेक प्रकार की दीखे और अनुभव भी होय परन्तु वस्तुतः ब्रह्म स्वरूप ही है। जिसको इस प्रकारका बोध होता है उसीको स्वरूप का साक्षात्कार होता है, और परमपदकी प्राप्ति इसीसे ही होती है।

अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं
बहिश्च ब्रह्म सर्गयोः
आवृणोत्यपराशक्तिः
सासंसारस्य कारणम् ॥ १५ ॥

अर्थः—दूसरी शक्ति भीतर द्रष्टा और दृश्य के भेद को और बाहर ब्रह्म और सृष्टि के भेद को आवरण करती है वह शक्ति संसार का कारण है।

विवेचन।

माया की विक्षेप शक्ति से प्रपंच की उत्पत्ति होती है और उसीमें बंधन होता है, परदा करने वाली आवरण शक्ति में से उसकी उत्पत्ति है। आवरण शक्ति से युक्त हुआ आत्मा परब्रह्म स्वरूप के अविवेक से संसारित्व को प्राप्त होता है जीव भाव युक्त होता है उसीको दिखलाते हैं।

माया की दो शक्तियों में से प्रथम आवरण शक्ति है यह आवरण अन्धेरा करती है इससे पदार्थ का यथार्थ भान नहीं होता तब विक्षेप शक्ति से पदार्थ रूप परब्रह्म स्वरूप में भेद होता है, आन्तर में द्रष्टा और दृश्य का भेद होता है। जो देखने वाला है वह द्रष्टा है और जो दीखने वाले पदार्थ आदि हैं वे दृश्य हैं और इसी प्रकार बाहर परब्रह्म और जगत् में भेद होता है। अखंड व्यापक तत्त्व परब्रह्म है और माया का कार्य रूप सब

जगत् है। इस भेद के करने वाली माया की विक्षेप शक्ति है आवरण शक्ति से उत्पन्न होने से आवरण शक्ति जगत् का मूल कारण है।

जो माया के सतोगुण और रजोगुण से दबा हुआ नहीं है ऐसा तमोगुण आवरण शक्ति रूप है, ब्रह्म नहीं है, दीखता नहीं है ऐसे व्यवहार के कारण को आवरण शक्ति कहते हैं और जो माया के तमोगुण और सतोगुण से दबा हुआ नहीं है ऐसा रजोगुण विक्षेप शक्ति रूप है और आकाशादिक प्रपंच की उत्पत्ति का कारण यह विक्षेप शक्ति है। आवरण शक्ति परदा करने वाली होने से भ्रान्ति को उत्पन्न करती है पश्चात् अनेक प्रकार के भेद को विक्षेप शक्ति करती है। बंधन विक्षेप शक्ति से होता है। विक्षेप शक्ति बिना दुःख का भान नहीं होता। आवरण शक्ति जड़ और अन्धेरा रूप है और उसमें पृथक्ता भी नहीं होती इसीसे इसमें दुःख नहीं होता तो भी दुःख का कारण विक्षेप शक्ति की उत्पत्ति उसीमें से ही होती है इसीसे संपूर्ण जगत् का कारण आवरण शक्तिको कथन किया है। आवरण और विक्षेप शक्ति दोनों माया की शक्ति हैं तो भी आवरण शक्ति कारण रूप है और विक्षेप शक्ति कार्यरूप है। आवरण शक्ति जो अज्ञान रूप है उसका नाश होजाय तो आवरण शक्ति रहित विक्षेप शक्ति दुःख नहीं देती और विक्षेप शक्ति रहित आवरण शक्ति में भी दुःख नहीं होता, दुःख और जन्ममरण का हेतु तो आवरण शक्ति सहित विक्षेप शक्ति ही है। आवरण अज्ञान रूप है। और विक्षेप कर्म-वासना रूप है।

आवरण शक्ति का स्पष्ट स्वरूप सुषुप्ति अवस्था में मालूम होता है वहां भेद नहीं है; दुःख नहीं है अज्ञान ही अज्ञान छाया

हुआ है अज्ञान ने आत्मा को ढक दिया है बाद विज्ञान मय कोश में जब सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होता है तब अनेक प्रकार की भेद युक्त कल्पनाएं करके भ्रान्ति के कारण दुःखी होता है, संपूर्ण भेद भाव वाली रचना विक्षेप शक्ति से होती है, विक्षेप शक्ति से युक्त अनात्म भावको धारण करके, आत्मा अनात्म भावको प्राप्त होता है, व्यवहार में उसे जीव कहते हैं। आत्मा अविद्या की आवरण और विक्षेप शक्ति सहित चिदाभास के प्रकाश से युक्त जीव होता है।

जब रस्सी में सर्प की भ्रांति होती है तब अन्धेरे के कारण से रस्सी का यथार्थ बोध न होना आवरण शक्ति है उसके पश्चात् सर्प का भान होता है, भय कंपादिक होते हैं यह विक्षेप शक्ति से है। बुद्धि की वृत्तियां आत्मा के अबोध में अविद्या में लय होजांय तब आवरण शक्ति कही जाती है और बुद्धि की वृत्ति आत्मा के अबोध में भिन्न २ पदार्थों में प्रवृत्त हो यह विक्षेप शक्ति है। चंचलता अनेकता, आकार, गुण, दोष, उत्पत्ति, नाश आदिक भाव से विक्षेप शक्ति होती है और यह संपूर्ण संसार विक्षेप शक्ति से ही बना है, आवरण सहित विक्षेप शक्ति ही संसार रूप है। विक्षेप शक्ति में त्रिपुटि के भान सहित सब व्यवहार त्रिपुटि में होता है। कर्ता, कारण, कर्म, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य लेकर जीव भाव होता है।

जादूगर जादू का खेल करने के समय में उपरोक्त दोनों शक्तियों का उपयोग करता है। हाथ में मृतिका रखी है उस मृतिका को तमाशा देखने वाले लोग देखें नहीं इस प्रकार की आवरण शक्ति का असर देखने वालों के ऊपर डालता है। देखने वालों की निगाह पर आवरण शक्ति पड़ती है इसीसे देखने वाले

का नेत्र व्यवहारिक सत्ता में न रह कर प्राति भासिक सत्ता का होजाता है और मृतिका के ऊपर भी आवरण होने से मृतिका का भान नहीं होता। पश्चात् जादूगर देखने वालों को विक्षेप शक्ति से युक्त बना देता है और मृतिका के ऊपर आवरण शक्ति के साथ विक्षेप शक्ति को जोड़ देता है। जादूगर ने जो संकल्प किया है वही विक्षेप रूप से मृतिका के स्थान पर प्रतीत होता है और देखने वालों में भी विक्षेप शक्ति का आरोप किया हुआ होने से वे उसी पदार्थ को देखते हैं, अथवा देखने वाले और मृतिका दोनों पर आवरण और विक्षेप को न करके केवल मृतिका में करने से भी देखने वालों का सम्बन्ध मृतिका के साथ होने से जादूगर की शक्ति से उसके संकल्प-पदार्थ को देखते हैं। इसी प्रकार ईश्वर की माया की आवरण और विक्षेप शक्ति से संपूर्ण संसार रचा गया है और द्रष्टा सांसारिक होकर काल्पनिक संसार में व्यवहार करता है परन्तु अविद्या से आवृत होने से ये सब पदार्थ काल्पनिक हैं ऐसा भान नहीं होता।

जीव अविद्या की आवरण शक्ति से पारमार्थिक सत्ता में से काल्पनिक व्यवहारिक सत्ता में आजाता है। अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है। जन्मता है और मरता है। जब तक जड़ सहित आवरण शक्ति को निवारण नहीं करता तब तक अपने आद्य सुख स्वरूप को प्राप्त नहीं होता।

साक्षिणः पुरतो भाति
　　लिंग देहेन संयुतः।
चितिच्छाया समावेशा-
　　जीवःस्या व्यावहारिकः ॥१६॥

अर्थः—साक्षी के सामने स्फुरण होता हुआ और स्थूल देह साथ मिला हुआ चिति की छाया के प्रवेश से सूक्ष्म शरीर व्यावहारिक जीव है।

विवेचन।

साक्षी सबके अंतर में रहा हुआ प्रत्यगात्मा है। परब्रह्म जो एक तत्त्व रूप और संपूर्ण ब्रह्मांड में व्यापक, जो समान चेतन है वह एक शरीर की उपाधि अथवा अन्तःकरण की उपाधि से युक्त जो चेतन है वही साक्षी है। तीनों शरीर और शरीरों के अङ्ग उपाङ्ग का वह प्रकाशक है यानी सम्पूर्ण व्यष्टि सृष्टि का प्रकाशक है वह प्रत्यगात्मा ही शुद्धात्मा है। अन्तःकरण की उपाधि के साथ समझ में आता हुआ उपाधि के सम्पूर्ण विकारों से जो रहित है, उस शुद्धात्मा को कूटस्थ भी कहते हैं। 'कूट' मायारूप अन्तःकरण स्थूल शरीरादि और 'स्थ' टिका हुआ, होकर जो स्वरूप से विकार रहित है वह कूटस्थ साक्षी है।

साक्षी, सूक्ष्म शरीर तथा अन्तःकरण, और उसमें चेतन के समान स्फुरण होता हुआ चेतन का आभास जिसे चिदाभास भी कहते हैं यह तीनों का एक भाव करने वाला व्यवहारिक जीव है। साक्षी आत्मा है और अन्तःकरण और उसमें पड़ा हुआ आभास उपाधि है। आत्मा सत्स्वरूप है और उपाधि मिथ्या माया स्वरूप है। मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं काना हूं, मैं वहिरा हूं आदिक जगत् में व्यवहार करने वाला जीव है।

व्यवहारिक जीव, चेतन प्रत्यगात्मा और मायिक उपाधि की एकता से होता है उपाधि अविद्या स्वरूप और चेतन विद्यास्वरूप है दोनों के धर्म एक दूसरे से विरुद्ध हैं तो भी अज्ञान ने अपने सामर्थ्य से चेतन को आवरण करके अपने में मिला लिया है और व्यष्टि अज्ञान में अथवा अन्तःकरण के ऊपर चेतन के आभास से जड़ उपाधि चेतन के समान प्रतीत होती है। उपाधि दो प्रकार की है एक व्यष्टि अज्ञान रूप और दूसरी उसमें पड़ा हुआ चेतन का आभास रूप। आभास चेतन का होते हुए भी जड़ व्यष्टि अज्ञान में पड़ा हुआ होने से जैसा व्यष्टि अज्ञान मिथ्या है इसी प्रकार चेतन का आभास भी मिथ्या है। चेतन का अभाव रूप जड़ प्रकृति माया है और चेतन का आभास चिदाभास है। दोनों उपाधि सहित आत्मा जीव है, उपाधि के संयोग से अखंड आत्मा का एक टुकड़ा रूप विकारी जीव हुआ और टुकड़ा होते ही मैं तू आदिक की कल्पना से भेद का भान हुआ, भेदभान से जन्म मरण आदिक अनेक आपत्तियां भोगनी पड़ती हैं। व्यवहारिक जीव में जो भिन्न २ पदार्थ का और अपनी भिन्नता का बोध है वह चिदाभास से होता है आत्मा बोध स्वरूप है जगत् के पदार्थों की भिन्नता का बोध करने वाला नहीं है। मिथ्या पदार्थ का भिन्न २ बोध मिथ्या चिदाभास से ही होता है।

स्वरूप के बोध के लिये वेदान्ताचार्यों ने कई प्रक्रियां बांधी हैं उसीमें आभास वाद सुलभ होने से भाष्यकार ने पसन्द किया है, इस ग्रन्थ में भी आभासवाद की प्रक्रिया से समझाते हैं:—
आभासवाद की रीति से साक्षी, व्यष्टि अज्ञान और उसमें पड़ा हुआ चेतन का आभास तीनों की एकता से जीव है यह आतशी

शीशे के दृष्टान्त से जल्दी समझ में आजाता है वह दृष्टांत इस प्रकार है:—

आकाश साफ होने से सूर्य आवरण विना प्रकाशित हुआ है एक स्थान पर उसका प्रकाश-धूप फैला हुआ है वहां सब स्थान पर धूप ही धूप है। आतशी शीशा जो मध्य में कुछ उठा हुआ और किनारे की तरफ पतला होता है छोटी वस्तु को बड़ी देखने के लिये भी इस शीशे का उपयोग होता है उसे धूप में रखने से अग्नि पैदा होने के कारण उसे आतशी शीशा कहते हैं ऐसे एक शीशे को ऊपर बताये हुए धूप में जमीन से उठा हुआ सूर्य की तरफ टेढ़ा करके रखा जाय तो सूर्य की किरण उस शीशे में से दूसरे स्थान पर जहां धूप ही धूप है वहां प्रतिबिंबित होकर विन्दु रूप से पड़ेगी, यह विशेषता वाली होगी, इस विन्दु के स्थान पर रुई रखी जाय तो थोड़ी देरमें उसमें अग्नि लग जायगी। इस प्रकार आतशी शीशे में से सूर्य की किरणों से विशेषता वाली धूप विन्दु स्वरूप होकर जलाने की सामर्थ्य वाली होती है। धूप किसी को जलाती नहीं है सामान्य उष्णता देती है यह धूप आतशी शीशेके योग से जलाने के सामर्थ्य वाली होती है। धूप सब स्थान पर फैली हुई थी परन्तु आतशी शीशे के योग से बिंदु रूप हुई। इस दृष्टांत को जीव भावमें इस प्रकार समझना चाहिये। सूर्य की धूप सब स्थान पर फैली हुई है इसी प्रकार आत्मा-साक्षी सब स्थान में व्यापक है व्यापक धूप जैसे पृथक् कार्य का हेतु नहीं है इसी प्रकार साक्षी भी पृथक् कार्य का हेतु नहीं है, जैसे सूर्य की धूप धूप, आतशी शीशे और विशेषता वाले विन्दु इन तीनों को प्रकाश करती है ऐसे ही साक्षी साक्षी, अंतः-करण और आभास को प्रकाश करता है। अन्तःकरण रूप

आतशी शीशा है, आत्मा की संनिधि से उसमें आत्मा का प्रकाश पड़ता है वह अधिकता वाला प्रकाश चिदाभास कहा जाता है। जैसे आतशी शीशे में से पड़ा हुआ धूपका विन्दु जलाने रूप विशेप कार्य करता है ऐसे ही चिदाभास भी पृथक् बोध और पृथक् क्रियायें करता है। जैसे धूप आतशी शीशे सहित विशेप विन्दु होता है ऐसे ही आत्मा और अन्तःकरण सहित चिदाभास होता है। अन्तःकरण में टिका हुआ चिदाभास आत्मा का अभिमान करता है यह जीव भाव है तीनों को एकमेक कर आत्मा जो व्यापक है उसे शरीर अथवा अन्तःकरण में मानकर जगत् में व्यवहार करने वाला जीव होता है। रुईका जलाना आतशी शीशे में से पड़े हुए विन्दु का कार्य है। यह कार्य होते हुए भी आतशी शीशे में पड़े हुए धूप में किसी प्रकार का विकार नहीं होता, धूप सत्य है विकार रहित है और आतशी शीशा और उसमें से पड़ा हुआ विन्दु मिथ्या विकारी है इसी प्रकार आत्मा सत्य है और अन्तःकरण और अन्तःकरण के ऊपर पड़ा हुआ चिदाभास दोनों मिथ्या हैं। जब आत्मा में से दोनों विकारी उपाधियां हटादी जाती हैं तब आत्मा शुद्ध मोक्ष स्वरूप होता है और उपाधि सहित जगत् में व्यवहार करने वाला अज्ञानी जीव है।

अस्य जीवत्वमारोपात्
साक्षिण्य प्यवभासते।
आवृतौ तु विनष्टायां
भेदे भाते प्रयातितत् ॥ १७ ॥

अर्थः—इसका जीव भाव आरोप से साक्षी में भी भासता है परन्तु आवरण नष्ट हो जाने पर भेद से भान होने वाला जीव भाव जाता रहता है, तब वह साक्षी रूप से प्रकाशित होता है।

विवेचन।

साक्षी, अन्तःकरण और उसमें पड़ा हुआ आभासरूप जो जीव भाव है वह मायिक है, वस्तुतः नहीं है तो भी अविद्या से साक्षी में भासता है यह उसका भासना आरोप से है। साक्षी रूप अधिष्ठान में जीव भाव अध्यस्त है। अधिष्ठान के प्रकाश से अध्यस्त जीव भाव प्रकाशित होता है। अधिष्ठान पारमार्थिक सत्ता में है और अध्यस्त मायिक व्यवहारिक सत्ता में है। साक्षी शुद्ध ब्रह्म स्वरूप है और भेद भावसे युक्त जीवभाव मायिक स्वरूप है। अधिष्ठान में जो अध्यस्त है उस अध्यस्त की सत्ता अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती, अधिष्ठान की सत्ता ही अध्यस्त में काम करती है। आरोप किये हुए को अध्यस्त कहते हैं। किसी वस्तु में, वस्तु का भान न होते हुए दूसरी वस्तुका भान हो तो जिसका भान होता है वह वस्तु प्रथम में आरोपित है। आरोपित वस्तु अवस्तु होती है, वस्तु तो जिसमें आरोप किया है वह ही होती है। लकड़ी होते हुए कुरसी का भान होता है यह कुरसी की आकृति का लकड़ी में आरोप किया गया है। रस्सी में अन्धेरा आदिक कारण से रस्सी न दीखते हुए सर्पादि दीखता है। वहां रस्सी में सर्पादिक का आरोप किया गया है। मनुष्य को निद्रा दोष से स्वप्न में अनेक प्रकार के पदार्थ दीखते हैं वह सब जीव में आरोपित हैं। वस्तु और हो और भान और हो तब जिसका

भान हो वह आरोप किया हुआ होता है। इसी प्रकार परब्रह्म रूप साक्षी में जीव भावका आरोप किया गया है। इस प्रकार का आरोप भ्रांति बिना हो नहीं सकता, वह भ्रांति से है और भ्रांति स्वरूप है। भ्रांति, माया, अविद्या, अविवेक, एकही पदार्थ हैं। जहां भ्रांति होती है वहां प्रथम आवरण होता है आवरण बिना भ्रांति नहीं होती। आवरण से पदार्थ ढक जाता है तब ही उसीके बदले दूसरे का भान होता है। जब आवरण नष्ट होजाता है तब भ्रांति नष्टहोजाती है। साक्षी में जो जीव भाव हुआ है उसकी सिद्धि आवरण से है, साक्षी पर आवरण होने से साक्षीका बोध नहीं होता तब वहां माया की विक्षेप शक्ति से जीवका भान होता है। इसीसे आवरण की निवृत्ति से जीव भाव निवृत्त होजाता है और जिसमें जीव भावका आरोप हुआ था ऐसा साक्षी आत्म-रूप से प्रकाशित होता है।

प्राचीन समय में एक स्थान पर एक राजा का शस्त्रागार था। वह अग्नि लगने से जलकर भस्म होगया था। इस समय उसके एक कोने में थोड़ा हिस्सा जली हुई इमारत का देख पड़ता था। इस महल के आस पास चारों तरफ बड़े २ वृक्ष होजाने से वहां एक जंगल सा होगया था और उसमें बनके पशुओं ने आकर अपना निवास स्थान बना लिया था। वहीं एक स्थान पर एक डोकरी रहने लगी थी यह डोकरी यक्षिणी थी वह रात्री के समय में घुग्घू दिवस में कौआ और संध्या के समय में यक्षिणी का रूप धारण करती थी। इस स्थान से सौ हाथकी दूरी पर जो कोई मनुष्य आता था तो वह वृद्ध यक्षिणी आकर्षण मंत्र से उसको अपने पास खेंच लेती थी, जो खिंचकर आने वाली स्त्री हो तो उसको पक्षी बनाकर महालय में पिंजरे में बन्द करके

रखती थी और जो पुरुष हो तो उसको भून कर भक्षण कर जाती थी इसी कारण से इस जले हुए महालय की तरफ कोई मनुष्य जाता नहीं था।

जिस राज्य में यह जला हुआ महालय था उसके राजपुत्र ने इस महालय का वृत्तान्त लोगों से सुना, राजपुत्र अपनी पत्नि सहित उस महालय को देखने के लिये आया, राजकुंवर का विचार था कि स्थान पसंद आजाय तो पुनः महालय को निर्माण करके वहां ही पत्नि सहित निवास करना चाहिये।

राजा के मनुष्य उस जंगल में आये और जले हुये महालय के पास डेरा तम्बू डाल दिया, राजपुत्र अपनी पत्नी सहित आया था उसने अपनी पालकी महालय के पास खड़ी करादी। ज्यों ही उसमें से उतर कर महालय में प्रवेश करने लगा कि राजकमार पाषाण होकर नीचे गिर पड़ा और उसकी पत्नी मैना बन गई। यक्षिणी ने विचार किया कि प्रथम इस सैन्य का मांस खाना चाहिये और सब से पीछे राजकुंवर का मांस भक्षण करूंगी डोकरी ने सबको आकर्षण शक्ति से अपने पास खींच लिया और मार मार कर भोजन करने लगी।

राजपुत्र पाषाण हो गया था तो भी वह देख सुन सकता था हिलना चलना उससे होता नहीं था वह अपना उद्धार किस प्रकार कर सके? ऐसी हालत में राजपुत्र कई दिन तक पड़ा रहा।

इस यक्षिणी की एक बहिन थी। बहिन को बहुत शिकार प्राप्त हुआ जान कर वह उसके पास आई। दोनों बहिनों में बात चीत होते होते दोनों लड़ पड़ीं, गालियां देते देते एक दूसरी

को मारने लगी। वृद्ध यक्षिणी ने छोटी वहिन को मार डाला, वहिन का मृत शरीर भूमि पर पड़ते देखकर वृद्ध यक्षिणी का सब गुस्सा उतर गया और दुःखी होकर कहने लगी, हायरे! मेरे हाथ से कैसा नीच कार्य हुआ है! और रोने लगी। वाद वह वहां से उठ कर महालय की एक कोठरी में चली गई वहां से एक कटोरी में जल निकाल कर जल पर मंत्र पढ़ा उस जल को जल्दी से वाहर ले आकर मरी हुई वहिन के ऊपर छिड़का वह जीवित होकर उठ वैठी।

यक्षिणी जल्दी से मंत्रित जलको लेकर आरही थी तव उसीमें से थोड़ा जल, पाषाण होकर पड़े हुए राजकुंवर के ऊपर पड़ गया था। इस जल के प्रभाव से राजकुंवर ने अपने देह को पुनः प्राप्त किया। वृद्ध यक्षिणी को इस वात की खवर न रही। राजकुंवर डोकरी न जाने इस प्रकार से वहां से चुपके से भाग गया।

राजकुंवर ने अपना उद्धार कर लिया परन्तु उसकी प्रियतमा के उद्धार विना वह अत्यन्त दुःखी था। उसने देश देशों पर से जादूगर-मायावी मनुष्यों को बुलाकर अपनी पत्नि के उद्धार करने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु कुछ न हुआ। पत्नि के विरह से राजकुंवर पागल समान होगया और मधुसूदन माधव की प्रार्थना करने लगा! एकाग्र चित्त के तीव्र भाव की प्रार्थना से माधव प्रसन्न हुए। जव राजकुंवर चिन्ता से व्याकुल होकर थक कर सो गया तव स्वप्न में मधुसूदन ने आकर कहा, 'हे राजपुत्र, यहां से थोड़ी दूर पर एक श्वेत पर्वत है उस पर एक श्वेत सरोवर है इसका जल श्वेत है उस जल में श्वेत कमल उत्पन्न हुए हैं

उन कमलों में से एक कमल लेआ और जब तू यक्षिणी से कैद होकर पक्षी के रूप में रही हुई बालाओं को कमल का स्पर्श करा देगा उसी समय वे अपने वास्तविक स्वरूप को धारण कर लेगीं।

राजकुंवर ने स्वप्न की बात पर विश्वास कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल वह श्वेत पर्वत की तरफ़ चल पड़ा। कितनेक दिन की कठिन यात्रा करके पहाड़ के ऊपर पहुंचा। श्वेत पर्वत की सब बात स्वप्न से मिलती देखकर उसे अत्यन्त उत्साह हुआ, सरोवर में कूद पड़ा एक कमल को तोड़कर बाहर निकल आया, कमल को कपड़े में मजबूत बांधकर अपने देश की तरफ़ चलने लगा कई रोज़ में महालय में आ पहुँचा।

राजकुंवर को कमल लेते हुए आता देख वृद्ध यक्षिणी कांपने लगी। राजकुंवर ने महालय में प्रवेश किया, राक्षसी उसके सामने आगई और बहुत प्रकार से उसे डराने लगी परन्तु वह डरा नहीं। फिर से उसे पाषाण कर देने के लिये और भस्म कर देने के लिये कितने ही मंत्र पढ़ डाले परन्तु श्वेत कमल के प्रभाव से यक्षिणी के मंत्रों का कुछ भी असर राजकुंवर पर न हुआ वह दृढ़ता से यक्षिणी के पास गया, यक्षिणी को कमल छुआते ही पृथिवी पर गिर गई, हाथ पैर पटकती हुई मरण के शरण हुई।

श्वेत कमल को हाथ में लेकर वह उस कमरे में गया जहां पक्षियों को पिंजरे में रखा गया था उसको देखकर सब पक्षी आनन्द से नाचने लगे। इतने पक्षिओं में अपनी प्रियतमा कौन है यह राजकुंवर जान नहीं सकता था इसीसे जितनी मैनायें थीं उन्

सबके ऊपर श्वेत कमल को छुवाने लगा जितनी मैना थीं सब कुंमारिका होगईं। राजवधू को अत्यंत आनन्द प्राप्त हुआ, स्वामी के कंठ से चिपट गई और आनंदाश्रु गिराने लगी। अन्य बालाएं राजकुंवर को सैकड़ों आशीर्वाद देने लगीं, उन बालिकाओं की संख्या दश हजार की थी सब कुमारिका वहां से अपने २ घर को चली गईं। राजकुंवर और उसकी पत्नि राज्य में जाकर आनंद से रहने लगे। बाद उस महालय को तुड़वा कर नया बनवाया पास का सब जंगल काट दिया गया और वहां सुन्दर बगीचा लगवाकर राजकुंवर पत्नि सहित आकर रहने लगा।

शस्त्रागार जो शुद्ध भूमि थी यक्षिणी ने उसे मायामय बनादी थी। शुद्ध भूमि के ऊपर यक्षिणी ने माया का आरोप कर दिया था जिससे मनुष्य मर जाते थे अथवा पाषाण और पक्षी बन जाते थे। यक्षिणी मंत्र के प्रभाव से सबका आकर्षण करके सबको अपने काबू में ले आती थी। परब्रह्म रूप शुद्ध तत्त्व को मायारूप यक्षिणी इसी प्रकार अपने काबू में ले आती है, जो माया के काबू में जाता है उसे माया का गुलाम होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। माया स्वरूप से पदार्थ को बदल नहीं सकती अपने प्रभाव से आरोप ही करती है जो सज्जन इस प्रकार माया के किये हुए आरोप को हटा देता है वह स्वरूप को प्राप्त होता है।

यक्षिणी ने राजकुंवर को पाषाण बनाया था वह पाषाण का आरोप ही था, राजकुंवर होते हुए राजकुंवर दीखता नहीं था और पाषाण ही दीखता था। यह पाषाण का आरोप कहां

जाता है। अन्य बालाएं और राजकुंवर की पत्नि बालारूप ही थी आरोप से बालाओं का स्वरूप दीखता नहीं था और उसके स्थान में मैना का स्वरूप दीखता था, पिंजरे में बन्द भी आरोप से ही थी। मैना का आरोप बालाओं में किया गया था आरोप हट जाने से पूर्व का स्वरूप ज्यों का त्यों प्रगट दीखने लगा।

राजकुंवर जब पाषाण हुआ था उस समय पर किसी प्रकार का पुरुषार्थ करके पाषाण योनि से छूट कर स्व शरीर को प्राप्त नहीं हो सकता था। संयोग वश उसके ऊपर मंत्र जल पड़ने से पाषाण योनि से मुक्त होकर स्वरूप को प्राप्त हुआ। अत्यन्त तमोगुण होना ही पाषाण योनि होना है ऐसी अवस्था में मनुष्य अपना कुछ भी हित नहीं कर सकता, पूर्व संस्कार वश ही--पुण्य प्रताप से मंत्र जल से पाषाण स्वरूप से मुक्त होकर प्रयत्न कर सकता है। शांति की प्राप्ति के हेतु जब पूर्ण व्याकुल होता है तब दृढ़ प्रयत्न में लगता है।

जब संसार में मनुष्य अनेक प्रकार की आपत्ति भोग कर पूर्ण दुःखी होजाता है, तब बोध होता है कि वास्तविक शांति का वियोग है, पक्षी के समान शांति उड़ गई है तब उसकी प्राप्ति के निमित्त सच्ची चाहना उत्पन्न होती है, उस चाह में ही भगवान् का भजन करता है भजन से अंतःकरण शुद्ध होकर उचित मार्ग का बोध होता है इसी प्रकार राजकुंवर को हुआ और प्रयत्न से शांतिरूप पत्नि को प्राप्त कर सुखी हुआ।

सच्ची भक्तिसे ईश्वर प्रसन्न होते हैं, स्वरूप में बाधा पहुं-चाने वाली वस्तुओं का अन्तःकरण में से बाध होता है। इसी

प्रकार राजकुंवर को हुआ। श्वेत पहाड़ परब्रह्म है, श्वेत सरोवर उसीका चैतन्य है और कमल शुद्ध स्वरूप का बोध है कमल का ग्रहण करना ज्ञान का ग्रहण है और जहां जहां माया का आरोप किया गया था वहां उस कमल रूप ज्ञान बूटी-निर्मली को राजकुंवर ने छुवाई, आरोप किया हुआ सब मैल हट कर पूर्ण शुद्धि होगई, सब बालाएं अपने स्वरूप को प्राप्त हुईं और राजकुंवर भी अपनी पत्नि को प्राप्त कर आनन्दमय हुआ।

तथा सर्ग ब्रह्मणोश्च
भेद मावृत्यतिष्ठति।
या शक्ति स्तद्वशाद्ब्रह्म
विकृतत्वेन भासते ॥ १८ ॥

अर्थः—इसी प्रकार जो शक्ति सृष्टि और ब्रह्म के भेद को आवरण करके स्थित है, उसके प्रभावसे ब्रह्म विकारी हो ऐसा भासता है।

विवेचन।

दोनों प्रकार की शक्तिओं को प्रथम कह चुके हैं, आवरण शक्ति से परब्रह्म ढप जाता है इसीसे परब्रह्म का परब्रह्म रूप से स्पष्ट भान नहीं होता तब विक्षेप शक्ति भेद को करती है। जगत् भिन्न है और परब्रह्म भिन्न है इस प्रकार भेद को करके विक्षेप शक्ति सहित आवरण शक्ति टिकी हुई है, इसीसे जो ब्रह्म विकार रहित है वह विकारवाला प्रतीत होने लगा, अविकारी को विकारी

विक्षेप शक्ति ही दिखलाती है। और जो असत् है उसमें सत् का भान कराती है।

जगत् विकार वाला है और परब्रह्म विकार रहित है, जगत् मिथ्या है और परब्रह्म सत्य है, तो भी माया अपनी दोनों शक्तियों से युक्त होकर मिथ्या जगत् को सच्चा और सबके आत्मरूप से विराजमान परब्रह्म को परोक्ष-न दीखने वाला ऐसे विपरीत ज्ञानको करके संसार में प्रवृत्त कराती है। जगत् और परब्रह्म ऐसे दो पदार्थ नहीं हैं, वस्तुतः एक परब्रह्म ही है। जब परब्रह्म को आवरण से युक्त किया जाता है तब वास्तविक स्वरूप से उसका भान नहीं होता। भान करने वाला और परब्रह्म के बीच में परदा-अज्ञान आवरण है इसीसे जब परब्रह्म का बोध नहीं होता तब उस अज्ञान में क्षोभ द्वारा अन्य ही पदार्थ मालूम होने लगता है। यह अन्य पदार्थ का भान अविद्या की कल्पना है परन्तु जो प्राणी अविद्या से आवृत हैं उनको ये सब कल्पना हैं ऐसा भान नहीं होता, वे काल्पनिक पदार्थों को सच्चा मानते हैं। कल्पित पदार्थ में सत्यता नहीं होती, परब्रह्म की सत्यता का भान कल्पित पदार्थों में किया जाता है और जो परब्रह्म सत्य है, सबका अपना आप है, सबको नित्य अपरोक्ष है तब भी उसका भान नहीं होता। परब्रह्म में जगत् और जगत् के पदार्थों का अज्ञान से आरोप किया गया है, आधार जो सत्य है उसको न जान कर आरोपित पदार्थों को ही सत्य समझते हैं तब सत्यस्वरूप परब्रह्म का भान नहीं होता।

परब्रह्म अविकारी स्वरूप होने से कभी भी विकार को प्राप्त नहीं हो सकता। परब्रह्म तत्त्व का भाव जब नहीं होता, तब

माया के सामर्थ्य से ब्रह्मतत्त्व में जीव भाव का आरोप दृढ़ हो जाता है। यह आरोप मात्र ही है ऐसा भान नहीं होता तब अविकारी जीवतत्त्व विकारी ही है यानी परब्रह्म विकारी है इस प्रकार का ज्ञान, अज्ञान से होता है। अज्ञान से आवृत हुआ और विक्षेपता को प्राप्त हुआ जीव माया का बन जाता है, माया के विकारों को अपना विकार मानता है, माया की उपाधि के उत्पत्ति नाश से अपना उत्पत्ति नाश मानता है।

जब कोई मनुष्य जादूगरके सामने उसकी निगाह में दब जाता है तब उसके दिखलाये हुए सब खेल जो वास्तविक में सच्चे नहीं होते, वे जादूगर की प्रबल भावना द्वारा सच्चे प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार जादू वाली माया के भाव में दबने से उसीके आधीन होना पड़ता है और जो २ भाव-चमत्कार उलटा सुलटा वह दिखलाती है उसको परतंत्र होकर सच्चा मानना पड़ता है।

एक अविचल तत्त्व में अनेक प्रकार का भेद, क्रिया, उत्पत्ति नाश, सुख, दुःख, आदि दिखलाने की सामर्थ्यवाली माया है। माया को सामर्थ्य वाली कहने से भी माया कोई वस्तु रूप नहीं है यह तो अवस्तु रूप ही है। वस्तु की वस्तुता को ढांप कर अवस्तु ऐसी माया वस्तु हो ऐसी जान पड़ती है। वस्तु की सामर्थ्य से ही अवस्तु होते हुए एक में अनेकता को पैदा करके अनुभव कराने में समर्थ होती है। जैसे दर्पण मनुष्य के मुखा-दिक को दिखलाता है परन्तु मुख की दिशा को बदल देता है इसी प्रकार माया ब्रह्म की दिशा को आभास से युक्त होकर बदल देती है, इसी प्रकार अविकारी को विकारी और एक का अनेक कर दिखलाती है। मनुष्य का मुख दर्पण में उलटा दीखता है तो भी जो वास्तविक मुख है वह जैसा का तैसा ही रहता है,

वह उलटा नहीं होता इसी प्रकार माया सब कुछ उलटा कर दिखलादे तो भी परब्रह्म अपने स्वरूप में ज्यों का त्यों ही रहता है। माया हो अथवा न हो किसी समय में भी परब्रह्म के स्वरूप में भेद-विकार नहीं होता। सूर्य ग्रहण दूर से देखने वालों को है सूर्य के स्थान में ग्रहण नहीं होता इसी प्रकार जीव परब्रह्म से दूर होकर देखता है इसीसे जीव भाव रूप अज्ञान का ग्रहण दीखने में आता है और परब्रह्म में अंधेरा दीखता है वस्तुतः परब्रह्म ज्यों का त्यों ही रहता है।

कोई मनुष्य प्रतिष्ठा वाला हो, सौम्य प्रकृति का हो और विद्वान् हो तो भी जब अधिक शराब पी लेता है–नशे में पूर्ण होजाता है तब उसे अपनी प्रतिष्ठा का भान नहीं रहता, सौम्यता नहीं रहती, मैं कौन हूँ क्या कर रहा हूं कुछ भान नहीं रहता और विद्या भी नहीं रहती। गाली गलौज करता है किसी को मारता है वस्त्र फेंक देता है, नंगा डोलता है, गिर जाता है, अथवा नाली में पड़ जाता है ऐसी अनेक विकृतियों को करता है। यह सब विक्रिया सौम्य मनुष्य में हो नहीं सकती नशे के संयोग से ही सम्पूर्ण विक्रिया होती है। विक्रिया का हेतु शराब है। शराब का संयोग सभ्य मनुष्य में होते ही सभ्यता के स्थान पर असभ्यता प्रकट होती है। इसी प्रकार आत्मा जो शुद्ध है, सब प्रकार के विकारों से रहित है, जिसमें किसी का संयोग हो ऐसा नहीं है अल्पज्ञ नहीं है तो भी अविद्या की आवरण और विक्षेप शक्तियों के योग से शुद्ध का अशुद्ध अविकारी का विकारी असगका संगवाला और सर्वज्ञका अल्पज्ञ प्रतीत होता है। अविद्या और अविद्या के सब धर्म जो आत्मा से विरुद्ध हैं उनका आत्मा में आरोप किया हुआ है।

जैसे शराब का नशा खटाई आदि से उतर जाता है इसी प्रकार वैराग्य ज्ञान द्वारा आत्मा में से अविद्या और उसके कार्य हट जाते हैं। आरोप का अपवाद होता है तब आत्मा अपने स्वस्वरूप से प्रकाशित होता है।

अत्राप्यावृति नाशेन
विभाति ब्रह्म सर्गयोः।
भेद स्तयो विकारः स्या
त्सर्गे न ब्रह्मणि कचित्॥ १६॥

अर्थः—यहां पर आवरण का नाश होने से ब्रह्म और सृष्टि के भेद का ज्ञान होता है उन दोनों में से विकार सृष्टि में है ब्रह्म में नहीं है।

विवेचन।

भेद का हेतु विक्षेप शक्ति है यह आवरण सहित ही होती है। आवरण शक्ति का नाश होने से विक्षेप शक्ति का संपूर्ण सामर्थ्य चला जाता है। विक्षेप शक्ति रूप ही जगत है, आवरण के नाश होने से जगत् का अभाव हो जाता है—जगत् में जो सत्यता थी उसका नाश हो जाता है, दीखता हुआ जगत् आवरण शक्ति के न होने से अवस्तु मालूम होता है। जब आवरण शक्ति का नाश होता है तब ब्रह्म और जगत् क्या वस्तु है यह ठीक २ समझा जाता है। ब्रह्म सत्य है जगत् असत्य है, ब्रह्म वस्तु है जगत् अवस्तु है, ब्रह्म में एकता है जगत् में अनेकता है, ब्रह्म

अविकारी है जगत् विकारी है, ब्रह्म चेतन स्वरूप है, जगत् माया स्वरूप है। आवरण शक्ति का नाश हो जाय और विक्षेप शक्ति का न हो तब भी जगत दीखता है किन्तु प्रथम जो सत्य रूप से दीखता था उसीके बदले अब असत् रूप से दीखता है। विक्षेप और विक्षेप का कार्य जगत् की भिन्नता असत् हो जाने से जीव को किसी प्रकार से आन्तर क्षोभ नहीं होता। जीवन्मुक्त पुरुष इस स्थिति में रहते हैं। ज्ञानी पुरुष को ज्ञान होने से आवरण शक्ति का नाश हो जाता है परन्तु प्रारब्ध शेष रहने से विक्षेप शक्ति का नाश नहीं होता, यह विक्षेप देखने मात्र का ही होता है, जला हुआ होता है। अज्ञान की दशा में जिस प्रकार विक्षेप शक्ति अनेक प्रकार के उपद्रवों को पैदा करती थी अब इस प्रकार के उपद्रव करने का सामर्थ्य उसमें नहीं रहता। ज्ञान होते ही विक्षेप शक्ति मुरदा हो जाती है तब ब्रह्म और जगत् की भिन्नता का ठीक २ बोध होता है ठीक बोध न होने में आवरण शक्ति की ही आड़ थी वह निवृत्त होगई।

अज्ञान, ज्ञान और स्वरूप स्थिति, यह तीन कक्षाएं हैं। अज्ञान में ब्रह्म का भान नहीं होता, जगत् का भान होता है और जगत् सत्य दीखता है। दूसरी ज्ञान की अवस्था जो जीवन्मुक्ति स्वरूप है उसमें सत्य स्वरूप परब्रह्म का एकता के साथ बोध होता है और जगत् का असत् विकारी रूप से बोध होता है इसी समय आवरण शक्ति का नाश होता है और विक्षेप शक्ति दग्ध हुई मृतक स्थिति में रहती है। जिस प्रकार किसी पेड़ की जड़ काटी जाय तब पेड़ मरा हुआ ही होता है तो भी खड़ा होने से पत्ते डाली आदिक दीखते हैं, हरा भी दीखता है, वस्तुतः यह पेड़ जिन्दा नहीं है। इसी प्रकार जब आवरण रूप संसार की जड़

कट जाती है तब विक्षेप रूप व्यवहार दीखते हुए भी मुरदे के समान ही हैं। जीवन्मुक्त पुरुष भाव से परब्रह्म में टिका है, शरीर संसार के भान सहित चेष्टा करता है। तीसरा स्वस्वरूप में स्वरूप से टिकने वाला है। आवरण शक्ति का नाश प्रथम हुआ था और अ ब विक्षेप शक्ति का भी स्वरूप से नाश हो जाता है। जीवन्मुक्ति में जली हुई विक्षेप शक्ति दीखती थी वह अब नहीं दीखती, अपने शरीर सहित संपूर्ण संसार का भान नहीं रहता, न कोई क्रिया होती है, व्यक्तित्व ही टूट जाता है यह अवस्था विदेह मुक्ति की है। सारांश यह है कि अज्ञान में आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति से युक्त जगत् का सच्चा भान होता है, ज्ञान में आवरण शक्ति रहित जली हुई विक्षेप शक्ति होती है, ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है ऐसा बोध होता है और स्वरूप स्थिति में आवरण और विक्षेप शक्ति सहित माया का क्षय होता है, ब्रह्म का सच्चापन और जगत् का मिथ्यापन बोध करने वाला व्यक्तित्व ही नहीं रहता, अद्वितीय एक परब्रह्म ही रह जाता है उसे विदेह कैवल्य कहते हैं।

परब्रह्म और जगत् दो वस्तु सत्य नहीं है। संसार की दशा में जब परब्रह्म का भान नहीं होता तब उस अधिष्ठान में अध्यस्त ऐसे जगत् का भान होता है, जगत् की अनेकता और मैं तू आदिक सब भिन्न प्रतीत होते हैं। अविद्या के नाश से एक परम तत्त्व ही शेष रहता है। विद्वान् पुरुष संसार में रहते हुए भी परमतत्त्व को जानता है और अज्ञानी मनुष्य नहीं जानता उसे अनुमान से जो समझ में आवे इतना ही वह जानता है। अनुमान यह है कि संसार महान् है उसे कोई बताने वाला

अवश्य होना चाहिये । परन्तु उसे प्रत्यक्ष नहीं होता प्रत्यक्ष तो जगत् ही रहता है । आवरण शक्ति से ही उन लोगों को परब्रह्म का बोध नहीं होता, आवरण शक्ति के नाश से परब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है । आवरण शक्ति के नाश होने से सत्य स्वरूप ब्रह्म और असत् स्वरूप जगत् दोनों का ज्ञान होता है । जादू में दब कर जादू के पदार्थों को सच्चा समझना अज्ञान है, जादू में न दब कर जादू के पदार्थों को देखते हुए भी मिथ्या समझना ज्ञान है और न जादू में दबना न जादू के पदार्थों को देखना अपने ही स्वरुप में रहना स्वरूप स्थिति है ।

जितना भेद है, विकार है, बदलना है, उत्पत्ति और नाश आदि सब भिन्नता संसार में है, और जो मनुष्य संसार और माया से युक्त होता है उसे देखने को और अनुभव करने को संसार और संसार के पदार्थ होते हैं । माया का होकर मायिक भाव से वस्तु को ग्रहण करता है, सब कुछ होते हुए भी परब्रह्म एकसा ही रहता है उसमें किसी प्रकार की क्रिया विकार और भिन्नता आदि नहीं होते । विकार विकारी में होता है, अविकारी अद्वैत तत्त्व में किसी प्रकार का विकार नहीं होता ।

माया से युक्त विकारी जीव भी माया की सत्ता में ही विकारी हैं अपने स्वरूप से विकारी नहीं है, इसी से ही माया अविद्या का आरोप कहा जाता है, आरोप वस्तु स्वरूप नहीं है मायिक होने से अपवाद होता है, जैसे कोई मनुष्य सफेद वस्त्र पहने हुए सफेद दीखता है काला वस्त्र पहने हुए काला दीखता है तो भी सफेद वस्त्र की सफेदी और काले वस्त्र की कालाट उसके शरीर को लगता नहीं । वस्त्र रहित जैसा है वैसा ही वस्त्र सहित है, उसका शरीर हर हालत में जैसा का तैसा ही रहता है ।

इसी प्रकार जीव का जो वास्तविक स्वरूप परब्रह्म है माया अविद्या के कितने ही रंग बिरंगे वस्त्र पहनने से भी स्वरूप ज्यों का त्यों ही अविकारी रहता है।

अस्ति भातिप्रियं रूपं
नाम चेत्यंश पञ्चकम्।
आद्यत्रयं ब्रह्म रूपं
जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥ २० ॥

अर्थ:—अस्ति भाति प्रिय रूप और नाम ये पांच अंश हैं। पहले तीन ब्रह्म स्वरूप है और अन्तिम के दो जगत् रूप है।

विवेचन।

जगत् का परब्रह्म में आरोपका वर्णन करने के बाद परब्रह्म में अंश है नहीं तो भी मुमुक्षुओं को समझाने के लिये अंश रूप से वर्णन करते हैं। अंश रहित का अंश मुमुक्षुओं के बोध के निमित्त है। जिसका अंश करके कथन किया है वह अंश अथवा गुण नहीं है, परब्रह्म के तीन अंश पर ब्रह्म स्वरूप हैं और माया के दो अंश माया स्वरूप ही हैं।

अखिल ब्रह्माण्डमें परब्रह्म ही परब्रह्म है, परब्रह्म से अतिरिक्त कोई भी पदार्थ नहीं है और यह परब्रह्म भी अद्वैत स्वरूप है वहां स्वरूप में द्वैत न होने से सृष्टि भी नहीं हो सकती परन्तु सृष्टि प्रत्यक्ष है सब के अनुभव-सिद्ध है। यह सृष्टि अवस्तु होते हुए

भी परब्रह्म जो वस्तु स्वरूप है उसमें आरोपित है। संसार की दशा में सृष्टि और सृष्टि के पदार्थ दीखते हैं उसमें परब्रह्म स्वरूप कौन है अथवा उसका अंश कौन है और माया का स्वरूप और माया के अंश कौन हैं इनको पाँच अंश द्वारा समझाते हैं।

अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप यह पांच अंश है। सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में यह पांच का बोध होता है कोई शंका करे कि सब स्थान में परब्रह्म भरा हुआ है तब पांच का बोध क्यों नहीं होता है? सुनो, एक परब्रह्म स्वरूप और न जानने वाले के सामने उसका अभाव इस प्रकार दो भेद हुए। परब्रह्म सच्चा है और उसका अभाव है नहीं और दीखता है इसीसे मिथ्या है। अभाव का नाम ही माया अथवा अविद्या है, यह अवस्तु है वस्तु रूप परब्रह्म में आरोपित होने से वस्तु हो इस प्रकार दीखती है। परब्रह्म के तीन अंश और माया के दो अंश हैं। अस्ति=है, भाति=प्रकाशता है और प्रिय=आनन्द होता है यह तीन अंश परब्रह्म के हैं। परब्रह्म एक और व्यापक है इसीसे उसका अंश भी उसीका स्वरूप है और भेद रहित ब्रह्माण्ड में व्यापक है। अस्ति भाति और प्रिय से रहित कोई भी देश काल और वस्तु नहीं होती। इनको वास्तविक रूप से देखा जाय तो इनमें टुकड़ा भी नहीं है, नाम रूप जो अविद्या का है उसकी उपाधि—आरोप से टुकड़ा होता है। टुकड़े न होते हुए नाम रूप वाली माया से माया में दबे हुए पुरुष को टुकड़ा हो ऐसा मालूम होता है। अस्ति भाति और प्रिय का पदार्थ के नाश से नाश नहीं होता परब्रह्म स्वरूप होने से परब्रह्म का नाश हो तो उसका नाश हो।

नाम और रूप दो अंश माया के हैं और माया के काल्पनिक पदार्थ में वे कल्पित हैं नाम रूप मिथ्या है इस बात को

सब कोई स्वीकार करते हैं व्यवहारिक कार्य में अनुकूलता के लिये नाम की कल्पना की जाती है। नाम की कल्पना मनुष्य करते हैं इसीसे नाम मनुष्य का कल्पा हुआ है। जन्म के पश्चात् दश दिन में घर वाले नाम रखते हैं वही उस पुत्र का नाम हो गया, जो उसके नाम को जानते हैं वेही उसे उस नाम से पुकारते हैं अथवा उसको देखकर नाम याद आजाता है इसी प्रकार जड़, पदार्थों का नाम भी अपने समुदाय में सुलभता से बोध होने के निमित्त कल्पना से स्थिर किये गये हैं। जैसे नाम कल्पना के हैं इसी प्रकार रूप भी कल्पना के हैं—मायिक हैं। जड़ पदार्थों की आकृति मनुष्य बनाता है, जैसे मन में हो इसी प्रकार की रचना करता है। मन से बनी हुई होने से आकृति—रूप काल्पनिक है। ऐसे मनुष्य प्राणी आदिक की आकृति ऊपर की दृष्टि से मनुष्य के मनकृत मालूम नहीं होती तोभी वे मनुष्य के मानसिक कल्पना की ही आकृतियां होती हैं। स्त्री पुरुष के समागम समय का भाव देश काल आदिक के अनुसार संकल्प दृढ़ होता है उसीके अनुसार मनुष्यादिक की आकृति होती है। जैसे कोई पदार्थ एक कारीगर बनावे तब वह पदार्थ उस कारीगर के मनकी कल्पना की आकृति रूप होता है ऐसे कोई पदार्थ अनेक कारीगर मिलकर बनावें तब उसका रूप अनेक कारीगरों के समुदाय के मानसिक भावकी आकृति होती है ऐसे ही चेतन प्राणीओं की शरीराकृति होती है। एक की कल्पना का रूप अथवा अनेक की कल्पना का रूप काल्पनिक ही होता है।

अस्ति भाति प्रिय जो परब्रह्म के अंश कहे गए हैं वे नामरूप के अधिष्ठान हैं। नामरूप अस्ति भाति और प्रिय के ऊपर टिके हुए हैं। अस्ति भाति प्रिय में नामरूप आरोपित हैं। अस्ति

भाति और प्रिय सत् स्वरूप होने से उसके ऊपर टिके हुए नामरूप भी सच्चे हों ऐसे मालूम होते हैं। अस्ति भाति और प्रिय सत् स्वरूप हैं, नामरूप असत् स्वरूप होने से सत् के ऊपर टिके हुए नहीं हो सकते। सच्चे पदार्थ का पूर्ण बोध न हो तब उसमें झूठे का भान होता है और सच्चा ही मालूम देता है ऐसा लोक में देखा जाता है। नामरूप की भी इसी प्रकार प्रतीति होती है, नामरूप ने अस्ति भाति और प्रिय को ढांपा है और नामरूप उसके ऊपर चढ़ बैठा है, तब भी अस्ति भाति और प्रिय अपने प्रभाव को नहीं छोड़ते, नामरूप में भी वे ही प्रतीत होते हैं। अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप युक्त क्रिया ही व्यवहारिक दशा का संपूर्ण जगत् है।

नामरूप मिथ्या है अस्ति भाति और प्रिय सत्य है इसीसे नामरूप की सिद्धि परमात्मा के अंश रूप अस्ति भाति प्रिय से होती है। नामरूप ने अस्ति भाति और प्रिय को दबा दिया है। अस्ति भाति और प्रिय को नामरूप में से पृथक् कर दिया तो नामरूप युक्त पदार्थ की सिद्धि नहीं होगी और पांच अंश में से नामरूप के दो अंशों को हटा दिया जाय तो अस्ति भाति प्रिय जो परब्रह्म के अंश हैं उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता वे ज्यों के त्यों ही अभिन्न रहते हैं, न वे जाते हैं न किसी प्रकार का विकार होता है। अज्ञान की अवस्था में जैसे चोर कोतवाल को दण्ड दे इसी प्रकार नामरूप अस्ति भाति प्रिय को दबा रहा है। अज्ञान का नामरूप ज्ञान स्वरूप को ढांपता है और उसीकी सत्ता से नामरूप सच्चा है इस प्रकार व्यवहार करता है।

नामरूप मायिक-मिथ्या होने से देश काल आदिक की अपेक्षा वाला होता है, वारंवार विकार को प्राप्त होता है और

अस्ति भाति प्रिय सत्ता होने से अखण्ड है, हर हालत में विकार रहित ही होता है। ज्ञान में, अज्ञान में, पदार्थ के होने में, और न होने में, उसके स्वरूप में किसी प्रकार का भी भेद नहीं होता, वह हमेशा अभेद स्वरूप ही रहता है। नामरूप अनेक प्रकार के भेदवाले हैं अस्ति भाति प्रिय अभेद स्वरूप ही है।

भेद वाला मिथ्या नामरूप जब अस्ति भाति प्रिय को ढांप कर उसकी सत्ता से प्रतीत होता है तब उसका किया हुआ भेद अस्ति भाति प्रिय में भी प्रतीत होता है, भेद अवस्तु का किया हुआ होने से अवस्तु है। वस्तु में विकार नहीं है, भेद आरोपित है, आरोपित पदार्थ के दोष से मूल पदार्थ दूषित नहीं होता।

चटाई के पाँच अंश इस प्रकार हैं:—चटाई है, चटाई दीखती है, चटाई बिछाने के काम की है, चटाई नाम है और चौरस आकृतिरूप है। है, दीखती है, और काम की है, यह तीन अंश चटाई के नहीं हैं क्योंकि चटाई माया का कार्य है और चटाई का रूप भी मायिक है। यह तीन अंश परब्रह्म के हैं। परब्रह्म का सच्चिदानन्द जो स्वरूप है वहि अस्ति भाति और प्रिय हैं। चटाई में दीखते हुए नाम और रूप दो अंश माया के हैं। नामरूप ने परब्रह्म के तीनों अंशों को अपने में मिला लिया है इसी से जो माया रूप चटाई वास्तविक नहीं है वह परब्रह्म के अस्ति अंश से है जो तमोगुण रूप अंध है ऐसी चटाई में परब्रह्म के भाति अंश मिलने से चटाई दीखती है और जिसमें प्रियता नहीं ऐसी चटाई में परब्रह्म का प्रिय अंश मिलने से चटाई प्रिय

काम की है। इस प्रकार चटाई की सिद्धि हुई। नामरूप वाली चटाई के ऊपर अस्ति भाति प्रिय लग गया, नामरूप उसके उपर चढ़ा बैठा यह अज्ञान है। ज्ञान में नामरूप तुच्छ होता है और अज्ञान में न जानने से परब्रह्म तुच्छ होता है। परब्रह्म के अंश का भान परब्रह्म रूप से नहीं होता नामरूप में होता है।

शुद्ध अंतःकरण से विचारा जाय तो अस्ति भाति प्रिय का अखण्ड और सत्य बोध होता है ऐसे ही नामरूप विकारी और काल्पनिक है ऐसा बोध होता है। इस प्रकार पांचों अंश का यथार्थ बोध होते ही नामरूप तुच्छ हो जाते हैं। तुच्छ हुआ पदार्थ किसी प्रकार से जीव के आन्तर में क्षोभ करके विकार को पैदा नहीं करता। नामरूप को नीचे पटक कर उसके ऊपर अस्ति भाति और प्रिय को ले आने से अज्ञान निवृत्त हो जाता है। जैसे चटाई में अस्ति भाति और प्रिय नाम और रूप का बोध होता है ऐसे प्रत्येक पदार्थ में बोध होता है।

नाम रूप सब पदार्थों का भिन्न भिन्न होता है क्योंकि यह असत् टुकड़ा रूप है और अस्ति भाति प्रिय सब पदार्थों में एक ही होता है, इसीसे नाम रूप मिथ्या है, मायिक है और अस्ति भाति प्रिय सत्य स्वरूप ब्रह्म है। सब में रहते हुए सब विकार से रहित ही रहता है। जैसे, चटाई है उसमें जो अस्ति भाति और प्रिय हैं वे ही टोपी में हैं वे ही पृथिवी में हैं वे ही सब स्थान में सब पदार्थों में हैं। सब के नामरूप भिन्न भिन्न हैं और अस्ति भाति प्रिय एक ही होता है। मायिक नामरूप का ज्ञान से बाध किया जाय तो नामरूप का आधार अस्ति भाति प्रिय

शेष रहता है। एक स्थान पर चटाई है उसमें से नामरूप के बाध से अस्ति भाति प्रिय रहा, चटाई हट गई तब पृथिवी रही उसमें भी वही अस्ति भाति प्रिय रहा, जमीन खोदी गई कुआ हुआ उसमें भी वे ही अस्ति भाति प्रिय रहे। ऐसे चटाई पृथिवी और जल का नाम और रूप भिन्न है परन्तु सब में अस्ति भाति प्रिय एक ही है उसमें बदली न हुई। नाम रूप बदलने वाला होने से मिथ्या माया रूप है और अस्ति भाति बदलने वाला न होने से सत्य ब्रह्म स्वरूप है।

एक बकरा और बकरी ग्राम में से भाग कर एक घने जंगल में पीपल के वृक्ष की कोटर में निवास करने लगे। कुछ समय में शरीर के बाल बहुत बढ़ गये और भयंकर आकृति वाले होगये, तीन बच्चे भी हुए। एक दिन उस जंगल में एक बड़ा शेर आया वह बकरे के निवासस्थान के पास आया बच्चे बाहर घूम रहे थे, शेर को देखकर चिल्लाने लगे बकरे ने आकर देखा तो शेर सामने से आ रहा है। बकरे ने सोचा हाय अब कैसे बचेंगे, शेर हम को मार डालेगा। कुछ प्रयत्न अवश्य करना चाहिये अब भागने का मौका नहीं है, ऐसा विचार कर बच्चों को कहने लगा ? 'तुम मुझे क्यों कष्ट दे रहे हो' अभी तो तुमको पांच शेर और तीन रीछ का भोजन करा चुका हूँ। कितनी क्षुधा ! खाऊँ खाऊँ ही चिल्लाते रहते हो, एक शेर आरहा है मैं उसे मार कर अभी तुमको भोजन के लिये देता हूँ।

बकरे के ऐसे वचन सुनकर शेर रुक गया और विचारने लगा कि ऐसा पशु मैंने कभी देखा नहीं है। बूढ़ा पशु, बच्चों को पांच शेर और तीन रीछ का भोजन करा चुका है मुझे मार कर भोजन देने को कह रहा है ऐसा

विचार जल्दी से डरके मारे भाग गया। बहुत दूर आ कर एक पेड़ के नीचे विश्राम लेने को खड़ा रहा, उस पेड़ के ऊपर हनुमान जी के वंश का एक बन्दर रहता था। शेर को घबड़ाया हुआ देख कर शेर से बंदर ने कहा, हे वनराज, आप घबड़ा क्यों रहे हो? शेर बोला, मैं आज काल के मुख में से बचकर भाग आया हूँ। एक राक्षस जाति के विलक्षण पशुराज से बच गया हूँ। प्रथम तो मैंने उसे बकरा समझा और शिकार करने को जा रहा था इतने में उसके बच्चे क्षुधा से पुकार करने लगे तब वृद्ध पशु ने कहा:— 'पांच शेर और तीन रीछ' तो अभी तुम खा चुके हो तुम्हारा पेट कैसा है भरता ही नहीं, एक शेर आ रहा है उसे मार कर मैं तुम को खाने को देता हूँ। बन्दर हँसी करते हुए बोला वाह तुम शेर हो, भला तुम्हारा शिकार कौन कर शक्ता है? वह बकरा ही था तुमको देख कर डर गया और तुमको भगाने के लिये आडंबर युक्त वचन कहा। चलिये मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। 'शेर बोला' मुझे तू फिर वहां जाने का उपदेश करता है? तू अपने जीवन से निराश हुआ हो तो जा मैं नहीं जाता, बन्दर बोला, मेरे साथ चलिये मुझे दूर से ही दिखला दीजिये, शेर बोला, तू झट कूद कर पेड़ पर चढ़ जायगा और मैं मारा जाऊंगा। आखिर दोनों पूंछ को बांध कर गये, कोटर से कुछ दूर आते ही बकरा बोला, हे मूर्ख बुद्धिहीन बन्दर! क्या मैंने तुमको एक शेर लाने को ही कहा था? दिन भर में एक शेर लेकर आ रहा है। एक शेर से हमारा भोजन कैसे होगा? शेर समझा कि जरूर यह बन्दर मुझे राक्षस के भोजन के लिये ही ले आया है, वह बहुत जोर से भागा और बन्दर घायल हो कर गिर गया।

८

ऊपर के दृष्टांत में बकरा सच्चिदानन्द स्वरूप यानी अस्ति भाति प्रिय रूप है, राक्षस नाम और बालों के बढ़ जाने से भयंकर रूप हुआ इस प्रकार नाम और रूप लग कर पांच अंश हो गये। नाम और रूप अविद्या का है उसकी अस्ति भाति प्रिय के साथ एकता से शेर भय को प्राप्त हुआ। शेर अपना और बकरें का स्वरूप भूलने से भयभीत हुआ इसी प्रकार सच्चिदानन्द जो परब्रह्म है उसमें माया के नाम रूप लगने से तुच्छ जीव बन जाता है और जन्म मरणादिक अनेक कष्ट भोगता है।

शेर शेर ही था परन्तु उपाधि की सत्यता से बकरे से डर कर भागा। वन्दर सद्गुरु था परन्तु अनधिकारी शेर ने उपदेश को ग्रहण न किया। इसी प्रकार शुद्धात्मा जीव भावको प्राप्त होता है और अनधिकारी होकर सद्गुरु के उपदेश को भी ग्रहण नहीं करता।

खंवाय्वग्नि जलोर्वीषु
देवतिर्यङ् नरादिषु।
अभिन्ना सच्चिदानंदा
भिद्यते रूप नामनी ॥२१॥

अर्थः—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, देवता, तिर्यक् (पशु पक्ष्यादि) और मनुष्यादि में सत्, चित आनंद (अस्ति, भाति, प्रिय) तीनों अभिन्न हैं, और नाम रूप भिन्न २ हैं।

विवेचन ।

माया का कार्य रूप जो पंच भूत है जिससे संपूर्ण ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ है ऐसे आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथिवी हैं यह पांचों भूत भिन्न हैं और एक प्रकार के होते हैं वे एक दूसरे से मिलकर न्यूनाधिक प्रमाण से अनेक तत्त्व यानी एक एक भूतमें अन्य चारों मिलकर पंचीकृत पंच महाभूत होते हैं । जाग्रत अवस्थामें जगत्का व्यवहार उन पंचीकृत किये हुए पांचों तत्त्व के पदार्थों में होता है और सूक्ष्म अकेले अर्थात् दूसरे में मिले हुए नहीं हैं वे भूत अपंचीकृत पंच महाभूत कहे जाते हैं । स्वप्नावस्था के पदार्थ अपंचीकृत पंच महाभूत के होते हैं । इसी प्रकार पंचीकृत और अपंचीकृत पंच भूत के कार्य अनेक हैं तो भी उनमें रहा हुआ सत् है, चित्-प्रकाश और आनन्द-प्रिय प्रत्येक में एकही है, भूत और भूत के कार्य में भिन्नता होती है परन्तु सबमें रहा हुआ अस्ति भाति और प्रिय एक ही है, समान ही है इसी प्रकार देवता, पशु, पत्ती आदिक तिर्यक् योनि और मनुष्यों में अस्ति भाति प्रिय एक ही है । मनुष्यादिक के भेद से भी उनमें भेद नहीं होता, यह व्यवहारिक वस्तु और अवस्तु सब में एकसा ही रहता है सब पदार्थों के भेद में सच्चिदानन्द की भिन्नता नहीं होती वह एक है और अखंड है । प्रत्येक पदार्थ के नाम रूप की भिन्नता है, नाम रूप की एक दूसरे से एकता नहीं है, सब अलग अलग हैं । व्यक्ति है परिछिन्न और उत्पत्ति नाश वाले हैं ।

अस्ति भाति प्रिय परब्रह्म स्वरूप है इसीसे वे तीनों एक साथ ही रहते हैं एक दूसरे से भिन्न नहीं होते । जहां अस्ति है, वहां भाति और प्रिय होते हैं, जहां भाति है वहां अस्ति और प्रिय

होते हैं और जहां प्रिय है वहां अस्ति और भाति भी होते हैं। अस्ति भाति और प्रिय यह तीन शब्द और उनके भिन्न २ लक्षण समझने के निमित्त ही रखे गये हैं क्योंकि यह परब्रह्म रूप होने से उनके नाम लक्षण वास्तविक नहीं हैं। अस्ति भाति और प्रिय हमेशा साथ ही रहते हैं तो भी अज्ञान की दृष्टि से मालूम नहीं होते, किसी में अस्ति मालूम होता है, किसी में भाति मालूम देता है। यह भेद मायिक दृष्टि का है। अस्ति में अस्ति, भाति में अस्ति और भाति दीखता है और प्रिय में अस्ति भाति. प्रिय तीनों दीखते हैं। अस्ति प्रत्येक में प्रतीत होता है:— जैसे जड़ पदार्थों में भी अस्ति है ऐसा मालूम होता है, चेतन चित्त आदि अस्ति सहित मालूम होता है और एकाग्रता में प्रिय अस्ति भाति सहित मालूम होता है।

लालटेन यह नाम है और उसकी जो आकृति है वह रूप है ऐसे नामरूप वाली लालटेन में है "अस्ति," लालटेन "दीखती" है यह भाति और लालटेन काम की है यह "प्रिय" है यह तीनों जो परब्रह्म रूप है इसीसे लालटेन में से सबको अथवा एक को हटा देने से लालटेन की सिद्धि ही नहीं होगी। अस्ति–है, हटा देने से लालटेन न होगी, भाति–प्रकाश हटा देने से लालटेन न दीखेगी और प्रिय–काम की है हटा देने से लालटेन बेकार होगी और तीनों साथ हटा लेने से भी लालटेन न रहेगी। एक जाय और दो रहे अथवा दो जाँय और एक रहे ऐसा नहीं होता, तीनों साथ ही रहते हैं और इसीसे लालटेन के नाम रूप की सिद्धि होती है। लोकमें लालटेन है, दीखती है, काम की है ऐसा मानते हैं परन्तु 'है' में लालटेन 'प्रकाश' में लालटेन और 'प्रिय' में लालटेन है। पदार्थ का है पदार्थ का प्रकाश और पदार्थ में "प्रियता" अज्ञान की दृष्टि से है।

लोग जड़ पदार्थों में 'है' मानते हैं परन्तु प्रकाश और आनंद को नहीं मानते। चित्तको चैतन्य कहते हैं इसीसे चित्तमें है और भाति को मानते हैं उसमें आनन्द को नहीं मानते और एकाग्रता में तो अस्ति भाति प्रिय तीनों का भान होता है। अस्ति भाति और प्रिय सब पदार्थों में समान ही रहता है एक का भान हो और दूसरों का भान न हो यह उपाधि के भेद से है वास्तविक तीनों एक से रहते हैं।

नाम रूप मायिक हैं इसीसे सब संसार नाम और रूप से ही भरा है। सबके नाम और रूप भिन्न २ होते हैं, नाम रूप में व्यक्तित्व है और अस्ति भाति प्रिय में अव्यक्तता है। लोगों ने पदार्थ का दो भेद माना है:—जड़ और चेतन, इन दोनों के नाम और रूप अवश्य होते हैं। नाम व्यवहार के हेतु काल्पनिक है और रूप व्यवहार की आकृति है। जिसको लोग चेतन कहते हैं वह अधिकता से सूक्ष्म है तो भी उसकी आकृति गुणादि लेकर अथवा स्थूल को ग्रहण करके होती है, विशेषता से चेतन का भान होने से जन्तु अथवा प्राणी को चेतन कहते हैं। जिसमें चिदाभास की विशेष प्रतीति होती है उसे ही चेतन कहते हैं जो सामान्य चेतन सबका आधार है उसे वे लोग नहीं जानते।

अस्ति भाति और प्रिय परब्रह्म रूप होने से नाम रूप वाले जगत् और जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों का अधिष्ठान है उसमें नाम रूप की कल्पना भ्रांति से है लोग नाम रूप में अस्ति भाति प्रिय का आरोप करते हैं. और नाम रूपको मूल पदार्थ मानते हैं.। अज्ञान से इस प्रकार का विपरीत भाव कितना ही क्यों न हो

वह व्यापक तत्त्व को हटाने के लिये समर्थ नहीं होता, व्यापक को दवा दे इतना ही वह कर सकता है।

जैसे अंधेरे में रस्सी पड़ी है उस रस्सी का जब रस्सी रूप से ठीक बोध नहीं होता तब रस्सी के बदले में भ्रान्ति से सर्प मालूम होने लगता है। है, दीखती है, और प्रिय है, यह रस्सी के अंश हैं रस्सी का अस्तित्व भ्रान्तिसे सर्प में दीखता है। व्यवहारिक सत्ता की रस्सी का भान न होने से रस्सी के स्थान में प्रातिभासिक सर्प दीखता है इसीसे अस्ति भाति प्रिय भी सर्प में दीखते हैं। सर्प है इसमें रस्सी में जो 'है' है उसे सर्प के ऊपर चढ़ा दिया, ऐसे ही रस्सी का भाति और प्रिय भी सर्प के ऊपर चढ़ा दिया; सर्प में रस्सी के प्रिय को उलटा करके चढ़ा देने से सर्प अप्रिय हुआ।

ऐसे ही परब्रह्म का अस्ति भाति और प्रिय स्वरूप संपूर्ण जगत् और जगत् के पदार्थों में भ्रान्ति से कार्य कर रहा है। नाम रूप भिन्न २ होने से उस भिन्नता के साथ लगाये हुए अस्ति भाति प्रिय को भी भिन्न समझते हैं परन्तु यह भिन्नता नाम रूप ही की है। अस्ति भाति प्रिय में कहीं भी भेद नहीं है किसी पदार्थ में भी लगाया जाय यह अभिन्न ही रहता है।

भेद रहित ऐसे अस्ति भाति प्रिय में अज्ञान से अज्ञान कृत नाम रूप को लगा कर भेद रहित में भेद का भान करते हैं यह भेद ज्ञान ही अज्ञान स्वरूप है और संसार में भटकाने वाला है। भेद ज्ञान अनादि काल से चला आया है तो भी वह अज्ञान स्वरूप होने से तत्त्व ज्ञान से निवृत्ति किया जा सकता है। उस अज्ञान की निवृत्ति से स्वरूप की प्राप्ति होती है। भेद ज्ञान में

ही जीव और जीव का बन्धन है। भेद ज्ञानकी निवृत्ति से जीव भाव की निवृत्ति होती है और जीव भावकी निवृत्ति से वास्तविक जो ब्रह्म स्वरूप है उसकी प्राप्ति होती है।

उपेक्ष्य नाम रूपे द्वे
सच्चिदानंद वस्तुनि।
समाधिं सर्वदा कुर्यात्
हृदये वाथवा बहिः ॥२२॥

अर्थः—सच्चिदानन्द वस्तु में नाम रूप दोनों की उपेक्षा यानी त्याग करके हृदय में अथवा बाहर हमेशा समाधि करे। (प्रत्यक्ष नाम रूप अंश को त्याग कर शेष रहे हुए सच्चिदानन्द अंश में स्थिर होवे।)

विवेचन।

अस्ति भाति प्रिय परब्रह्म स्वरूप होने से जगत् के पदार्थों में उनका पृथक् भान नहीं होता। नाम रूप ने अस्ति भाति प्रिय को ढांप रखा है इसीसे नाम रूप की प्रत्यक्ष प्रतीति होती है और अस्ति भाति प्रिय से मिला हुआ नाम रूप प्रतीति होता है, नाम रूप माया का है इसीसे माया में दबे हुए मनुष्यों को प्रतीत होता है, जब उसका त्याग किया जाय—चित्त वृत्ति से हटा दिया जाय तब परब्रह्म रूप जो अस्ति भाति प्रिय सच्चिदानन्द है उसीका प्रत्यक्ष बोध होता है। सच्चिदानन्द सब स्थान में है इसीसे हृदय में भी है, हृदय नाम है और हृदय रूप पदार्थ है

इन दोनों का त्याग करने से हृदय के आधार बुद्धि रूपी गुहा में स्थिरता से सच्चिदानन्द का बोध होता है, यानी सच्चिदानन्द पर-ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। जैसे हृदय के नाम रूप को हटाकर बोध होता है ऐसा बाहर यानी जगत्‌में जगत् नाम और जगत् रूप को हटा देने से वहां रहे हुए, जगत के आधार सच्चिदानन्द का बोध होता है इसी प्रकार बाहर के कोई पदार्थ का नाम रूप हटा देने से सच्चिदानन्द का बोध होता है। नाम रूप का त्याग करके टिकना समाधि में होता है इसीसे हृदय में अथवा बाहर समाधि को करे। नाम रूप की तरफ जाकर उसका बोध करने वाली बुद्धि है, नाम रूप अनेक हैं इसीसे बुद्धि भी अनेक वृत्ति वाली होती हैं, बुद्धि की वृत्ति को नाम रूप से हटा देने से शेष रहे हुए आत्मस्वरूप—अधिष्ठान सच्चिदानन्द की वृत्ति होती है। वह ही परब्रह्म है एक होने से एक ही प्रकार का होने से चैतन्यमय होकर वृत्ति की पृथक्ता भी जाती रहती है इसी हालत में बुद्धि समान होजाने से उसे समाधि कहते हैं। जगत् के तरफ की बुद्धि अनेक प्रकार की और चंचल होने से असम बुद्धि है और सच्चिदानन्द समस्वरूप होने से उसमें गई हुई बुद्धि की वृत्ति भी सम होती है, इसीसे उसको समाधि कहते हैं।

समाधि हृदय में होती है ऐसे बाहर जगत् में अथवा जगत् के कोई पदार्थ में भी होती है, आरंभ के अवलम्बन का भेद है परन्तु अन्त में समाधि स्थिति तो अस्ति भाति प्रिय रूप जो परब्रह्म है उसी में ही होती है इसी से सब प्रकार से की हुई समाधि एक ही है। अवलंबन कोई भी हो उसका नाम रूप हटा देने से नाम रूप का अधिष्ठान सर्वत्र एक ही है इसीसे समाधि परब्रह्म में ही होती है। बाहर की हुई समाधि की

अपेक्षा आन्तर हृदय में की हुई समाधि में श्रेष्ठत्व है, सुलभता है और बाहर की समाधि में कुछ कठिनाई है। हृदय से जीव भाव का उत्थान है इसीसे हृदय की समाधि में जीव की पृथक्ता नहीं रहती और स्वरूपस्थिति होती है और बाहर की समाधि में समाधि का करने वाला सभाधि के स्थान से भिन्न रह कर करता है इसी से कुछ कठिनाई है। समाधि में समाधि करने वाला पृथक् नहीं रहता तो भी उत्थान काल में 'मैंने परब्रह्म का बाहर अमुक पदार्थ में बोध किया' ऐसा बोध होने का संभव है भिन्नता युक्त बोध अद्वैत बोध नहीं है इसीसे हृदय की समाधि में श्रेष्ठत्व है। योग्य अधिकारी बाहर समाधि करते हुए भी एकता का बोध करता है तब यथार्थ फल ही होता है।

जिस प्रकार समाधि करने वाला जिसमें समाधि करता है उसके नाम रूप को त्याग कर परब्रह्म में चित्त वृत्ति को स्थिर करता है, हृदय में समाधि करने से तो हृदय के नाम रूप के त्याग से, हृदय में होने से समाधि करने वाले के नामरूप का त्याग होजाता है और अद्वैत ऐसे परब्रह्म को प्राप्त होता है। परन्तु बाहर जगत्में अथवा जगत्के पदार्थमें समाधि करनेवालेका जैसे बाहर के पदार्थ के नाम रूप का त्याग करता है ऐसे ही उसे अपने नाम रूप का भी त्याग करना होगा, दोनों के नाम रूप के त्याग से पूर्ण समाधि होगी। हृदय में समाधि करने वाले का एक नाम रूप का ही त्याग करना पड़ता है और बाहर समाधि वाले को अपने और बाहर के नाम रूप को त्यागना होता है तब ही एकता से सच्चिदानन्द का बोध होता है, यदि समाधि करने से भी अद्वैत का बोध न हो, अपना व्यक्तित्व न छूटे तो समाधि निष्फल है। अद्वैत सच्चिदानन्द की बोध रहित समाधि कथन

मात्र की समाधि है इससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती—मोक्षदाता नहीं होती।

नाम रूप दोनों अंश मायिक हैं। माया अवस्तु स्वरूप है—भ्रांति है इसीसे नामरूप भी भ्रांतिका ही है और अस्ति भाति प्रिय तीनों परब्रह्म रूप हैं इसीसे वस्तु रूप हैं और सत्य हैं। आत्मरूप वस्तु की प्राप्ति के लिये अवस्तु का त्याग ही आवश्यक है, अवस्तु के त्याग से ही सच्चिदानन्द रूप वस्तु सच्चिदानन्द रूप से प्रतीत होती है। सच्चिदानन्द समाधि में अद्वैत स्वरूप ही होता है, सत् चित् आनन्द (अस्ति भाति प्रिय) पृथक् नहीं होता। अस्ति भाति प्रिय यह तीन भेद नाम रूप के साथ समझने के लिये ही किये गये हैं। परब्रह्म स्वरूप अद्वैत ही है भेद रहित है। जो यह अस्ति भाति प्रिय परब्रह्म का गुण अथवा अंश होता तो पृथक् हो सकता परन्तु यह तीनों उसके स्वरूप हैं इसीसे भेद रहित अद्वैत ही है।

जो मनुष्य उपरोक्त समाधि को नित्य करता है वह अनात्म के सब संस्कारों से रहित होता हुआ स्वरूप स्थिति को ही प्राप्त होता है। समाधि में तत्त्व का प्रत्यक्ष होने से दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानी होजाता है। इसीसे अविद्या निवृत्त होजाती है प्रारब्ध शेष होने से निवृत्त हुई अविद्या प्रतीत होती है परन्तु उसमें सत्यत्व न रहने से उपद्रव से रहित होती है ऐसी अवस्था भी अधिक समय नहीं रहती क्योंकि जड़ से कटे हुए वृक्ष के डाल पात कब तक हरे रह सकते हैं? कुछ दिन ही वे हरे दीखेंगे; इसी प्रकार अविद्या के नाश के बाद शरीर और उसके व्यवहार देखने मात्र को निर्जीव हैं।

नाम और रूप में टिकना संसार है और नाम रूपका बाध करके उसका आधार सच्चिदानन्द मैं हूं इस प्रकार टिकना परब्रह्म स्वरूप है। नाम रूपमें टिकने वाले को कष्ट से कष्ट ही प्राप्त होता है और सच्चिदानन्द में टिकने वाले को आनंद ही आनंद होता है। जिसको जगत् और जगत् के पदार्थ का भाव और सम्बन्ध नहीं होता वह शरीर में रहते हुए भी अशरीरी है, मनुष्य होते हुए भी परब्रह्म स्वरूप है।

सविकल्पो निर्विकल्पः
समाधिर्द्विविधो हृदि ।
दृश्यशब्दानुवेधेन
सविकल्पः पुनर्द्विधा ॥ २३ ॥

अर्थः—हृदय में सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार की समाधि होती है; फिर सविकल्प समाधि एक दृश्य से सम्बन्ध वाली और दूसरी शब्द से सम्बन्ध वाली ऐसे दो प्रकार की होती है।

विवेचन ।

आन्तर हृदय में और बाहर जगत् में समाधि होने का कथन किया। हृदय की समाधि श्रेष्ठ होने से अब उसीके भेद का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार हृदय में भेद होता है ऐसे ही बाहर के भेद को भी समझना चाहिये। समाधि करने वाला धारणा ध्यान के बाद ही समाधि को प्राप्त होता है। ध्यान समाधि में विचार

की मुख्यता है और योग समाधि में क्रिया सहित विचार है। योग समाधि धारणा, ध्यान और समाधि इस क्रम से होती है समाधि करने वाले को उनकी भिन्नता मालूम भी होती है, ज्ञान समाधि वाले में भी वही क्रम होता है परन्तु उसकी भिन्नता मालूम नहीं होती। विचार को धारण कर रखना धारणा है अथवा किसी लक्ष को धारण कर रखना धारणा है, जिसको धारण किया है उसमें वृत्ति का प्रवाह जो त्रिपुटि सहित होता है वह ध्यान कहा जाता है, ध्याता, ध्यान और ध्येय के सिवाय और किसी का भी भान ध्यान में होना न चाहिये। वृत्ति का प्रवाह पूर्ण हो और त्रिपुटि का अस्पष्ट भान सविकल्प समाधि कही जाती है और त्रिपुटि का भान रहित निर्विकल्प समाधि होती है। योग समाधि क्रम से होती है परन्तु जिसको योग समाधि दृढ़ हुई है उसका क्रम जल्दी से होजाता है ध्यान आदि के क्रम की भिन्न प्रतीति नहीं होती।

हृदय में अथवा बाहर होने वाली समाधि दो प्रकार की है एक सविकल्प और दूसरी निर्विकल्प। सविकल्प समाधि निर्विकल्प समाधि का साधन है। सविकल्प समाधि का बारंबार अभ्यास करने से निर्विकल्प समाधि की सिद्धि होती है। ध्यान के बाद प्रथम सविकल्प समाधि होती है, ध्यान में वृत्ति का प्रवाह था वह सविकल्प समाधि में दृढ़ होता है और जो त्रिपुटि का भान स्पष्ट रूपसे होता था वह अब अस्पष्ट रूपसे होता है, त्रिपुटि का अस्पष्ट भान भी ब्रह्मरूप से होता है। समाधि में एकता अवश्य होती है तो भी कच्ची समाधि जो सविकल्प रूप है उसमें विच्छेदित एकता होती है। जैसे कोई मनुष्य नींद में से जाग्रत हुआ हो परन्तु पूर्ण जाग्रत नहीं हो इसी हालत में कोई कुछ

कहता है तो जानता है और नहीं भी जानता-अस्पष्ट जानता है इसी प्रकार सविकल्प समाधि में होता है। मनका जो संकल्प विकल्प स्वरूप है वह वहां कभी विकल्प को अस्पष्ट रूपसे फैलाता है इसीसे उसे सविकल्प समाधि कहते हैं। बुद्धि स्थिर हुई है परन्तु दृढ़ नहीं हुई विकल्प कर बैठती है इसीसे विकल्प का भान होता है। अखंड सच्चिदानन्द स्वरूप में विकल्प सहित कुछ समाधान को प्राप्त हुई बुद्धि की वृत्ति सविकल्प समाधि है।

निर्विकल्प समाधि में किसी प्रकार का विकल्प नहीं होता, त्रिपुटि का बोध नहीं होता, वृत्ति ब्रह्माकार होकर अद्वैत अखंड रूप को प्राप्त होजाती है, वृत्ति की पृथक्ता नहीं रहती। एकाकार ब्रह्म ही अवशेष रहे ऐसी निर्मल समाधि होती है, वृत्ति निरोध भी उसीका नाम है। सुषुप्ति में इसी प्रकार एकता होती है परन्तु वृत्ति का लय अन्तःकरण के अज्ञान में ही होता है और निर्विकल्प समाधि में अज्ञान सहित अन्तःकरण का लय चैतन्य में होता है इसीसे ब्रह्माकार वृत्ति भी अपने व्यक्तित्व भावको छोड़कर चैतन्य स्वरूप होजाती है चेतन ही चेतन रहता है, अनन्त स्वरूप ही शेष रहता है उसको निर्विकल्प समाधि कहते हैं। बारंबार सविकल्प समाधि के करने से सविकल्प के संस्कार से निर्विकल्प की प्राप्ति होती है। सविकल्प समाधि के संस्कार अविद्या के संस्कारों को क्षीण करके निर्विकल्प समाधि होने के उपयोगी संस्कारों को बढ़ाते हैं। उत्थान संस्कार क्षीण होते हैं और निरुद्ध संस्कार की वृद्धि होती है। अन्तःकरण में अनन्त काल के पड़े हुए जगत् के भाव के संस्कारों का क्षय निर्विकल्प समाधि से हो जाता है।

अनन्त काल के सांसारिक संस्कार दृढ़ होने से निर्विकल्प समाधि एक साथ नहीं होती, सविकल्प समाधि के वारंवार अभ्यास से निर्विकल्प समाधि होती है ऐसे ही सविकल्प समाधि भी प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के वाद ही होती है, प्रत्याहार धारणा और ध्यान में वहुत समय लगता है जव अभ्यास वहुत वढ़ जाता है तव तो यह तीनों वहुत जल्दी हो जाते हैं। यह तीनों में भी क्रम है प्रत्याहार के वाद ही धारणा होती है प्रत्याहार नहीं हो तो धारणा नहीं होती। की हुई धारणा पर ही ध्यान होता है जव धारणा नहीं है तो ध्यान किस पर हो इस प्रकार ध्यान के वाद सविकल्प समाधि होती है ध्यान न हो तो सविकल्प समाधि न हो और ऐसे ही सविकल्प समाधि के वाद निर्विकल्प समाधि होती है ऊपर वाले सव निर्विकल्प समाधि के क्रम हैं, निर्विकल्प समाधि पूर्ण समाधि है।

चित्त की वृत्तियां अनेक दृश्य और अदृश्य पदार्थों में भटका करतीं हैं, वासना और संस्कारों में भी भटका करती हैं मन कोई भी इन्द्रिय के सहारे वाहर भटकता है और अन्तर में संस्कार स्मृति के सहारे भटकता है। अनेक प्रकार की कामना से भरा हुआ मन स्थिर नहीं होता, इन्द्रियों के साथ जुड़ कर जगत् के विषयों में भटकता रहता है। मुमुक्षु इन्द्रियों को वश करता है उस क्रिया का नाम प्रत्याहार है। इन्द्रियां विषय में प्रवृत्त होती हैं तव उसके साथ मन मिलता है या यों कहो कि इन्द्रियां अपने साथ मन को खींच लेती हैं मन सहित ही इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है। जव सव इन्द्रियां अपने २ विषय को छोड़ कर मन के साथ जुड़ जांय और वाहर प्रवृत्त न हों उस स्थिति का नाम प्रत्याहार है। इन्द्रियां विषयों की तरफ चंचलता वाली होती हैं

जब मन के साथ जुड़ जाती हैं तब उनकी चंचलता निवृत्त होकर मनके स्वाधीन हो जाना पड़ता है। प्रत्येक विषय की तरफ से इन्द्रियों का हट जाना, विषयों का ग्रहण न होना प्रत्याहार है। अभ्यासियों को प्रत्याहार की मुख्य आवश्यकता है, प्रत्याहार के पश्चात् ही अभ्यास आगे बढ़ता जाता है, इसी से प्रत्याहार की सिद्धि प्रयत्नपूर्वक कर लेना चाहिये।

वैराग्य के बल से इन्द्रियों को विषय की तरफ से हटा कर मन से युक्त कर देना प्रत्याहार कहा गया है उस करके इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। जब इन्द्रियां वश में नहीं होतीं तब मन को ध्येय की तरफ जाने नहीं देतीं, वह मन को अपने वश करके विषयों की तरफ ले दौड़ती हैं ऐसा न हो उसी के लिये प्रत्याहार की आवश्यकता है। वारंवार विषयों की तरफ दौड़ने वाली इन्द्रियों को विषयों की तरफ से हटाकर मन ने जो ध्येय धारण किया है उसके साथ जोड़ देना ऐसा अभ्यास बहुत काल तक करते रहने से इन्द्रियां वश में होकर प्रत्याहार की सिद्धि होती है। अभ्यास में वैराग्य की मुख्यता है इन्द्रियां विषय की तरफ राग करके ही दौड़ती हैं, जब इन्द्रियां विषय की ओर गई मालूम हों, विषय से युक्त हुई मालूम हों इसी समय वैराग्य को प्रगट कर देना चाहिये, विषयों की तरफ तिरस्कार करना चाहिये अथवा विषयों के दोष का विचार करना चाहिये इससे इन्द्रियां लौट आती हैं जब तक इन्द्रियां वश में न हों तब तक अभ्यास और वैराग्य दृढ़ता से करता रहे।

प्रत्याहार की कुछ सिद्धि के साथ ही धारणा का अभ्यास होता है जो कुछ कसर प्रत्याहार में होती है वह धारणा आदिक

के अभ्यास करते करते निवृत्त हो जाती है। मन को एक आधार में स्थापित करना, मन उसी आधार में ही रहे उसे धारणा कहते हैं। प्रत्याहार की अपूर्णता से ही धारणा में बारंबार विक्षेप होता है। इन्द्रियां बलिष्ठ होने से मन को धारणा से हटाकर अपने साथ विषयों में युक्त कर देती हैं इस प्रकार न हो और मन ध्येय को ही पकड़े रहे यही ठीक धारणा है। ध्येय देश में चित्त की स्थिति ही धारणा है। धारणा का देश दो प्रकार का है। बाह्य देश और आन्तर देश। बाह्य में सूर्य, चंद्र, विद्युत्, मणि, शुक्र, तारा, शालिग्राम, देव, शास्त्र निश्चित सगुण ईश्वर का स्वरूप, सद्गुरु इत्यादि से लेकर अनेक पदार्थ हैं ऐसा ही आन्तर में है। आन्तर में पृथिवी आदि पांच तत्व, हृदय कमल आदि सात चक्र, नासिका जिह्वा भ्रुकुटी मध्य आदि शरीर के स्थान और आत्मा आदिक हैं। मुमुक्षुओं को शरीर के स्थान आदि की आवश्यकता नहीं है। बने वहां तक हृदय में ही आत्मा की धारणा करे। अन्तःकरण में ही आत्मा की धारणा बाह्य धारणा की अपेक्षा से सुलभ है, धारणा के आरंभ में स्थूल विषय होता है, क्योंकि अभ्यास का आरंभ करने वाला सूक्ष्म विषय को धारणा करने में असमर्थ होता है, जैसे जैसे अभ्यास बढ़ता जाय तैसे २ ही विषयको सूक्ष्म करता जाय। ऐसे ही बाह्य ध्येय को धारण करने वाला बाहर की सिद्धि होने के पश्चात् उसे आन्तर में धारण करे। प्रथम मूर्त को ग्रहण करे पश्चात् अमूर्त को ग्रहण करे इस प्रकार अभ्यास करने वाले मनुष्य को तीन मास में धारणा की सिद्धि होती है. यह साधारण नियम है, कि अधिकारी के सत्व और प्रयत्न के अनुसार न्यूनाधिक काल भी होता है। धारणा गुरु उपदेश के अनुसार करनी ही अच्छी है, जल्दी सफल होती है, यदि धारण करने वाले मुमुक्षु के

समीप में ही सद्गुरु हो तो अवश्य फल होता है। जो मनुष्य सद्गुरु के उपदेश रहित पुस्तकादिक में देख करके धारणा में प्रवृत्त होता है उसको हानि पहुँचने का संभव है। दुष्ट कर्म अथवा दुष्ट मनुष्यादि की धारणा कभी भी न करे इसी प्रकार विषयाशक्त होकर विषय की धारणा भी न करे। दुष्टों की धारणा से दुष्ट ही होना पड़ेगा।

धारणा थोड़ी थोड़ी होने लगती है इसी समय ध्यान करने का आरंभ किया जाता है, धारणा की दृढ़ स्थिति ही ध्यान है, जिसको धारणा में धारण किया था वह ध्येय है उसीमें अन्तराय रहित एकाकार वृत्ति का प्रवाह होने को ध्यान कहते हैं। धारणा में वृत्ति ने ध्येय को पकड़ रखा था अब ध्यान में उस वृत्ति का प्रवाह एकाकार चलता है, यह वृत्ति का प्रवाह सतत धारा रूप नहीं होता, बीच २ में विच्छेद से युक्त होता है और त्रिपुटी भी स्पष्ट होती है। ठीक ध्यान में ध्याता ध्यान और ध्येय को छोड़ कर और किसी प्रकार की वृत्ति नहीं होती। परमेश्वर के स्वरूप में चित्त वृत्ति का एकाकार प्रवाह प्रत्याहार और धारणा की सिद्धि से होता है। ध्यान अनेक प्रकार का होता है परन्तु परमेश्वर विषयक सगुण अथवा निर्गुण ध्यान ही श्रेष्ठ है। ध्यान जब दृढ़ होता है तब समाधि की सिद्धि होती है, ध्यान रहित समाधि नहीं होती।

जगत् और उसके पदार्थों के ध्यान से सबको जगत् स्वरूप की प्राप्ति हुई है तब क्या आत्मा का ध्यान करने से जो प्रत्येक का स्वरूप है उसकी प्राप्ति नहीं होगी? इसीसे मुमुक्षु पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक आत्म स्वरूप के ध्यान में लगना चाहिये। ध्यान से

जिस प्रकार कीट भ्रमर बन जाता है इसी प्रकार ध्यान करते २ मुमुक्षु ब्रह्म स्वरूप बन जाता है। ध्यान में सब सामर्थ है ध्यान ही जीवको ईश बना देता है।

कामाद्याश्रित्त सादृश्या-
तत्साक्षि त्वेन चेतनां।
ध्यायेद् दृश्यानुविद्धोयं
समाधिः सविकल्पकः ॥ २४ ॥

अर्थः—कामादि दृश्य चित्त के धर्म हैं, चेतन को उनके साक्षी भावसे ध्यान करे। यह दृश्यानुविद्ध-दृश्य के सम्बंध वाली सविकल्प समाधि है।

विवेचन ।

द्रष्टा और दृश्य का विवेक ग्रन्थकार ने आरम्भ में ही किया है। वास्तविक द्रष्टा एक शुद्ध तत्त्व है। दृश्य अनेक और मायिक हैं। सविकल्प समाधि के दो भेद हैं। उनमें जिसका दृश्य से सम्बन्ध है—दृश्य के सहारे से जो समाधि होती है वह दृश्यानुविद्ध समाधि है। दृश्य सम्बन्ध से है, दृश्य में समाधि नहीं है। जैसे किसी पदार्थ को जानने के लिये किसी एक पदार्थ का सहारा लिया जाय इसी प्रकार यह समाधि है। जैसे लाइन खींचने में रौल का सहारा लिया जाता है उससे लकीर सीधी खिचती है परन्तु पीछे सीधी लकीर को रौले से कोई सम्बन्ध

नहीं रहा इसी प्रकार दृश्यानुविद्ध समाधि है। कई दृश्य भी ऐसे हैं कि वे अन्य के द्रष्टा होते हैं परन्तु वास्तविक द्रष्टा द्रष्टा ही रहता है किसी का दृश्य कभी भी नहीं होता। जो दृश्य ही हैं और दृश्य होते हुए कभी आपेक्षिक द्रष्टा भी बनता है, तो भी वह दृश्य ही है। ऐसे दोनों प्रकार के दृश्य को हटा कर वास्तविक द्रष्टा जिसकी दृष्टि का कभी लोप नहीं होता है उसमें समाधि की जाती है। अन्तःकरण की वृत्तियां आभास से युक्त होने से विशेष चैतन्यता वाली दीखती हैं और इसीसे भूल होना सम्भव है ये वृत्तियां भी दृश्य ही हैं चैतन्य होते हुए भी द्रष्टा नहीं है उनमें कामादिक रहे हुए हैं वे भी दृश्य ही हैं। उपदेश के अनुसार दृश्य को सम्पूर्ण हटाने से दृश्यानुविद्ध समाधि होती है। जगत् और जगत् के सब पदार्थ काल्पनिक हैं इसीसे सब दृश्य हैं दृश्य के आन्तर में रहा हुआ उसका आधार और प्रकाशक वास्तविक तत्त्व द्रष्टा है वही दृश्य का साक्षी है। उस दृश्य को हटा कर उसके द्रष्टा साक्षी में चित्तको लगाना समाधि है। चित्त की एकाग्र वृत्ति समाधि में होती है। अन्तःकरण की सात्विक वृत्ति में काम, चिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य अधैर्य लज्जा भय आदिक दृश्य है उनको हटाते हुए अपने को उन वृत्तियों का साक्षी शुद्ध चैतन्य समझते हुए सदा ऐसे ही अनुसन्धान पूर्वक आत्मानुभव करने को दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि कहते हैं। इस प्रकार के अभ्यास से अन्तःकरण में आभास के आवेश से काम संकल्प आदि दृश्य वृत्तियों का अनुसन्धान छूटकर मैं असंग आत्म स्वरूप हूँ ऐसा बोध होता है।

द्रश्यानुविद्ध समाधि तक पहुँचने में बाहर और आन्तर के अनेक प्रकार की कामना के संस्कार जो विदित अथवा अविदित

रूप से आन्तर में पड़े हुए हैं, जो स्थूल और सूक्ष्म दृश्य रूप हैं उनका स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से भान होता है। बहुत से स्मृति और संस्कारों का भान प्रत्याहार में होता है। प्रत्याहार जाग्रत अवस्था में होता है।

प्रत्याहार में जीवात्मा की जाग्रत अवस्था और नेत्र स्थान होता है। इसलिये इन्द्रियों को विषय की तरफ न जाने दे और मनसे युक्त करे। बाहर के शब्द स्पर्शादिक में इन्द्रियों के साथ मन दौड़ता है बाहर का भान होजाता है उसके साथ स्मृति की भी परंपरा चलती है। प्रत्याहार करने वाले को 'मैं प्रत्याहार करने में प्रवृत्त हुआ हूँ' यह भान नहीं रहता, रजोगुण बढ़ा हुआ होता है, फिर जब सतोगुण की विशेषता होती है तब एक प्रकार से चोंकता है, मन जहां जहां दौड़ा था उसके विचार के साथ स्मृति हो आती है तब वह तिरस्कार करके मनको इन्द्रियों से प्रत्याहार करने में प्रवृत्त करता है। थोड़ी देर कुछ प्रत्याहार होता है फिर मन प्रथम के समान बाहर दौड़ जाता है इन्द्रियों से संयुक्त होजाता है अथवा आन्तर में ही स्मृति के दृश्य को देखता है ऐसे बाहर और आन्तर में भटकता है। जब आन्तर में स्मृति में भटकता है तब मनोराज्य के समान होता है फिर सतोगुण का भान आजाय तब प्रत्याहार में प्रवृत्त होता है। ऐसे बारंबार के अभ्यास से प्रत्याहार की सिद्धि होती है। बाहर भटकने में स्थूल दृश्य होता है और आन्तर में स्मृति का दृश्य होता है। बाहर भटकते हुए मनको रोक कर प्रत्याहार में ले आना सुलभ है उसकी अपेक्षा स्मृति को रोकना कठिन है। स्मृति सूक्ष्म विचार रूप होने से जल्दी होश में आने नहीं देती विचार के चक्र में घूमती ही रहती है। प्रत्याहार की सिद्धि में अधिक विलंब

होता है क्योंकि प्रत्याहार आरंभ का है प्रत्याहार सिद्ध होने के बाद धारणा ध्यान सुगमता से आगे चलता है धारणा ध्यान आदि की सिद्धि प्रत्याहार के तारतम्य से है।

धारणा का अभ्यास प्रत्याहार की सामर्थ के अनुसार जल्दी अथवा विलंब से सिद्ध होता है। जिस लक्ष्यको धारण करना है मन उसको धारण करे रहे वहां से हट न जाय उसे धारणा कहते हैं और धारण किये हुए में वृत्तिका प्रवाह चालू रहे उसे ध्यान कहते हैं। प्रत्याहार में जैसे मन भागता था इसी प्रकार धारणा के अभ्यास में भी भागता रहता है जैसे प्रत्याहार में खेंच कर ले आते थे ऐसे धारणा के अभ्यास में भी करना पड़ता है इस प्रकार के अभ्यास से धारणा की सिद्धि होती है। प्रत्याहार की अपेक्षा धारणा में निकलने वाले स्मृति संस्कार कुछ सूक्ष्म होते हैं और जाग्रत अवस्था के बाहर के भाव न्यून होकर आंतर में जाग्रत अवस्था का भान रहता है। ध्यान के आरंभ की अवस्था में ध्येय पर जो वृत्तिको लगाई है वह बारंबार टूटती रहती है और कभी धारणा भी उड़ जाती हैं, वृत्तिका प्रवाह ध्येय की तरफ से अधिक न टूटने पावे ऐसी स्थिति को ध्यान कहते हैं। ध्यान के आरंभ में जाग्रत अवस्था ही होती है परन्तु गहराई में पहुंची हुई होती है उसका भान अस्पष्ट ही होता है जब वृत्तिका प्रवाह न टूट कर ध्येय में रहता है तब जाग्रत अवस्था छूट कर सूक्ष्म होती हैं ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन के सिवाय और किसी का भान नहीं होता। अधिक अभ्यास से स्थूल में से सूक्ष्म में और सूक्ष्म में से कारण अवस्था को तै करते हुए समाधि में पहुंच जाता है। समाधि में तुर्या ही होती है। ध्यान के आरंभ की अवस्था से लेकर सविकल्प समाधि तक स्थूल और सूक्ष्म रूप

से संस्कारों का कई प्रकार से भान होता है यह इस प्रकार से है।

ध्यान के आरंभ में तुरन्त के अथवा दो चार दिन के विचार, संस्कार के दृश्य और संस्कार प्रतीत होते हैं सूक्ष्म संस्कार जब प्रतीत होते हैं तब स्थूल के समान ही प्रतीत होते हैं। जाग्रत अवस्था से स्वस्वरूप तक के मार्ग में जीवकी सब सृष्टियों के संस्कार पड़े हुए हैं। हृदय के ऊपर अनेक प्रकार के कांटों से युक्त वृक्षों से घिरी हुई महान् जंगल रूप संस्कार की झाड़ी होती है इसीसे वहां से आगे जाने का मार्ग दीखता नहीं है, जब अभ्यास के बल से कांटे आदि हटते हैं तब वे संस्कार प्रतीत होते हैं। जैसे जैसे अभ्यास से संस्कार निकलते जाते हैं वैसे वैसे ही आगे मार्ग साफ होता जाता है। जब अभ्यास-गहराई में और सूक्ष्म में होता है तब सूक्ष्म संस्कारों की सफाई होती है। ध्यान में से हट कर चित्त चलित होकर संस्कारों के दृश्य की तरफ दौड़े तब वहां से हटा कर ध्येय में प्रवाहित करना चाहिये। कभी संस्कार दीखता है। कभी तारा और चंद्र के समान प्रकाश मालूम होता है कभी बिजली की चमक मालूम होती है, इसी प्रकार के दृश्य क्षण क्षण में हो होकर मिटते हैं कभी तो ध्येय से छूटा हुआ मन अन्धेरे का ही भान करता है और घबराता है। जब दृश्य को हटाते हुए ध्येय की तरफ अधिक समय रहने का अभ्यास होजाता है तब उत्साह बढ़ता है और हमेशा वृत्ति ध्येयाकार रहे ऐसा चाहता है। परन्तु यह नहीं होता, कभी २ ध्येयाकार वृत्ति होती है प्रति दिन नहीं होती तब घबराता है। संस्कार जितने जितने निकलते जायंगे वृत्ति उतनी ही अधिक स्थिती को प्राप्त कर लेगी। कोई प्रकाश देखने की

चाहना करते हैं, प्रकाश में प्रेमका होना ध्येय की तरफ से हटा देने वाला है उसका ध्येय छूटकर प्रकाश ही ध्येय होगया है ऐसे यह भी छूटकर और ध्येय हो जायगा ऐसे वर्तने वाले को ध्यान की सिद्धी नहीं होगी एक ही ध्येय को समाधि तक कायम रखे। कोई संस्कार स्पष्ट होता है कोई अस्पष्ट होता है सब उत्थान संस्कारों का निरोध करके हटादे। अस्पष्ट संस्कार यह होता है कि कुछ देखा परन्तु क्या देखा इसका बोध नहीं होता। संस्कार हटते ही ध्येय की वृत्ति प्रवाह सहित बनी रहती हैं। इस प्रकार ध्यान की सिद्धि के बाद समाधि की प्राप्ति होती है दृश्य को हटा-कर समाधि में प्राप्त हुआ है और स्थिरता को प्राप्त नहीं हुआ यह दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

असंगः सच्चिदानंदः
स्वप्रभोद्वैत वर्जितः।
अस्मीतिशब्द विद्धोयं
समाधिःसविकल्पिकः ॥२५॥

अर्थः—मैं असंग सच्चिदानन्द स्वयम् प्रकाश द्वैत से रहित अद्वितीय हूँ, इस प्रकार की यह शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

विवेचन।

दृश्यानुविद्ध समाधि में जो क्रम प्रत्याहार धारणा और ध्यान का है वही क्रम शब्दानुविद्ध समाधि में भी है। दृश्यानुविद्ध

समाधि में दृश्य को हटाते हुए दृश्य के सम्बन्ध वाले, दृश्य के आधार को धारण किया था, शब्दानुविद्ध की धारणा में. तत्त्वमसि आदि महावाक्य और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के वाक्यों को समझकर वाक्य के सहारे लक्ष्य से जो तत्त्व समझा गया है, उस वाक्य को भी हटाकर व्यापक परम तत्त्व जो धारण किया जाता है, वह शब्दानुविद्ध समाधि की धारणा है। दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध में धारणा के अनुसार ध्येय होता है और सविकल्प समाधि में दोनों की समानता है। दृश्यानुविद्ध में दृश्य को हटाकर शेष रहा हुआ परम तत्त्व है और उसको अपना प्रत्येक् रूप समझा जाता है इसी प्रकार शब्दानुविद्ध समाधि में शब्द के सहारे जो बोध हुआ है उसके शब्दादिक को हटाते हुए अपना प्रत्यक् रूप परम तत्त्व समझे। दोनों प्रकार की समाधि में आत्म तत्त्व का बोध होता है।

शब्दानुविद्ध समाधि तत्त्वमसि आदि महावाक्य द्वारा अद्वैत तत्त्वका बोध कराने वाली है। मैं असंग हूँ, क्योंकि देह अन्तःकरण इन्द्रियं आदि में मैं रहता हुआ भी मेरा उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे आकाश घी, तेल, चंदन, शराब, कीच आदि में रहता हुआ उनसे लेपायमान नहीं होता इसी प्रकार मैं सच्चिदानंद स्वरूप लेपायमान नहीं होता। सत् सबमें रहा हुआ है, असत् पदार्थ के संग से भी सत् में किसी प्रकार का विकार नहीं होता। जो पदार्थ ही असत् है उससे सत् का संग कैसे हो? मैं चैतन्य स्वरूप हूँ, मेरे ही चेतन से सब आपेक्षिक चेतनता वाले होकर दीखते हैं। चैतन्य विकार रहित है, उत्पत्ति और नाश रहित है। चेतन में जो विकार दीखता है वह अज्ञानियों के असत् पदार्थ के साथ सत्की एकता करने से, असत् की भिन्नता

को सत् में आरोपित करने से है, वस्तुतः चेतन स्वरूप में किसी प्रकार का विकार नहीं है। मैं आनन्द स्वरूप हूँ, मेरे स्वरूपानंद के कण मात्र से सब ब्रह्माण्ड आनन्दित होते हैं। आनन्द में कभी भी भेद नहीं है आनन्द स्वरूप अखंड है। मायिक उपाधि के साथ में, अज्ञान की दशामें अज्ञान की दृष्टि से भेद होता है। आनन्द से ही संपूर्ण विश्व प्रकट होता है, आनंद में ही सबका व्यवहार होता है और सबका लय स्थान भी आनन्द ही है। जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति में मैं हूँ इसीसे सत् हूँ, सब अवस्थाओं को जानता हूँ इसीसे चित् हूँ, मैं परम प्रेम का आस्पद होने से आनंद स्वरूप हूँ। मैं स्वयम् प्रकाश हूं, मेरे प्रकाश स्वरूप में कभी भी न्यूनाधिक नहीं होता, मैं अलुप्त प्रकाश स्वरूप हूँ, मैं द्वैत से रहित अद्वैत स्वरूप हूँ, मेरे में प्रपंच का लेश भी नहीं है क्योंकि सब प्रपंच मेरे में ही अज्ञान से कल्पित है यानी केवल आरोपित है।

दृश्यानुविद्ध अथवा शब्दानुविद्ध समाधि करते करते अभ्यास के बल से अन्तःकरण में आनन्द स्वरूप के आवेश से काम संकल्प आदि दृश्य वृत्तियों का अनुसन्धान छूट जाता है और मैं असंग हूँ आत्म स्वरूप हूं इत्यादि शब्दों को भी छोड़ कर तूष्णी रूप शान्ति स्थिति को पहुंचता है कभी कभी विकल्प होने के कारण यह सविकल्प समाधि होती है और विकल्प का पूर्ण अभाव हो तब वही निर्विकल्प कही जाती है।

शब्दानुविद्ध समाधि शब्दों का वेधन करके करने को कही है इसीसे प्रायः विचार रूप ही होती है। शास्त्र के वाक्य और सद्गुरु का उपदेश जो शब्दों द्वारा समझ में आया था उसके बार बार विचार करने से विचार करने वाला विचार का स्वरूप

ही बन जाता है। 'मैं असंग अक्रिय हूँ' आदि विचार से ही कामादि विकार क्षीण होते हैं। विचार में ही लक्ष्य के ऊपर चित्त की एकाग्रता होती है। क्रियायोग द्वारा कोई शब्दानुविद्ध समाधि करने को चाहे तो शरीर के भीतर जो स्वाभाविक ध्वनि हुआ करती है उसीके ऊपर चित्त वृत्ति को लगाकर ध्यान करने से श्रेष्ठ ध्यान होता है तब प्राण मन्द पड़ कर बन्द तक हो जाता है, वह ध्वनि अस्पष्ट होकर एकता को प्राप्त हो जाती है इस प्रकार क्रिया–प्राण द्वारा वृत्तियों के न रहने में जो स्थिति है वह मैं हूं ऐसे बोध से ही समाधि सफल होती है। जो इस प्रकार का बोध न हो तो समाधि का फल नहीं होता। ज्ञान समाधि तो विचार सहित ही होती है इसीसे उसमें तो असंगादिक शब्दों को छोड़ कर स्वरूप में ही अपने को समझते हैं।

दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध दोनों प्रकार की समाधि में, दृश्य के साथ में संपूर्ण जगत् की निवृत्ति होती है ऐसे ही शब्द के साथ में संपूर्ण जगत् की निवृत्ति होती है। दृश्य रूप है यह मायिक है और शब्द नाम है इसीसे यह भी माया का है दोनों मायिक होने से एक दूसरे का सम्बन्धी होने से एक को हटाने से दूसरे को भी हटना पड़ता है। दृश्यानुविद्ध समाधि में दृश्य का त्याग किया है, दृश्य नाम वाला ही होता है नाम का त्याग हो गया तब उसके साथ रूप का भी त्याग होने से सच्चिदानन्द ही शेष रहा। ऐसे ही शब्दानुविद्ध में शब्द का त्याग होता है इसलिये शब्द से सम्बन्धित रूप का भी त्याग हो जाने से शेष ऐसा अस्ति भाति प्रिय रूप सच्चिदानन्द ही रहा।

समाधि बुद्धि का सम होना है, एकाकार होना है। जो लोग समाधि को जड़ होना कहते हैं यह ठीक नहीं है। विषम बुद्धि ही जगत् की बुद्धि है, बुद्धि अपनी अनेक प्रकार की वृत्तियां वाली विशेषता को—विषमता को छोड़ कर सम भाव को प्राप्त हो तब सम ऐसा परब्रह्म ही होता है। सुषुप्ति अवस्था में लय हुई बुद्धि सम दीखती है। तब भी वह सम नहीं है इसीसे सुषुप्ति समाधि नहीं है। बोध स्वरूप ही बुद्धि में है, बुद्धि में से मायिक उपाधि—भिन्नता का त्याग करने से बोध स्वरूप ही शेष रहता है। बुद्धि अनेक प्रकार से अनेक प्रकार के पदार्थों में भटकती रहती है नाम रूप ही भटकने का हेतु है इसीसे नाम रूप के त्याग वाली शब्दानुविद्ध और दृश्यानुविद्ध समाधि हैं।

स्वानुभूति रसावेशाद्,
दृश्यशब्दावुपेक्ष्यतु।
निर्विकल्पः समाधिः स्या-
न्निर्वातस्थित दीपवत् ॥२६॥

अर्थः—दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध समाधि की उपेक्षा करने वाले योगी को अपने अनुभव के रस के आवेश से वायु रहित स्थान में रहे हुए दीप के समान निर्विकल्प समाधि होती है।

विवेचन।

दृश्यानुविद्ध समाधि की सिद्धि के बाद और ऐसे ही शब्दानुविद्ध समाधि की सिद्धि के बाद उनका भी भान हटा देना

चाहिये यानी दृश्य अथवा शब्द की उपेक्षा की जाय तब सविकल्प समाधि से उच्च अवस्था प्राप्त होती है। सविकल्प समाधि में विकल्प का भान होता था यानी कभी कभी सूक्ष्म भाव में मन चंचल हो जाता था और कभी त्रिपुटी का भी अस्पष्ट रूप से भान होता था वह हट जाता है और प्रवाहित वृत्ति स्थिर होती है प्रवाह का भी भान नहीं होता, ज्ञाता ज्ञान दोनों ही ज्ञेय रूप हो जाते हैं, ज्ञेय ही ज्ञेय शेष रहता है और वहां किसी प्रकार का विकार—विकल्प न होनेसे उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

सविकल्प समाधि में कभी उत्थान संस्कार अस्पष्ट होता था और निरुद्ध संस्कार के बल से दब जाया करता था, अब वह संस्कार का उत्थान ही नहीं होता और उनको हटाने के लिये निरोध संस्कार की भी आवश्यकता नहीं रहती। सब प्रकार से वृत्ति का निरोध होकर निरोध वृत्ति का भी भान नहीं होता चैतन्यमय हो जाता है तब शुद्ध समाधि होती है और उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं। निर्विकल्प समाधि में चित्त की एकाग्रता चैतन्य में होती है और चित्त की पृथकता भी चैतन्य में मालूम नहीं होती। ध्यान की अवस्था में चित्त की एकाग्रता का प्रवाह था और त्रिपुटि के भान सहित होता था सविकल्प समाधि में एकाग्रता की अधिकता और त्रिपुटि का अपस्ष्ट भान होता था अब निर्विकल्प समाधि में त्रिपुटि के भान रहित, चित्त की पृथकता रहित चैतन्य से एकता होती है यानी चित्त चैतन्य भावको प्राप्त होता है, स्थिर होता है। इसी कारणसे चित्तका लय चैतन्य में कहा जाता है क्योंकि चित्त की पृथकता नहीं रहती। योग का चित्त जो अनेक प्रकार से चंचल था अब वह चंचलता

को छोड़ कर वायु रहित स्थान में रखे हुए दीपक की शिखा जैसे एकसी रहती है, लौ हिलती नहीं इसी प्रकार योगी का चित्त हिलता नहीं। वृत्तियों का हिलना ही चित्त है, जब वृत्तियों से रहित चित्त होता है तब चित्त की पृथकता प्रतीत नहीं होती और वहां चित्त चैतन्य स्वरूप ही होता है।

वायु रहित स्थान में रखे हुए दीपक की शिखा के समान योगी के चित्त को कहा है, किंचित भी वायु न हो ऐसे स्थान में रखा हुआ दीपक बुझ जाता है, प्रकाश युक्त दीपक ही नहीं रहता इसीसे संपूर्ण वायु न हो ऐसा न समझना चाहिये। जो वायु दीपक के प्रकाश की स्थिति का हेतु है वह वहां होता ही है हिलोर देने वाला वायु नहीं होता इसी प्रकार समाधि में भी विषयों की हवा से रहित आवरण और विक्षेप शक्ति से रहित बोध स्वरूप रहना चाहिये इसीसे बोध होता है। स्वरूप का अनुभव होता है, मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ऐसा प्रत्यक्ष होता है और चित्त की अज्ञानावस्था की काम क्रोधादिक वृत्तियों का अभाव होता है। विक्षेप का हेतु वहां कोई नहीं होता और भिन्नता रहित भी बोध होना ही चाहिये यदि स्वप्रकाशरूप का बोध न हो तो सुषुप्ति अवस्था जाननी चाहिये चित् का अभाव समाधि नहीं। चित्त वृत्तियां और पृथकता जो विक्षेप का हेतु हैं और न जानना समाधि में जो आवरण का हेतु है ये दोनों नहीं होते यानी दोनों शक्ति जिसकी हैं ऐसी अविद्या भी नहीं होती। वृत्ति रहित चित्त की चैतन्य में स्थिति समाधि है। चित् का अभाव समाधि नहीं इसीसे महर्षि पतंजली ने चित्त वृत्ति के निरोध को योग कहा है। चित्त जो जाग्रतावस्था और स्वप्ना-वस्था में विषयाकार वृत्ति का होता है और सुषुप्ति में अविद्यामय-

अबोध रूप होता है ऐसा न हो कर चैतन्याकार होना समाधि है।

सविकल्प समाधि की अन्तिम दशा में साक्षात्कार होकर योगी निर्विकल्प होता है। निर्विकल्प ही स्वस्वरूप है। अद्वैत होते हुए भी सुषुप्ति और मूर्छा के समान नहीं हो, पृथक् बोध न होते हुए भी बोध स्वरूप हो; द्रष्टा, दृश्य और दर्शन के अभाव में स्वस्वरूप का अनिर्वचनीय अकथनीय द्वैत रहित एक तत्त्व का बोध हो यह बोध अनुभव स्वरूप है। मन बुद्धि और इन्द्रियों का अविषयरूप, स्वतः सिद्ध प्रमाण रूप, भौतिक ज्योति से विलक्षण ज्योतिरूप स्थिति ही निर्विकल्प समाधि है।

एक संत के पास दो मुमुक्षु आया करते थे दोनों अधिकारी के लक्षणों से युक्त थे संत के ऊपर पूर्ण श्रद्धा रखते थे संत के वाक्य को ईश्वर वाक्य समझते थे, दोनों ने पूर्ण निश्चय कर रखा था कि हमारा कल्याण संत के उपदेश से ही होगा संत के समागम को अपना अहोभाग्य मानते थे। दोनों मनुष्यों ने संत से उपदेश देने की प्रार्थना की। सन्त ने दोनों को अधिकारी के लक्षणों से युक्त देखकर उपदेश देना स्वीकार किया। दोनों को भिन्न भिन्न उपदेश दिया। दोनों योग्य होते हुए भी उनमें एक की बुद्धि सूक्ष्म थी और दूसरे की बुद्धि कुछ स्थूलता युक्त सूक्ष्म थी इसी कारण से दोनों के उपदेश में अन्तर था। कुछ स्थूलता युक्त सूक्ष्म बुद्धि वाले को इस प्रकार कहा:—

जितने पदार्थ देखे जाते हैं प्रत्येक का कोई आधार अवश्य होता है, आधार दीखे अथवा न दीखे तो भी आधार अवश्य होता है और उस आधार का भी आधार होता है जो मूल आधार है

उसका और कोई भी आधार नहीं होता, वह एक और अखंड है और वास्तविक यह आधार, आधार और आधेय रहित है। उसका कोई अन्य आधार नहीं है यह परम तत्त्व है जिसे स्व-स्वरूप अथवा परब्रह्म कहते हैं। उसके सामने कोई अन्य पदार्थ ही नहीं है तब वह किसका आधार हो ? यही परमार्थिक सत्ता स्व-रूप है व्यवहारिक सत्ता वाले के व्यवहारिक पदार्थ का उसे आधार कह सकते हैं।

जैसे एक घड़ी है; घड़ी का आधार खीसा, खीसे का आधार कोट, कोट का आधार मनुष्य, मनुष्य का आधार मकान, मकान का आधार पृथिवी, ऐसे घर के सब पदार्थों का आधार पृथिवी है। पृथिवी जल का कार्य होने से उसका आधार जल, जल अग्नि का कार्य होने से जल का आधार अग्नि, अग्नि वायु का कार्य होने से अग्नि का आधार वायु, वायु आकश का कार्य होने से वायु का आधार आकाश, आकाश अविद्या का कार्य होने से आकाश का आधार अविद्या है। अविद्या विद्या से विरुद्ध होने से विद्या स्वरूप तत्त्व के अपूर्ण बोध में भासती है यानी सब का मूल आधार परब्रह्म में अविद्या भासती है। परब्रह्म को छोड़-कर अविद्या की स्वतंत्र कोई भी सत्ता नहीं है। अविद्या, माया, प्रकृति, अज्ञान, यह एक ही स्वरूप है।

एकान्त में बैठकर इस प्रकार सब दृश्यों के आधार को ग्रहण करते हुए हटाता चला जा, जब सब दृश्य हट जायँगे तब परब्रह्म ही शेष रहेगा, उसी को समझ, वही तेरा वास्तविक स्वरूप है। आधा घंटा अथवा एक घंटा नित्य प्रति विचार में लगाता रह, सब दृश्य हटते ही तुझे अपने स्वरूप का बोध हो

जायगा। गुरु उपदेश के अनुसार मुमुक्षु अभ्यास में प्रवृत्त हुआ, सब दृश्य को हटाकर आत्मानुसंधान करने लगा।

सन्त ने दूसरे मुमुक्षु को, जो प्रथम वाले से सूक्ष्म बुद्धि वाला था, इस प्रकार उपदेश दिया:—

संत:—तूने तत्त्वमसि महावाक्य पढ़ा है और मुझ से कई समय सुना भी है वही फिर कहता हूं। तत् त्वं और असि, यह तीन पद हैं। तत्=वह=ईश्वर, त्वं=तू=जीव और असि=है; 'है' यह पद दोनों की एकता करता है। अब विचारना चाहिये कि ईश्वर महान् है, सर्वज्ञ है अप्रत्यक्ष है और तू जीव तुच्छ है, अल्पज्ञ है और प्रत्यक् है इस प्रकार के विरुद्ध लक्षणों से युक्त पदार्थों की एकता हो नहीं सकती। माया जिसकी उपाधि है ऐसा चैतन्य ईश्वर है और अविद्या जिसकी उपाधि है ऐसा चैतन्य जीव है; दोनों में चैतन्य एक ही है, दोनों की उपाधि भिन्न २ हैं; उपरोक्त दोनों उपाधियों का बाध करके यानी यह कुछ नहीं हैं इस प्रकार समझ कर चैतन्य की एकता कर। उपाधि के हिस्से को त्याग करने से शेष रहे हुए तत्त्व का बोध हो जाता है। यह बोध स्वरूप मैं हूँ ऐसा समझ कर टिकजा, बारंबार विचार करके उपाधि की तरफ से चित्त वृत्ति को हटा दे जिससे चित्त की वृत्ति तक रहने न पावे।

यह शिष्य भी गुरु के उपदेश के अनुसार शब्द के सहारे से कुछ काल तक अभ्यास करता रहा।

दोनों मुमुक्षुओं ने गुरु के उपदेश के अनुसार कितने ही दिनों तक अभ्यास किया। दोनों को धारणा ध्यान और समाधि होने लगी। जब संत ने समझ लिया कि दोनों सविकल्प तक पहुँच गये हैं तब एक दिन दृश्यानुविद्ध समाधि वाले से पूछा।

सन्तः—तू कितने ही दिन से अभ्यास करता है अब कहां तक पहुंचा है ? दृश्य का वोध रहता है या नहीं ?

मुमुक्षुः—महाराज आरंभ में तो दृश्य के बाध करने की वृत्ति ही होती नहीं थी, अन्य विषयों में घूमा करती थी, कुछ दिन बाद वृत्ति होने लगी तो भी चलित हुआ करती थी; अब प्रवाह रूप से रहती है और कभी २ प्रवाह का भी भान नहीं होता और त्रिपुटि वनी रहती हैं; कभी त्रिपुटि अस्पष्ट मालूम होती है और जितने समय त्रिपुटि अस्पष्ट होती है आनन्द मालूम होता है।

सन्तः—तेरा अभ्यास ठीक २ चल रहा है, तू दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि में पहुँचा है अब अधिक अभ्यास से निर्विकल्प समाधि को प्राप्त हो कर स्वस्वरूप के वोध से कृतार्थ होगा।

सन्त ने दूसरे मुमुक्षु से पूछा, 'तेरे अभ्यास की क्या दशा है ? शब्द के सहारे से तुझे समाधि प्राप्ति हुई या नहीं ? अभ्यास के आरंभ से अभी तक का वर्णन कर'।

मुमुक्षुः—महाराज 'तत्त्वमसि' महा वाक्य से मैंने अपने शुद्ध स्वरूप को जाना है, परन्तु स्वरूप में टिकता नहीं हूँ, या स्वरूप में टिक कर जानता नहीं हूं। प्रथम शब्द के लक्ष्य की तरफ वृत्ति को ले जाता था परन्तु वह वहां न रह कर शब्द की तरफ लौट आती थी, अब कुछ टिकने लगी है और शब्द के भान रहित लक्ष्य में जाती है। वृत्ति का प्रवाह चला करता है परन्तु शब्द सर्वथा निर्मूल नहीं होता; कभी त्रिपुटि स्पष्ट मालूम होती है, कभी अस्पष्ट।

सन्त ने उसको भी अधिक अभ्यास करने को कहा दोनों, अभ्यास करके निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त हुए ।

हृदीव बाह्यदेशेपि
यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि ।
समाधिराद्यःसन्मात्रा-
न्नाम रूप पृथक्कृतिः ॥ २७ ॥

अर्थः—हृदय की तरह बाहर के देशमें भी जिस किसी वस्तु में सत्भात्र से नाम रूप का पृथक् करना दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि है ।

विवेचन ।

सम्पूर्ण संसार नाम रूप की विशेषता से भरा हुआ है, संसार और संसारके पदर्थों में कोई भी नाम रूप रहित नहीं है । मायिक संसार की जितनी रचना है वह सब नाम रूप के अन्तर्गत है. नाम रूप स्थूल हो अथवा सूक्ष्म हो, प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष अनुमान हो; नाम रूप सबमें भरा हुआ है । नाम रूपमें अनेक प्रकार की भिन्नता है परन्तु नाम रूप रहित जगत में कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि मायिक नाम रूप से ही संसार की सिद्धि है ।

जब नाम रूपको हटा दिया जाता है तब जिसमें नाम रूपकी प्रतीति होती थी वह पदार्थ नहीं रहता और सर्वाधार चैतन्य

शेष रहता है। संसार में पूर्ण रूप से दो वस्तु हैं एक सत् ब्रह्म और दूसरी असत् माया। संसार की दृष्टि से दो दीखते नहीं क्योंकि दो एक कक्षा के नहीं है देखने वाला जीव संसार की दृष्टि से देखता है उसे संसार का मायिक नाम रूप ही मालूम होता है, नाम रूपका आधार सत्—परब्रह्म जानने में नहीं आता नाम रूप परब्रह्म तत्त्व का है और जीव भाव भी परब्रह्म तत्त्व को ढांप कर ही हुआ है इसीसे वह सत् को नहीं जानता। परब्रह्म ही अपना सत् स्वरूप है यह जानने के लिये समाधि की आवश्यकता है। प्रथम अन्तःकरण में समाधि का वर्णन कर चुके हैं अब बाहर की समाधि का वर्णन करते हैं। कैसी भी अवलम्बन से की हुई समाधि परमात्मा में ही होती है। परमात्मा सब स्थान में भरा हुआ है, मायिक पदार्थ विवर्त रूप से उसमें भासते हैं, इसीसे परब्रह्म का बोध नहीं होता। सब पदार्थों में वह एकसा भरा हुआ है। पदार्थ को हटा देने से यानी नाम रूप का बाध करने से उसका आधार परब्रह्म ही रहता है। विवर्त रूप संसार का भान विवर्त रूप प्रत्येक के अन्तःकरण की वृत्ति से होता है, जो कि बाहर के पदार्थों से वृत्ति युक्त होकर पदार्थ का भान करती है। उस भानको न करे और प्रथकृता वाली वृत्ति को भी छोड़े तब समाधि की सिद्धि होती है।

जैसे किसी रंगे हुए वस्त्रका उस पर चढ़े हुए रंग के कारण असल रंग ढ़प जाता हैं इससे असल रंग मालूम नहीं होता, असल रंग को जानने के लिये ऊपर चढ़े हुए रंग को हटा देना पड़ता है, क्षार आदिक लगाने से और बारंबार धोने से चढ़ा हुआ रंग उतर जाता है तब असल रंग को प्रतीति होती है इसी प्रकार अस्ति भाति प्रिय स्वरूप जो परब्रह्म है उसमें मायिक नाम

रूप का रंग चढ़ गया है इस नाम रूप के रंग को वैराग्य रूपी चार और चित्त वृत्ति के एकाग्रता रूप अभ्यास से हटाकर परब्रह्म का बोध होता है—परब्रह्म में समाधि होती है, इस सविकल्प समाधि में भी जो बोध होता है वह अन्य पदार्थों के बोध से विलक्षण है क्योंकि यह अपना ही स्वरूप है।

आन्तर में से नाम रूप को हटा देने से आन्तर में समाधि होती है, ऐसे ही बाहर के किसी पदार्थ में से नाम रूप को हटा देने से भी समाधि होती है—परब्रह्म का बोध होता है। जैसे अन्तःकरण में अन्तःकरण यह नाम है और इन्द्रिय से युक्त होकर बोध करना रूप है; ऐसे अन्तःकरण और उसके कार्य रूप को हटा देने से जिस चैतन्य के आधार में वह है उसका भान होता है—अन्तःकरण का बाध होने से परब्रह्म का भान होता है—समाधि होती है। जैसे अन्तःकरण में समाधि होती है ऐसे ही बाहर के पदार्थ के नाम रूप को हटा देने से भी परब्रह्म में समाधि होती है आंतर समाधि में एक स्थान के नाम रूप का त्याग किया जाता है, क्योंकि ज्ञाता इनसे प्रथक् नहीं है और बाहर की समाधि में अन्तःकरण और बाहर के पदार्थ दोनों के नाम रूप का त्याग होजाता है।

सूर्य, चंद्र, तारा, देव, प्रतिमा आदिक बाहर के किसी भी पदार्थ में समाधि कर सकते हैं। किसी का भी नाम रूप हटा देने से उसके आधार सत् स्वरूप—परब्रह्म में ही समाधि होती है यह आरम्भक होने से बाहर की दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

एक गाम में एक राजपूत और एक ज्योतिषी रहता था। राजपूत के बड़ी अवस्था में पुत्र हुआ ज्योतिषी से जन्म

पत्र बनवाया, ज्योतिषी का राजपूतसे पुराना वैर था सीधा राजपूत इस बातको भूल गया था। ज्योतिषी बदला लेना चाहता था प्रसंग आया देखकर जन्म कुंडलि बना कर देते हुए कहा:— एक महान् कुयोग कुंडलि में पड़ा है उसका प्रतिकार होने से लड़का बचेगा। लड़का शूरवीर पुण्यात्मा और दिर्घायु होगा। राजपूत ने पूछा कुयोग का प्रतिकार किस प्रकार करना चाहिये ? ज्योतिषी ने कहा पुत्र का मुख हमेशा काजल से काला किये रहना और भैंसे का चर्म शरीर पर हमेशा ओढ़े रहे तो कुयोग का कुछ भी फल न होकर दीर्घायु होगा। राजपूत बोला अभी तो उसका जन्म ही हुआ है भैंसे का चमड़ा कैसे ओढ़ेगा। ज्योतिषी बोला अभी उसके मुख पर काजल ही लगाये रहना साल पीछे चमड़े में लपेटे रखना और जिन्दगी भर इस प्रकार रहे यदि काजल और चमड़ा छोड़ देगा तो उसी क्षणमें मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।

राजपूत ने ज्योतिषी की सब बात मानली और उसी प्रकार वर्तने लगा। लड़का, जिसका नाम श्यामसिंह रक्खा था, दिन पर दिन बड़ा होता गया, चतुर था और बुद्धि शुद्ध थी। थोड़ी उमर में ही अस्त्र शस्त्र चलाना जान गया हमेशा बन्दूक अपने पास रखता था। बीस वर्षका हुआ तब उसके पिता की मृत्यु होने से नौकरी करने के लिये सब स्थान पर खोज की, नौकरी मिलती नहीं थी। मुख पर काजल, शरीर पर भैंसा का चमड़ा ओढ़ेहुए बन्दूक वाले विकाल स्वरूपसे सब घबराकर कोई नौकर रखते नहीं थे।

श्यामसिंह एक दिन गाम के बाहर पेड़ के नीचे पड़ा हुआ था वहां एक मनुष्य घबराता हुआ आया और बोला मेरी रक्षा

करिये यह शेर मेरे पीछे पड़ा है। श्यामसिंह ने तुरन्त बंदूक से शेर को मार डाला। शेर को मरा देखकर मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, हे शूरवीर, आपने मेरी प्राण रक्षा की है मैं आपका महान् ऋणी हूं। आप यहां क्यों पड़े हो? श्यामसिंह ने कहा मैं नौकरी करना चाहता हूँ, नौकरी की खोज में यहां पड़ा हूँ नौकरी कहीं मिलती नहीं है। मनुष्य बोला आप मुख पर काजल लगाये हुए और भैंसे का चमड़ा ओढ़े हुए क्यों हो? श्यामसिंह ने कहा ऐसा न करूं तो मैं तुरन्त मर जाऊंगा ऐसा ज्योतिषी ने कहा है। मनुष्य को आश्चर्य हुआ तुम्हारे जैसे शूर-वीर को कौन मार सकता है? ज्योतिषी ने झूठा ही कहकर आपको डराया है। फेंक दो भैंसा का चमड़ा और मुख को सामने के झरने में धो डालो। श्यामसिंह बोला नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। मनुष्य बोला आपको कुछ भी न होगा, मैं प्रतिज्ञा से कहता हूँ। ऐसा कहते हुए भैंसे के चमड़े को खेंच लिया, श्याम-सिंह देखते ही रह गया मनुष्य ने भैंसे का चमड़ा न दिया आधा घन्टा यहां होगया। मनुष्य बोला देखो तुमको कुछ भी न हुआ। श्यामसिंह को विश्वास हुआ झरने में जाकर मुख को धो डाला। मनुष्य बोला कैसे सुन्दर चेहरे को बिगाड़ रखा था, इसीसे ही आपको नौकरी मिलती नहीं थी। आप राजा के पास जाइये तुरन्त नौकरी मिल जायगी। ऐसा कह मनुष्य चला गया श्याम-सिंह भी वहां से उठ कर राजा के पास गया, उस राजा के पास प्रथम कई बार नौकरी के लिये गया था राजा ने नौकर रखने से इन्कार किया था अब राजा ने सुन्दर वीर स्वरूप देखकर अपने अङ्ग रक्षक की नौकरी में रख लिया सौ रुपया वेतन कर दिया।

श्यामसिंह आनन्द पूर्वक रहने लगा राजा और सब सरदार लोग भी उसकी इज्जत करते थे। वैरी ज्योतिषी ने छल करके दो वस्तु धारण कराई थी इसीसे श्यामसिंह तुच्छ कंगाल और बद सूरत था, जब पथिक मनुष्य ने दोनों का त्याग कराया तब सुखी हुआ। इसी प्रकार छल करने वाली माया ने नाम रूप धारण कराया है, सद्गुरु के उपदेश द्वारा उसे छोड़ने से आनंद ही आनन्द होता है।

अखंडैकरसं वस्तु
सच्चिदानन्दलक्षणम्।
इत्यविच्छिन्नचिन्तेयं
समाधिर्मध्यमो भवेत् ॥२८॥

अर्थः—सच्चिदानन्द रूप वस्तु अखंड एक रस है, ऐसा लगातार चिन्तन करना शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

विवेचन।

प्रथम आन्तर शब्दानुविद्ध का वर्णन कर आये हैं अब बाह्य शब्दानुविद्ध समाधि का वर्णन करते हैं। मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ, इस शब्द के सहारे उसके अर्थ का चिंतन करते हुए समाधि को प्राप्त होना आन्तर शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है और सब स्थान पर सच्चिदानन्द स्वरूप है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का चिंतन करते हुए समाधि को प्राप्त होना बाह्य शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है। जितने पदार्थ जगत्में दीखते हैं और बर्तावमें आते हैं यह सब

अवस्तु रूप हैं, क्योंकि जो वस्तु तत्त्वरूप होती है वह अखंडित होती है अवस्तु खंडित होती है। एक अवस्थामें हो, दूसरी अवस्था में न हो देश काल करके भी जिसका अंत हो, ये सब अवस्तु होती है। वस्तु परब्रह्म स्वरूप है अवस्तु मायास्वरूप है। अवस्था, देश, काल और पदार्थ से जिसका टुकड़ा नहीं होता ऐसा यह परब्रह्म स्वरूप वस्तु है। उसके टुकड़े करने में कोई भी समर्थ नहीं है संपूर्ण ब्रह्मांड उसका विवर्त है, इन कारणों से वह अखंड है जैसा अखंड है वैसा एक रस भी है ! उसके स्वरूप में कभी भी किञ्चित मात्र न्यूनाधिक नहीं होता, कहीं द्रव कहीं अद्रव कहीं निर्मल और कहीं मलिन ऐसा नहीं है, सब स्थान पदार्थ काल अवस्था आदिमें एकसा है यह ही चिंतन करने योग्य है।

सच्चिदानन्द तीन शब्दों द्वारा समझा जाता है। सत है चेतन है और आनन्द है। कभी भी जिसका बाध न हो वही सत्य है लौकिक झूठकी अपेक्षा वाला सत् नहीं और सबका आधार परब्रह्म होने से सत् है। जो चैतन्य स्वरूप से हो, स्वप्रकाश हो, अलुप्त-प्रकाश वाला हो लौकिक प्रकाश से भिन्न हो सब में एक समान हो यह चित् है। जो दुःख से रहित सुख स्वरूप है जिसके सुख के कण से सब मायिक भी सुखी होते हैं, जो दुःखकी अपेक्षा रहित है सब लौकिक सुख जिसका आभास है वह आनंद है। इस तरह 'सच्चिदानन्द' समझने के लिये है, तीन नहीं एक ही है क्योंकि उनमें से किसी एक को पृथक् नहीं कर सक्ते स्वरूप होने पृथक् नहीं हो सकता वही परब्रह्म वास्तविक वस्तु है।

एक रस उसको कहते हैं जो वही वह हो और सबमें समान जैसे तालाब में भरा हुआ जल ही जल है यह एक रस है अथवा

सुवर्ण के टुकड़े में रहा हुआ सुवर्ण एक रस है। जहां जगत् के अज्ञानिओं को प्रतीति है वहां और जहां प्रलय है वहां भी परब्रह्म एक रस एकसा है। देश काल और वस्तु से भी एक रसता टूटती नहीं है।

शब्द के उच्चार से अर्थ समझने में आता है। शास्त्र और गुरु के उपदेश शब्दरूप ही होते हैं उनसे जो समझा जाता है वह अर्थ है, परब्रह्म के सामान्य कथन वाले वाक्य से सामान्य बोध होता है। और 'तत्वमसि' आदिक वाक्य-विशेष हैं इससे लक्ष द्वारा विशेष बोध होता है। यथार्थ बोध होने से अपने से अभिन्न अखंड परब्रह्म का बोध होता है, यह सामान्य परब्रह्म को जानकर विशेषता से जाना जाता है और चिंतन से उसमें चित्त की एकाग्रता होती है इसीसे चिंतन करना चाहिये यह चिन्तन ही दृढ़ होकर निर्विकल्प समाधि को प्राप्त कराता है।

वारम्वार वस्तुस्वरूप अखंड परब्रह्मका चिंतन करने से ब्रह्म-स्वरूप होता है। जैसे कीटभ्रमर का डंक खाते खाते चित्त भ्रमर में लगने से कीट मिटकर भ्रमर होजाता है इसी प्रकार परब्रह्म के ध्यान में आरूढ चित्त परब्रह्म हो जाता है, एक रस अखंड हो जाता है।

उद्दालक मुनी ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को एक समय ब्रह्म का उपदेश देते हुए कहा कि एक जल से भरे हुए कटोरे में निमक का टुकड़ा डाल दे और एक स्थान पर रखदे कल मेरे पास जल का पात्र लेकर आना। श्वेतकेतु ने पिता की आज्ञानुसार किया और दूसरे दिन निमक डाले हुए जल के पात्र को लेकर पिता

के पास पहुँचा। पिता ने कहा गई रात्री को तेने इस पात्र में निमक का ढेला डाला था ? तब श्वेतकेतु ने कहा हां, पिता ने कहा अब पानी में से निमक का ढेला मुझे निकाल कर दे, श्वेतकेतु ने पानी में निमक के ढेले को ढूंढा परन्तु निमक का ढेला पानी में पिघल गया था मिला नहीं तब बोला ढेला नहीं है। पिता ने कहा इस जल में से थोड़ा जल हाथ में लेकर चख कैसा स्वाद है। श्वेतकेतु ने जल चखा और निमकीन पाया। पिता ने कहा अब मध्य में से जल लेकर चख श्वेतकेतु ने मध्य में से जल लेकर चखा और यह भी निमकीन पाया। पिता ने कहा अब नीचे का जल लेकर चख। श्वेतकेतु नीचे का जल चख कर बोला यह भी निमकीन है। पिता ने कहा जल को बाहर फेंक दे, पात्र को साफकर धरदे और हाथ को धोकर मेरे पास आजा। श्वेतकेतु पात्र धर कर हाथ धोकर पिता के पास आया। पिता ने कहा जिस निमक का ढेला तेने पात्र में डाला था अब जैसी स्थिति उसकी है हमेशा रहेगी तेरी आंख से निमक दीखता नहीं था तोभी जल को चखने से रसना इन्द्रिय द्वारा निमक मालूम होता था। हे सोम्य, सत् के विषय में भी ऐसा ही है। सत् को कोई नेत्र से देख नहीं सकता तोभी पिघले हुए निमक के समान एक रस है और अपने आप जाना जाता है, निमक जैसे सब जल में एक रस एक रूप व्यापक था इसी प्रकार सत् परमात्मा एक रस होकर सूक्ष्म रूप से सम्पूर्ण शरीरों में व्यापक है।

इसी प्रकार अवच्छिन्न चेतन का निरंतर चिन्तन निर्विकल्प समाधि में पहुंचा कर अविचल शांति को प्राप्त कराने का हेतु होता है।

स्तब्धी भावो रसा स्वादात्
तृतीयःपूर्ववन्मतः ।
एतैः समाधिभिः षड्भि-
र्नयेत्कालं निरंतरम् ॥२६॥

अर्थः—रसास्वाद से स्तब्ध (निश्चल) होजाना पहले की तरह निर्विकल्प समाधि है, इन छः समाधियों से काल को निरंतर व्यतीत करे ।

विवेचन ।

छः समाधिओं के वर्णन में यह समाधि सब से अन्तिम है । प्रथम भी वर्णन आया है वह रस के आस्वाद से समाधि थी परन्तु दृढ़ता को प्राप्त नहीं हुई थी वह जब दृढ़ता को प्राप्त होती है तब अपने सहित संपूर्ण बाह्य में टिके हुए परब्रह्म में समाधि होने से और निर्विकल्प दृढ़ होने से श्रेष्ठ है । पूर्व तीसरी समाधि में जो दीपक की शिखा के समान चित्त रहता है ऐसा ही इस समाधि में चित्त रहता है और चित्त की पृथक्ता भी प्रतीत नहीं होती ।

अनन्त काल से अविद्या में पड़ा हुआ जीव बहुत प्रयत्न करने पर भी अज्ञान ग्रन्थि से मुक्त नहीं होता, शास्त्रों का उपदेश ज्ञान और योग की कठिन क्रिया से भी जल्दी से हृदय की अज्ञान ग्रन्थि टूटती नहीं है, इसीसे मुमुक्षुओं को चिरकाल तक अभ्यास करने की आवश्यकता है । जब तक जगत्का अभाव पूर्ण

रूपसे स्थिर न हो तब तक वह मुमुक्षु है; ऐसे मुमुक्षुओं को अभ्यास करने के लिये छःओं प्रकार की समाधि का वर्णन है उन समाधिओं में ही अपना समय व्यतीत करे। छःओं समाधि सबको करना ही चाहिये यह नियम नहीं है। छःओं मार्ग रूप हैं जिसको जो अनुकूल हो उसी मार्ग से चले। चारों प्रकार की सविकल्प समाधि तो निर्विकल्प समाधि के साधन हैं। जब तक सविकल्प समाधि में रहता है तब तक साधन अवस्था में है। निर्विकल्प समाधि फल स्वरूप है, उसमें भी सचराचर ब्रह्मांड में रहे हुए परब्रह्म में एकता करने वाली निर्विकल्प समाधि अन्तिम फल है। उस करके ही परमपद की प्राप्ति होती है। जब तक यह समाधि पूर्ण न हो, तब तक मुमुक्षुओं को मरण पर्यंत समाधि के अभ्यास में लगे रहना चाहिये।

कोई शङ्का करे कि निरंतर समाधि हो नहीं सकती; अखंड समाधि में शरीर का निर्वाह कैसे होगा ? उसका उत्तर यह है कि जड़ समाधि में खाना पान छूट जाता है चैतन्य—ज्ञान समाधि में नहीं। जिसको ज्ञान समाधि कहते हैं उसीमें क्रिया का न होना आवश्यक नहीं है परन्तु यह समाधि जीवन्मुक्त पुरुषों को ही होती है साधक को ऐसी समाधि नहीं होती। अभ्यासियों को समाधि निरन्तर करने को कहा है इसीसे यह न समझना चाहिये कि खाना पीना छोड़ कर जड़ होजांय; परन्तु थोड़ा समय शरीर निर्वाह का बाद करके प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल और मध्यरात्री को बिना नागा अभ्यास किया करे यह निरन्तर का अर्थ है।

जड़ समाधि में पूर्व के संस्कार कटते नहीं हैं जड़ समाधि में जो ज्ञान का अंश हो तो फल होता है और ज्ञान समाधि जो

विचार रूप है उससे पूर्व के संस्कार क्षीण होकर परमपद होता है। अधिकारी भेद से छःओं प्रकार की समाधि है उसके अभ्यास में जो लगता है वह अपना कल्याण अवश्य कर लेता है।

छःओं समाधि में सविकल्प समाधि चार हैं दो आंतरिक और दो बाह्य। निर्विकल्प समाधि दो हैं रसास्वाद से युक्त और स्थिरता से युक्त, इन समाधियों का सामान्य लक्षण यह है ।

१ आन्तर दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि—जो आन्तर यानी हृदय में होती है, दृश्य को हटा कर द्रष्टा में होती है, दृश्य का द्रष्टा है ऐसे सम्बन्ध सें दृश्यानुविद्ध कही जाती है, विकल्प युक्त होने से सविकल्प है, बुद्धि समभाव को प्राप्त होने से समाधि है।

२ आन्तर शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि—हृदय में होने से आन्तर है अहं ब्रह्मास्मि आदि शब्दों से सम्बन्ध वाली होने से और शब्दों को छोड़कर की हुई शब्दानुविद्ध कल्पना युक्त होने से सविकल्प और सम बुद्धि होने से समाधि कही जाती है।

३ स्वानुभव आन्तर निर्विकल्प समाधि—हृदय में होने से आन्तर है उसमें अपना अनुभव होने से स्वानुभव है, कल्पना रहित होने से निर्विकल्प है, निवासस्थान में रहे हुए दीपक की शिखा के सामान चित्त है और बुद्धि सम भाववाली होने से समाधि है !

४ बाह्य दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि-आन्तर से बाहरहोने से-बाहर के पदर्थों में होने से बाह्य है, दृश्य जो मायिक है उसको छोड़ कर उसका द्रष्टा-आधार जो परब्रह्म है उसमें चित्त लगाने से दृश्यानुविद्ध कही जाती है, विकल्प होने से सविकल्प है और बुद्धि की सम अवस्था होने से समाधि है।

५ बाह्य शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि—बाहर होने से बाह्य है, सूर्य ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है सब कुछ ब्रह्म है ऐसे शब्दों करके, शब्द सम्बन्ध से होने वाली बाह्य शब्दानुविद्ध है विकल्प वाली होने से सविकल्प है और बुद्धि की समानता से समाधि है ।

६ स्तब्धीभाव बाह्य निर्विकल्प समाधि–स्वरूप में स्थिर होना स्तब्धी भाव है, आन्तर को छोड़कर ब्रह्मांड में परब्रह्म में होने से बाह्य है, जीव से बाहर है स्वरूप में है, कल्पना रहित होने से निर्विकल्प है, और बुद्धि सम होने से समाधि है ।

प्रथम निर्विकल्प समाधि का वर्णन तीसरी समाधि में आया है वह भी आन्तर है और छठी बाह्य निर्विकल्प समाधि है । प्रथम की रसानुभव है—बोध होता है साक्षात्कार होता है और अन्तिम स्तब्धीभाव में वही स्थिर होती है । रसास्वाद निर्विकल्प समाधि आरंभक निर्विकल्प समाधि है और स्थिर भाव वाली अन्तिम है ।

एक गृहस्थ के छः पुत्र थे । सब की प्रकृति भिन्न २ थी, फिर भी अच्छे ही थे । गृहस्थ जैसे तैसे अपना गुजारा करता था । उसके पास कोई सम्पत्ति नहीं थी । वह जो धन्धा करता था उसमें दूसरों की गुजर न थी । किसी प्रकार उसने छःओं पुत्रों को बड़े किये; जब वे काम करने के योग्य हो गये तब सबको अपने पास बुलाकर कहा, 'तुम सब को मेरी स्थिति मालूम ही है । तुम सब बड़े हुए हो अपना धन्धा करके निर्वाह करो । इस ग्राम में सब का धन्धा चले और निर्वाह हो यह कठिन है । तुम लोगों को परदेश में ही जाना होगा । जो स्थान जिसको

अनुकूल हो वहां जाकर धन्धा करो।' सब लड़कों ने पिता की आज्ञा धारण की और परदेश जाकर धन्धा करने का निश्चय किया। एक अथवा अधिक भाई साथ रहकर धन्धा करें ऐसी उनकी प्रकृति न थी। इसीसे अलहिदा धन्धा करने का निश्चय करके पिताकी आज्ञा लेकर सब भिन्न भिन्न शहरों की तरफ चल पड़े। छःओं पुत्रोंका नाम इस प्रकार था। प्रजापतलाल, सिद्धलाल, राजपाल, धनपाल संवादलाल और निर्मलपाल। सबमें अपने अपने नाम के अनुसार गुण थे, और उन्हीं के अनुसार धन्धा करने लगे।

प्रजापतलालने एक गाम पसंद किया जिसमें कुम्हारका धन्धा बहुत चलता था। कुम्हार का काम उसे पसंद आया। बिना दाम का धन्धा, मिट्टी पानी का ही दाम। ऐसा विचार कर एक कुम्हार के यहां नौकर रहा। कुम्हार किस प्रकार की मिट्टी को किस प्रकार मुलायम करके चाक पर कैसे बरतन बनाता है वह भली प्रकार जान गया जब उसके पास नौकरी के रुपये जमा हो गये तब वह लेकर उसने एक स्थान खरीद किया। मिट्टी वहां से ही खोदी जाती थी और कुआ भी वहीं था। मिट्टी और कुए के पानी से बरतन बनाने लगा। अन्य कुम्हारों से उसके मटके सुंदर और टिकाऊ बनने लगे इससे उसकी ग्राहकी बढ़ गई और थोड़े दिनमें श्रीमान् होगया। अपने स्थान में मिट्टी खोद बरतन बनाकर बेचकर पैसा पैदा करता था, यह धन्धा आन्तर दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि के समान था। अपने स्थान में आन्तर, बरतन बेचना दृश्यानुविद्ध, अनेक बरतन सविकल्प और पैसा मिलना समाधि था।

सिद्धलाल को शहर में रहना पसंद न पड़ा शहर से बाहर एक योगी रहता था उस स्थान पर जाकर उसने निवास किया और योगी की कुछ टहल करने लगा। योगी अनेक प्रकार के चमत्कार करता था यह देखकर सिद्धलाल को भी सिद्धियां प्राप्त करने की इच्छा हुई। योगी की सेवा करने से योगी का उस पर प्रेम हुआ और उसने कई प्रकार की सिद्धियां सिखलाईं जैसे जैसे योगी शब्द द्वारा कथन करता था तैसे तैसे उसके अर्थ का हृदय में ग्रहण करता हुआ समझा, इस प्रकार उसने सिद्धियां प्राप्त कीं। योगी के मरने के बाद सिद्धियों के सहारे बहुत धन पैदा किया। यह आन्तर शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि के समान था। आन्तर में सिद्धि होने से आन्तर, शब्द द्वारा होने से शब्दानुविद्ध, अनेक सिद्धियां होने से सविकल्प धन प्राप्ति समाधि थी।

राजपाल को व्यापार करने में झंझट दिखाई दिया। उसमें वीरता थी इससे सिपाही गीरी की नौकरी करली, कुछ दिनों में ही अपने समान सिपाहिओं की संख्या बनाकर वहां के अधर्मी राजाको अनेक प्रकारके उपद्रव करके दुःखी किया। प्रजा को लूट कर जो धन इकट्ठा हुआ उससे अन्य सिपाही नौकर रख लिये एक पूरा सैन्य तैयार करके राजा को परास्त कर राजा बना और भली प्रकार से प्रजा का पालन करने लगा। उसमें ही उसको शान्ति और सुख मालूम हुआ। यह बर्ताव रसास्वाद से युक्त निर्विकल्प समाधि के समान था। राज्य भोग रसास्वाद भिन्नता रहित निर्विकल्प और शान्ति समाधि थी।

धनपालको व्यापार करना अच्छा मालूम हुआ। एक व्यापारी के पास जहां आड़त का काम होता था मुनीम की नौकरी

करने लगा। वहां का सब काम भली प्रकार जान लिया, व्यापारियों से जान पहचान होगई, कुछ धन्धा करके भी कमाई करली तब मुनीमगीरी छोड़ आड़त का गोदाम खोला। सचाई से काम करने लगा दूकान खूब चली धन बढ़ा और लोगों में शाख भी बढ़ी। माल बाहर से आता था और बिकता था। यह बाह्य दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि के समान था। माल बाहर से आता था इसीसे बाह्य दृश्यानुविद्ध अनेक प्रकार के माल से सविकल्प और धन प्राप्ति समाधि थी।

संवादलाल को कोई धन्धा पसंद न पड़ा उसने एक नया ही धन्धा निकाला, बड़े शहर में रहने लगा दिन भर के शहर के समाचार अखबारों में भेजने लगा सब अखबार वाले उसे तनखा देने लगे। इसी धन्धे में उसने धन और प्रतिष्ठा दोनों प्राप्त किये उसका यह बर्ताव बाह्य शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि के समान था। बाहर सुन कर बाहर भेजना बाह्य शब्दानुविद्ध, अनेक प्रकार के संवाद सविकल्प और धन प्राप्ति समाधि थी।

निर्मलपाल बड़ा ही पराक्रमी पुरुष था, उसने एक अरण्य में सद्गुरु को ढूंढ निकाला उसके उपदेश के अनुसार चक्रवर्ति महाराज्य के लिये तपश्चर्या रूप यज्ञ का आरंभ किया, दृढ़ता से समाप्त किया इन्द्रदेव प्रसन्न हुए और यज्ञ में से सेना निकल पड़ी उस को लेकर निर्मलपाल सब राजाओं को जीतता हुआ अपनी आधीनता कबूल कराता हुआ और धन लेता हुआ सब को परास्त करके महाराज्य पद स्थापित किया—भूमंडल का चक्रवर्ति राजा हुआ। यह स्थिरता वाली निर्विकल्प समाधि के समान है। स्थिर होनेसे स्तब्धी भाव एक ही होने से निर्विकल्प, सुख रूप होने से समाधि यही समाधि की

अन्तिम सीमाके समान है। उपरोक्त दृष्टांतोंका भिन्न२ व्यापार समाधि समझने के हेतु है। समाधि क्रम तो बाह्य अथवा अंतर सविकल्प समाधि से निर्विकल्प समाधि में जाना है, यही ठीक समाधि है, अन्य समाधियां इसकी उपकारक हैं।

देहाभिमाने गलिते,
विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति,
तत्र तत्र समाधयः ॥३०॥

अर्थः—देहाभिमान के नष्ट होजाने पर और परमात्मा के ज्ञात होने पर जहां जहां मन जाता है वहां वहां समाधि ही है।

विवेचन।

परमात्मा जो सच्चिदानन्द रूप है अद्वैत ही प्रत्यक् रूप एक रस है उसका ज्ञान होने से साक्षात् सद्भाव होनेसे देहाभिमान गलित होजाता है।

समाधि के वर्णन के बाद ज्ञान की स्थिति का वर्णन करते हैं। समाधि की सिद्धि ज्ञान है और ज्ञान की सिद्धि ही समाधि है। अज्ञान ने शुद्ध स्वरूप आत्मा को ढ़ाप कर अनात्म शरीर में ही अभिमान को धारण कराया है। आत्मा दीखता नही है शरीर दीखता है, शरीर से सब कार्य होते हैं ऐसा समझकर शरीर ही 'मैं हूँ' इस प्रकार के अहंभाव—अभिमान से संसार चक्र में भट-

कता रहता है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि और कारण शरीर में से किसी एक को 'मैं' समझता है यह सब देहाभिमान है। स्थूल शरीर में अथवा उसके किसी अंश में 'मैं हूँ' मानना देहाभिमान है। देहाभिमान अज्ञान से हुआ है मैं कौन हूं यह ठीक २ न जानने सेही शरीर में मैं हूं ऐसा मानता है, उसीसे संसार में भ्रमण और अनेक प्रकार के कष्ट सहित जन्म मृत्यु हुआ करते है। जब अनेक जन्मके शुभ संस्कारोंके प्रभाव से मुमुक्षत्व प्राप्त होकर समाधि में प्रवृत्त होता है— आत्मा का पूर्ण बोध होता है तब ही देहाभिमान नष्ट होता है। स्वरूप के ज्ञान से अज्ञान निवृत्त होता है, अज्ञान से देहाभिमान नष्ट होता है; देहाभिमान नष्ट होने से संसार की निवृत्ति होती है और संपूर्ण संसार की निवृत्ति से परमपद की प्राप्ति होती है।

शरीर अपवित्र पदार्थों का बना है उसमें 'मैं हूँ' ऐसा भाव नीच गती को प्राप्त कराने वाला है। शरीर में 'मैं हूं' ऐसा भाव अभिमान है और शरीर के सम्बन्ध वालों में मेरा करके जो भाव है यह ममता है, ममता की जड़ अहन्ता ही है। शरीर को श्रेष्ठ समझने से अभिमान होता है और जब परमात्मा का बोध होता है तब शरीर तुच्छ अभाव स्वरूप होजाता है, ऐसी अवस्था में ही देहाभिमान गलित होता है। जैसे 'मैं वेद पाठी हूँ, मैं सिपाही हूँ, मैं व्यापारी हूं' यह जैसे आरोपमात्र है ऐसे मैं शरीर हूँ ऐसा अभिमान भी आरोपमात्र है, आरोप अज्ञान से है इसीसे ज्ञान से निवृत्त होजाता है।

जिसका देहाभिमान नष्ट हुआ है ऐसे ज्ञाननिष्ठ पुरुष का मन जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ समाधि ही है; क्योंकि देहाभिमान

युक्त मन समाधि रहित था। देहाभिमान न होने से मन का विषयों की तरफ जाना भी समाधि ही है; क्योंकि ज्ञानी का ब्रह्मभाव अखंडित ही रहता है। ब्रह्माकार वृत्ति समाधि है उसकी मन इन्द्रिय के व्यवहार में भी ब्रह्माकार वृत्ति बनी ही रहती है।

शंका:—बुद्धि की वृत्ति न हो उसे समाधि कहते हैं, वृत्ति सहित बुद्धि चञ्चल रहती है। चञ्चल बुद्धि में समाधि नहीं होती तब ज्ञानी पुरुष का चित्त जहाँ २ जाय वहां वहां उसे समाधि किस प्रकार होती है? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि समाधि में कोई भी क्रिया न हो।

समाधान:—बुद्धि वृत्तिहीन हो उसे समाधि नहीं कहते। बुद्धि की वृत्ति सुषुप्ति मूर्च्छा में नहीं होती, सुषुप्ति मूर्च्छा समाधि नहीं है। बुद्धिकी ब्रह्माकार वृत्तिही समाधि है जहां समाधिको वृत्ति रहित कहा है वहां लौकिक बुद्धि वृत्तिका निषेध है, स्वस्वरूप की वृत्ति का निषेध नहीं है। उसे वृत्ति इस कारण से नहीं कहते कि निर्विकल्प समाधि में भिन्न प्रतीति नहीं रहती, वृत्ति की पृथकता न रहकर चैतन्य ही होता है। दृढ़ ज्ञान समाधिवाले का लौकिक-व्यवहारिक बुद्धि की वृत्ति से व्यवहार होते हुए भी वह समाधि में ही है। दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानी की बुद्धि को लौकिक वृत्ति द्वारा होने वाला व्यवहार चञ्चल नहीं कर सकता उसकी बुद्धि सम-भाव में ही रहती है इसीसे वह समाधि में ही है उसीका यहां कथन है। जैसे कोई स्त्री बच्चे को झूले में सुलाकर घर काम में लगी हुई होती है तो भी बच्चे की आवाज की तरफ लक्ष रहता है, कार्य करते भी लक्ष को नहीं छोड़ती, इसी प्रकार ज्ञानी की ब्रह्माकार वृत्ति खंडित नहीं होती। इतना ही नहीं स्वप्न और

सुषुप्ति, जो शरीर की अवस्थायें हैं, उन अवस्थाओं के भोग होते हुए भी वह समाधि में ही होता है, क्योंकि दृढ़ बोध से बुद्धि समही रहती है।

बुद्धि की समानता दो प्रकार की है चेष्टा रहित सम बुद्धि और चेष्टा सहित सम बुद्धि। प्राण द्वारा होने वाली समाधि में चेष्टा रहित सम बुद्धि होती है और ज्ञान समाधि में चेष्टा सहित भी समाधि होती है; क्योंकि बुद्धि विषम नहीं होती, ज्ञान की स्थिति बुद्धि को विषम होने नहीं देती। यह सूक्ष्म भेद सामान्य मनुष्यों की समझ में आना कठिन है। ज्ञानी पुरुष देह सहित भी देह रहित है कर्ता होकर भी अकर्ता है, इसी प्रकार बुद्धि से चेष्टा करते हुए—विषम दीखते हुए भी उनकी बुद्धि चेष्टा रहित समाधि में ही है।

बुद्धि में चञ्चलता अज्ञान से है, इसीसे अज्ञान रहते हुए बुद्धि को कितनी ही स्थिर की जाय स्थिर नहीं होती। ज्ञान में चञ्चलता नहीं है तब आन्तरमें बुद्धि विषम कैसे हो? जगत की सत्यता, शरीर में अहंता, कार्यों में ममता और जगत के सुख दुःख को सच्चा समझने वालों की बुद्धि ही चञ्चल होती है। अज्ञानी का यह भाव ज्ञानी में न होने से दृढ़ ज्ञानी की समाधि अखंडित है। मन जहाँ जहाँ जाय वहाँ २ समता रहने से समाधि है। लौकिक पदार्थों में भी उसे परब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है उसकी दृष्टी में परब्रह्म का कभी लोप नहीं होता। जगत् भाव में से हटी हुई बुद्धि परब्रह्म में स्थिर है इसीसे अखंड समाधि है। अज्ञान से हटी हुई और आत्म ज्ञान से स्थिर हुई बुद्धि कभी भी फिर अज्ञान में नहीं जाती।

जैसे अभ्यास काल में नाम रूप को हटा कर सच्चिदानन्द को समझना पड़ता था अब दृढ़ ज्ञानी को नाम रूप को हटाना

नहीं पड़ता। दृष्टि के साथ ही ये स्वयम् हट जाते हैं और ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है अथवा सब परब्रह्म है ऐसा समझता है और नाम रूप की मायिक विशेषता नहीं रहती।

भिद्यते हृदय ग्रंथि-
श्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,
तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ ३१॥

अर्थः—उस परब्रह्म को देख लेने पर हृदय की ग्रंथि टूट जाती है, सब संशय कट जाते हैं और सब कर्म नष्ट होजाते हैं।

विवेचन।

जिसके द्वारा प्रत्येक प्राणी व्यवहार करते हैं और जो पृथक् स्थिति का हेतु है उसे हृदय कहते हैं। जड़माया और चेतन परब्रह्म अज्ञान से दोनों की एकता जो हृदय में है उसे हृदय ग्रन्थि कहते हैं। जड़ और चेतन विरुद्ध स्वभाव वाले होने से एकता को प्राप्त नहीं हो सकते, किन्तु अज्ञान ने एकता करके जीव भाव बना डाला है। अज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि जो अशक्य है उसको शक्य करके दिखला दे, अज्ञान युक्त ऐसी गड़बड़ी का नाम ग्रंथि है। हृदय ग्रन्थि अज्ञान का कार्य है इसीसे हृदय की अज्ञान ग्रंथि कहो अथवा जड़ चैतन्य की ग्रन्थि कहो। इस ग्रन्थि से अनेक प्रकार के सुख दुःख जीव भोगता रहता है, यह ग्रन्थि

ही बन्धन स्वरूप है। ग्रन्थि अज्ञान-भूल से है इसीसे भूल निकल जाने से ग्रन्थि नहीं रहती, भूल अपने स्व स्वरूप में की गई है। प्रत्येक का अपना स्वरूप परब्रह्म है यही परावर है। ब्रह्मा जहां अवर निकृष्ट है। ऐसा स्वरूप परावर है अथवा कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म परावर है, उस परब्रह्म को जब देख लेते हैं-अपना स्वरूप है ऐसा दृढ़ता से जान जाते हैं तब अज्ञान निवृत्त होजाता है-भूल नहींरहती भूल निकल जानेसे भूलसे बनी हुई जो हृदय ग्रन्थि थी वह भी टूट जाती है। अनेक प्रकार के संशय अज्ञान दशा में हुआ करते थे, जैसे, मैं कौन हूँ संसार क्या है परब्रह्म क्या है सुख दुःख क्या है कैसे होता है किसको होता है क्यों होता है यह सब संशय निवृत्त होजाते हैं, फिर संशय को रहने का स्थान ही नहीं रहता। जैसे सूर्य के पूर्ण प्रकाश में पदार्थ स्पष्ट प्रतीत होते हैं शंका नहीं रहती इसी प्रकार ज्ञान स्वरूप आत्म सूर्य का प्रकाश होनेसे कोई भी शंका नहीं रहती। जन्म मरण और उनके बीच में अनेक प्रकार के अनेक योनियों में भोग कर्म से होते रहते हैं। जिस प्रकार का कर्म होता है उसी के अनुसार जन्म और भोग होता है और यह सब कर्म सूक्ष्म अज्ञान की हृदय ग्रन्थि में टिके रहते हैं; जब ग्रन्थि टूट जाती है तब सब कर्म नष्ट होजाते हैं। संचित कर्म जल जाते हैं। आगामी कर्म बनते नहीं और प्रारब्ध कर्म भोग से नष्ट होजाते हैं इसी प्रकार सब कर्म नष्ट होजाने से और परब्रह्म का बोध होने से परमपद की प्राप्ति होती है।

शान्तिपुर नगरका राजकुमार जीवनसिंह योग्य उमर का हुआ तब एक दिन शिकार खेलनेको जंगलमें चलागया। एक मृग निशाना चूक जानेसे भागा राजकुमार उसके पीछे पड़ा, मृग कभी दिखलाई

दे कभी अदृश्य होजाय ऐसे बहुत दूर निकल गया। जंगल बहुत वृक्षों से घना था और कांटे वाले वृक्ष भी बहुत थे। सायंकाल होगया तब विचार करने लगा कि मैं और घोड़ा दोनों भूखे हैं, यहां टिकने का स्थान भी नहीं रात्रि कैसे कटेगी ? इतने में एक विकाल शेर ने राजकुमार की तरफ दौड़ कर घोड़े पर चोट की। राजकुमार एक वृक्ष की शाखा पकड़ कर पेड़ पर चढ़ गया घोड़ा मर गया उसे खेंच कर शेर ले गया। राजकुमार बहुत भयमें था, शेर का शब्द सुनाई दे रहा था धैर्य धारण कर पेड़ से नीचे उतर कर चारों ओर देखने लगा तो उत्तर की तरफ थोड़ी दूर पर दीपक जलता दीखा उसी तरफ जाने लगा। पैर में कांटे लगे पैर में पत्थर की ठोकरें लगीं अंधेरे में ठीक दीखता भी नहीं था बहुत कष्ट पाते हुए दीपक के नजदीक आ पहुँचा। चन्द्र का उदय होने से प्रकाश होने लगा था इससे विदित हुआ कि दीपक एक मकान में जल रहा है ऐसा जान कर मकान के पास पहुँचा। मकान के द्वार पर एक दासी खड़ी हुई थी, राजकुमार ने नम्रता से उससे कहा मैं मार्ग भूल गया हूँ मैं आज की रात्री आपके यहां निवास करना चाहता हूँ। दासी बोली आप यहां ठहरिये मैं अपनी मालिकिन से पूछ कर उत्तर दूंगी, ऐसा कह वह भीतर गई राजकुमार बाहर खड़ा रहा। थोड़ी देर में आकर राजकुमार को अपने साथ भीतर लिवा गई। वहां एक उच्च आसन के ऊपरएक देवांगना सदृश सुन्दर स्त्री बैठी थी। राजकुमारका समाचार सुनकर उसे स्नान करा कर भोजन कराने की आज्ञा दासी को की, दासी राजकुमार को लेगई स्नान कराके भोजन करा कर अपनी मालकिन के पास ले आई, राजकुमार को थोड़ी दूर पर एक आसन पर बैठाकर सुन्दरी बोली "रात्री अधिक होने आई है आप थके हुए भी हैं इस दासीके साथ जाइये आराम करनेका स्थान दिखला देगी।" दासीके साथ राजकुमार चला पास के एक कमरे में एक

पलंग बिछा हुआ था उस पर सोने के लिये दासी ने कहा। राजकुमार पलंग पर पड़ा परन्तु जब से उसने सुन्दरी को देखा था तब से उसका चित्त सुन्दरी में लगा था, स्नान और भोजन भी उसने बेहोश के समान की स्थिति में ही किया था और अब भी चित्त सुन्दरी में लगा हुआ था। थका हुआ होने से पलंग पर पड़ा था परन्तु नींद आती नहीं थी सुन्दरी पर मोहित हुआ चित्त शांत नहीं होता था।

पलंग पर पड़ा हुआ राजकुमार विचार कर रहा है कि आहाहा! कैसा सौंदर्य है! अवश्य यह कोई देवी या राजकन्या है। जैसी सुन्दर है वैसी ही सरल स्वभाव मृदु वाणी वाली है। धन्य है ईश्वर तेरी लीला को! मैंने आज तक ऐसी सुन्दर स्त्री नहीं देखी ईश्वर ने ही उसका दर्शन कराया है, वह ही मेरे को उसकी प्राप्ति भी करा देगा। ऐसे अनेक विचारों के अन्तमें अर्ध रात्रि के समय कामान्ध होकर अपने पलंग से उठकर पास के कमरे में सोई हुई सुन्दरी के पलंग पर पहुंच गया। वह जाग्रत होगई तुरन्त पलंग के पास से एक बूटी निकाल कर राजकुमार को सुंघा दी। बूटी सूंघते ही पागल के समान चिल्लाता हुआ महल से बाहर निकल गया। उसने पूर्वकी सब स्मृति को खोदी, जंगल में भागता २ आगे चला गया। सुबह का समय होते ही दो झोपड़ी देखने में आई वहां ठहरा। झोपड़ी भंगीओं की थी वहां भंगी रहते थे राजकुमार को जाति का कुछ भेद नहीं था दुपहर में भंगीओं ने कुछ रोटी के टुकड़े दिये वे खाकर राजकुमार वहां ही पड़ा रहा। दो दिन के बाद भंगी उससे काम लेने लगे राजकुमार भंगी का काम करता था और टुकड़ा खाता था। पांच दिनके बाद एक भंगीकी लड़कीसे विवाहकर लिया मैं भंगी हूँ मानकर दिन व्यतीत करने लगा।

कभी कभी राजकुमार को शंका होती थी कि सब भंगी लोग काले हैं मैं ऐसा काला नहीं हूँ ऐसा क्यों ? सब अधर्म करने के स्वभाव वाले हैं मैं ऐसा स्वभाव वाला नहीं हूँ क्या मैं भंगी नहीं हूँ या हूँ ? ना, मैं भंगी ही हूँ भंगियों में रहता हूँ भंगण मेरी स्त्री है भंगी का काम करता हूँ। क्या मैं इस प्रकार के नीचं काम करने को ही जन्मा हूँ क्या मेरे दुःखों की निवृत्ति भी हो सकती है, मैं भंगी का काम करना नहीं चाहता, ग्लानी होती है। हाय ! तब भी करना ही पड़ता है—आदि शंकायें हुआ करती थीं और भोग भोगते हुए अपने को दुःखी मानता था, अनेक प्रकार के कर्म का बन्धन होता था।

एक दिन वहां से एक संत जा रहे थे उसने भंगी के भेप में राजकुमार को देखकर तुरंत जान लिया कि यह राजकुमार है। उसे पास बुलाकर पूछा तू कौन है ? राजकुमार ने कहा मैं भंगी हूँ भंगी का काम करता हूं और इस झोंपड़ी में रहता हूँ। संत ने कहा हे मूर्ख तू भंगी नहीं है, अपने को भंगी क्यों मानता है ? राजकुमार ने कहा तब मैं कौन हूँ। संत बोले तू राजकुमार है राजा होते हुए अपने को भंगी क्यों मानता है ? राजकुमार बोला मैं राजा नहीं, मैं राजा होता तो मेरा राज्य होता, मुझे बहकाते हो मैं भंगी ही हूँ। संत ने कहा मैं सच कहता हूं ऐसा कहकर झोली में से एक बूटी निकाल कर राजकुमार को सुंघा दी। राजकुमार को पूर्वकी सब स्मृति हो आई तब बोला सच में राजा ही था अब मुझे याद आगया। मैं शिकार खेलने गया था जंगल में एक स्थान पर रात्री टिका वहां की सुन्दरी को देखकर कामांध होकर उसके पास जाते ही उसने मुझे एक बूटी सुंघा दी तब से मैं अपना पूर्वका हाल जाति आदि सब भूला था। आपने कृपा

करके मुझे होश कराया है ईश्वर आपका कल्याण करे आप कहिये अब मुझे क्या करना चाहिये ?

संतः—तू भंगी के भेष को छोड़ दे अपने राज्य को चल मैं भी शान्तिपुर को चल रहा हूँ मेरे साथ चल।

संत ने राजकुमार को स्नान कराया सब पुराने वस्त्र उतरवा कर अपने पास से वस्त्र देकर उस को साथ लेकर दोनों शान्तिपुर में पहुंचे। राजकुमार के पिता ने राजकुमार की बहुत खोज की थी न मिलने से निराश हो रहा था अब बीमार पड़ा था। संत राजकुमार को राजा के पास ले गये। राजा प्रसन्न हुआ थोड़े दिनमें राजा मृत्यु को प्राप्त हुआ और राजकुमार ही शान्तिपुर का राजा बना।

ऊपर के दृष्टांत से ज्ञान होते ही अज्ञान की निवृत्ति होकर परमपद को प्राप्ति होना समझ में आता है। राजाकुमार आत्मा है शिकार की इच्छा हुई जंगल में भटकते हुए अविद्या के स्थान में पहुंचा, अविद्या रूप सुन्दरी पर कामांध हुआ तब उसने स्मृति भ्रंश नामक बूटी सुंघा दी, सूंघते ही पूर्ण अविद्या के दबाव में आगया और वहां से चल कर भंगी बना। अविद्या में पड़ा हुआ जीव भी इसी प्रकार बर्ताव करता है, भंगी का काम करने लगा, अनेक प्रकार की शंकायें हुई, कर्म का भोग भोगता था और नया बनाता था परन्तु सद्गुरु की कृपा से जहां उसने पूर्व स्मृति से अपने स्वरूप को जाना कि स्मृति भ्रंश रूप अविद्या ग्रन्थि टूटी, उसीसे शंकायें गईं और सब कर्म से निवृत्त होकर राजा बना। अज्ञान निवृत्त होते ही स्वरूप की प्राप्ति होती है।

अवच्छिन्नश्चिदाभास-
स्तृतीयः स्वप्न कल्पितः ।
विज्ञेय स्त्रिविधो जीव-
स्तत्राद्यः पारमार्थिकः ॥३२॥

अर्थः—अवच्छिन्न, चिदाभास और स्वप्न कल्पित यह तीन प्रकार के जीव हैं, इनमें से पहिला पारमार्थिक सत्य है।

विवेचन ।

अब जीवके स्वरूप को समझाते हैं। जीवके स्वरूप में शास्त्रकारों का आपस में विरोध है। जब तक जीवके स्वरूप का निश्चय न होजाय तब तक परमपद की प्राप्ति नहीं होती। शंका करने वाले ऐसी शंका करते हैं कि अविद्या का जीव अविद्या के भोग को भोगता है, जब अविद्या की निवृत्ति हो जायगी तब अविद्या वाला जीव भी नहीं रहेगा। अविद्या फँसाने वाली है जीव फँसने वाला है तो दोनों की एक ही सत्ता होनी चाहिये; इसीसे अविद्या का जीव अविद्या में फँसता है, अविद्या की निवृत्ति में उसकी भी निवृत्ति होने से परमपद असंभव होगा! तब परमपद का भागी कौन होगा? जैसे स्वप्न द्रष्टा स्वप्न में है बाहर नहीं, स्वप्न के बाहर स्वप्न द्रष्टा की स्थिति नहीं है, स्वप्न द्रष्टा और स्वप्नकी एक ही सत्ता है। स्वप्न की निवृत्ति के साथ स्वप्न द्रष्टा की निवृत्ति होती है, ऐसे ही जीव है अविद्या के जीव की अविद्या के साथ निवृत्ति हो जायगी तब मोक्ष किसको होगा? इसके उत्तर के लिये जीवका वर्णन करते हैं।

जीव तीन प्रकार है अवच्छिन्न, चिदाभास और स्वप्न द्रष्टा। यह तीन स्वरूप, अवस्था, स्थान और क्रिया भेद से हैं, वास्तविक स्वरूप से तीन नहीं हैं। अवच्छिन्न को छोड़कर चिदाभास और स्वप्न द्रष्टा नहीं है और अवच्छिन्न और चिदाभास को छोड़कर स्वप्न द्रष्टा नहीं है। एक ही जीव की उपाधिकृत यह तीन अवस्थायें हैं अवस्था के भेद से जीव का भेद है स्वरूप से नहीं।

सुषुप्ति अवस्था में व्यष्टि अज्ञान का परदा होने से चिदाभास की प्रतीति नहीं होती और व्यष्टि अज्ञान करके जिस टुकड़े का अनुमान किया जाता है ऐसा चैतन्य अवच्छिन्न जीव कहलाता है। जब सुषुप्ति से शरीर जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है और चिदाभास सहित संसार में व्यवहार होता है तब अवच्छिन्न युक्त ही चिदाभास रूप जीव होता है। अवच्छिन्न में एक व्यष्टि अज्ञान का परदा था अब उस सहित चिदाभास का परदा होता है, यह दोनों परदे सहित चिदाभास जीव कहलाता है। तीसरा स्वप्न कल्पित है वहां, जीव में एक तीसरा परदा होता है। यह परदा जाग्रत के संस्कारों की प्रतीति रूप है। जाग्रत के पदार्थ चिदाभास से प्रकाशित होते हैं। चिदाभास के ग्रहण किये संस्कारों को गड़बड़ी सहित (संस्कार रूप), भान न होकर के, पदार्थ रूप से भान करे, स्थूल शरीर का भान न हो और अन्य स्थूल की प्रतीति हो, आधी नींद हो,—यह स्वप्न है और उसे देखने वाला स्वप्न द्रष्टा जीव है।

अविद्या दो प्रकार की है। प्रकृति रूप और विकृति रूप। प्रकृति रूप अविद्या एक है इससे उसका परदा भी एक ही प्रकार का है, सबको ढ़ापने वाला है किसी का बोध होने नहीं

देता अन्धेरा रूप है, एक ही होने से दुःख का हेतु भी नहीं है, यह सुषुप्ति में रहे हुए जीवकी दशा है। यह जगत और परब्रह्म के मध्य में है; क्योंकि सृष्टि का भान रहित है एकता को प्राप्त है तो भी चैतन्य स्वरूप का बोध रहित है यह ही अवच्छिन्न जीव है।

दूसरा चिदाभास विकृति रूप है विकृति अनेकता वाली है इसीसे चिदाभास भी अनेक वृत्तियों सहित होता है। संसार और संसार के सुख दुःख का भोग चिदाभास से होता है। चिदाभास व्यवहारिक सत्ता में प्रतीत होता है इसीसे व्यवहारिक है। चिदाभास अवच्छिन्न चेतन सहित है और इसीसे सँसार का बन्धन है। जिसको जड़ चेतन की ग्रन्थि कहते हैं यह चिदाभास रूप ही है यह ग्रन्थि टूट जाती है तब अवच्छिन्न करने वाली उपाधि का नाश होने से परमतत्व ही स्वस्वरूप से प्रकाशित होता है। विकृति की जड़ प्रकृति है, विकृति का समूल नाश होने से उसकी जड़ जो प्रकृत्ति है उसका भी नाश होजाता है। प्रत्येक मुमुक्षु जो कुछ परमपद के लिये यत्न करते हैं विकृति में ही करते हैं। विकृति में यत्न करके विकृति की जड़ ऐसी प्रकृत्ति—अनादि अविद्या का नाश करते हैं। जीव को बंधन का हेतु और मोक्ष का हेतु यह चिदाभास ही है।

तीसरा स्वप्न कल्पित जीव है, यह प्रातिभासिक सत्ता का है, चिदाभास के व्यवहार से उलटा—मिथ्या बोध हो ऐसा है। व्यवहार में उसके बोध की सत्यता नहीं रहती। जैसे पारमार्थिक में व्यवहारिक चिदाभास मिथ्या होता है ऐसे व्यवहारिक चिदाभास में प्रातिभासिक ऐसा स्वप्न का जीव मिथ्या होता है।

इस प्रकार तीन जीव को वर्णन करके अवच्छिन्न को पारमार्थिक कथन किया है यानी तीनों में अवच्छिन्न पारमार्थिक है। यह जीव भी व्यष्टि अज्ञान की उपाधि में है परन्तु उपाधि होते हुए जगत् का बोध और जगत के दुःख नहीं है। उपाधि केवल आड़ रूप है, उपाधि से भी वह उपाधि वाला बना नहीं है, इसीसे पारमार्थिक है। घट करके आकाश का जैसा टुकड़ा है इसी प्रकार प्राणादि संघात व्यष्टि अज्ञान करके टुकड़ा प्रतीत होते हुए भी टुकड़ा है नहीं इसीसे पारमार्थिक है। पारमार्थिक किस प्रकार है आगे के श्लोक में दिखाया जायगा।

जैसे कोई मनुष्य किसी प्रकार के कारण वश अथवा अपनी इच्छा से नट का कार्य करने लगे तब वह नट कहा जाता है और सब चेष्टा भी नट के समान ही करता है यह मनुष्य नट बन गया है, तब भी उसका मनुष्यत्व कहीं भी नहीं गया। नट का केवल मनुष्य में आरोप ही है। इसी प्रकार शुद्ध चैतन्य में अवच्छिन्न जीव का आरोप ही है। चिदाभास और स्वप्न कल्पित आरोपित ही है तो भी उनमें उपाधि की एकता है अवच्छिन्न में उपाधि वाली प्रथक् चेष्टा नहीं है।

शंका करने वाले ने जीव को मोक्ष न होगा ऐसा कथन किया था यह शंका जीव के स्वरूप को न जानने से है। जीव के दो स्वरूप हैं एक वास्तविक स्वरूप दूसरा उपाधि युक्त स्वरूप। अवच्छिन्न, चिदाभास और स्वप्न कल्पित यह तीनों उपाधि से युक्त हैं—अविद्या की उपाधि है फिर भी उनके आन्तर में रहा हुआ शुद्ध चैतन्य है। जीव अविद्या का नहीं है, अविद्या का हो तो अविद्या की निवृत्ति के साथ जीव भी निवृत्ति हो परन्तु ऐसा नहीं है, अविद्या जीव

की है इसीसे अविद्या की निवृत्ति के साथ अविद्या कृत जीव भाव की निवृत्ति अवश्य होती है जीव के वास्तविक स्वरूप की नहीं। जीव का अविद्या की उपाधि रहित टिकना ही मोक्ष है। जीव का शुद्ध स्वरूप ही परब्रह्म है। भ्रांति रूप जीव के व्यक्तित्व का नाश होकर अखंड एक रस स्थिति ही मोक्ष है। मेरा आत्मा ही अद्वैत परब्रह्म स्वरूप है ऐसे अभेद भाव से अपरोक्ष जानने को ज्ञान कहते हैं। और उसमें पूर्ण स्थिति ही परमपद है। उपाधि युक्त में 'मैं हूँ' ऐसा भान बंधन है और स्वरूप में 'मैं हूँ' ऐसी दृढ़ स्थिति मोक्ष है।

जैसे चुंबक में लोहे को खींचने का गुण है, चुंबक और लोहा एक ही जाति के हैं लोहे को ही चुंबक खींचता है औरों को नहीं। कोई लोहा लकड़ी में ठोका हो ऐसा लकड़ी सहित लोहा खैंचने योग्य चुंबक से खेंचा जाता है साथ ही लकड़ी भी खिचती दीखती है, लोहे के संग से ऐसा दीखता है लकड़ी नहीं खिंचती। इस प्रकार जीव को अज्ञान दशा में जीव का अज्ञान ही अज्ञान के प्रति खिंचता है शुद्ध चैतन नहीं। भ्रान्ति से चेतन भी खींचा गया दीखता है। शुद्ध अखंड अद्वय स्वरूप में बन्धन आदि का तीनों काल में अभाव समझना ज्ञान है। मैं भिन्न हूँ एक व्यक्ति हूं ऐसा समझना बन्धन है और मैं अखंड एक रस अद्वय स्वरूप हूँ ऐसा समझना मोक्ष है।

अवच्छेदः कल्पितः स्या-
दवच्छेद्यन्तु वास्तवम्।
तस्मिन् जीवत्वमारोपाद्
ब्रह्मत्वंतु स्वभावतः ॥२३॥

अर्थः—अवच्छेद कल्पित है, अवच्छेद्य वास्तव है, उस अवच्छेद में जीव भाव कल्पित है, ब्रह्म भाव स्वभाव से है।

विवेचन।

तीन प्रकार के जीवको दिखला कर प्रथम के अवच्छिन्न को पारमार्थिक कहा है, व्यवहारिक चिदाभास को और स्वप्न जीव को काल्पनिक—मिथ्या कहा है अब अवच्छिन्न पारमार्थिक किस प्रकार से है उसके उपाधि भेद को हटा कर पारमार्थिक समझाते हैं। अवच्छिन्न में रहा हुआ अवच्छेद सम्बन्ध कल्पित है, जिस करके टुकड़ा हो ऐसा अवच्छेद सम्बन्ध है वह कल्पित है इसीसे उस करके हुआ जो जीव भाव है वह भी कल्पित है क्योंकि परब्रह्म में जीव भाव का आरोप हुआ है। अवच्छेद्य वस्तु स्वरूप होने से कल्पित नहीं है यह ब्रह्म स्वरूप स्वभाव से है।

शंकाः—निरवयव और महान् जो चैतन्य है प्राणादि करके उसका टुकड़ा नहीं हो सकता टुकड़ा अंश वाले का होता है, निरंश चैतन्य का नहीं, पूर्ण चैतन्य का टुकड़ा नहीं हो सकता, उसके टुकड़े करने में कोई समर्थ नहीं है, प्राण करके चैतन्य मर्यादित नहीं हो सकता क्योंकि श्रुतिका कथन है कि "प्राणों के भीतर रह कर प्राणों को नियम में रखता है" प्राण उसका नियमन नहीं कर सकता।

समाधानः—परिच्छेद—टुकड़ा वास्तविक हो तो तेरा कहना ठीक है, यहां तो टुकड़ा करने वाला और टुकड़ा दोनों ही कल्पित हैं। आरोप से चेतन में टुकड़े का भास होना बनता है, वस्तुत्व

टुकड़ा न होने से कोई विरोध नहीं है, प्राण करके चेतन मर्यादित हुआ भ्रांति से दीखता है, जड़ प्राण चेतन का नियमन नहीं कर सकता, चेतन ही प्राण का नियमन करने वाला है ।

व्यवहार दशा में सत् स्वरूप चेतन का हमको प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं होता जैसे राहु का ग्रहण चंद्र ग्रहण में ही होता है ऐसे चिदात्मा भी अहंके उपराग विना विशेपता से प्रतीत नहीं होता इसीसे विशेष आकार का भासना उपाधि के परिच्छेद से है । उपाधि से युक्त होने से अवच्छिन्न चिदात्मा का जीव रूप से व्यवहार और प्रतीति होती है ।

अवच्छेद टुकड़ा, अवच्छिद्य जिसका टुकड़ा हुआ दीखता है ये दोनों जब एक ही जाति के होते हैं, एक ही अवस्था के होते हैं तब दोनों की सत्ता एक ही होती है, इसीसे एक सच्चा और दूसरा झूठा नहीं हो सकता, चाहे दोनों झूठे हों चाहे दोनों सच्चे हों, परन्तु जहां परब्रह्म में जीवका आरोप हुआ है वहां दोनों की सत्ता एक नहीं है यानी अवच्छेद और अवच्छेद्य दोनों एक सत्ता के नहीं हैं इसीसे अवच्छेद सम्बन्ध से जो टुकड़ा दीखता है वह काल्पनिक है और अवच्छेद्य जिसका टुकड़ा हुआ दीखता है, वास्तविक टुकड़ा न होने से, वस्तु स्वरूप होने से सत्य है। यहां दोनों की सत्ता भिन्न है अवच्छेद काल्पनिक मायिक है और अवच्छेद्य वस्तु स्वरूप है । अवच्छेदक प्राणादि युक्त व्यष्टि अज्ञान है और अवच्छेद्य परब्रह्म है । प्राणादि से टुकड़ा रूप जीव भाव है वह भी काल्पनिक है यानी प्राणादि समूह रूप व्यष्टि अज्ञान मायिक और परब्रह्म सत्य है ।

प्रथम अवच्छिन्न को पारमार्थिक कहा था उसमें दो भेद किये, अवच्छेद और अवच्छेद्य । अवच्छेद को मिथ्या दिखलाया और अवच्छेद्य को परब्रह्म रूप दिखलाया ।

जैसे कागज के ऊपर किसी ने चित्र निकाला हो, चित्र—पदार्थ का आधार कागज है यानी कागज के ऊपर चित्र पदार्थ का आरोप किया है। यहां कागज और चित्र—वस्तु भिन्न २ सत्ता के हैं, कागज व्यवहारिक सत्ता का है और चित्र—वस्तु मानसिक है क्योंकि चित्र के शेर से किसी की भी हानि नहीं होती। कागज का टुकड़ा न होकर चित्र ने कागज के जितने हिस्से को रोका है उतना कागज का टुकड़ा समझा जाता है। कागज व्यवहारिक सत्य है और उसकी अपेक्षा से चित्र का शेर मिथ्या है। ऐसे ही परब्रह्म रूप वस्तु में प्राणादि संघात अवस्तु करके जो टुकड़ा मालूम होता है यह अवच्छिन्न है, अवच्छेद प्राणादि और अवच्छेद सम्बन्ध मिथ्या होने से अवच्छेद्य ही सत्य है।

अवच्छिन्न में जो अवच्छेद है उसे हटाकर जो अवच्छेद्य है वह शुद्ध प्रत्यक् आत्मा है जिसको कूटस्थ भी कहते हैं वह ही ब्रह्म स्वरूप है—सत्य है। प्रत्यक् आत्मा की जो व्यवहार में पृथक् प्रतीति है वह उपाधि से है, चिदाभास जीव और स्वप्न जीवमें भी उपाधि है, वे दोनों तो उपाधि से युक्त हैं और अवच्छेद्य जिसे कूटस्थ कहते हैं उसकी प्राणादि के साथ उपाधि नाम मात्र की है, केवल पृथक्ता दिखलाने के हेतु है, विकार करने वाली उपाधि वास्तविक न होने से मिथ्या है इसीसे अवच्छिन्न जीव भाव मिथ्या है और उपाधि रहित चेतन ही सत्य है।

शंका:—निर्विकल्प ब्रह्म में जब उपाधि ही नहीं है तब उपाधि के साथ वर्णन करके उपाधि को मिथ्या बताकर चैतन्य को सत्य रखा, ऐसा क्यों? शुद्ध चेतन में तो उपाधि का लेश भी नहीं है, फिर उपाधि का वर्णन क्यों?

समाधानः—परब्रह्म में उपाधि का नित्य अभाव है तो भी निर्विकल्प ब्रह्म में उपाधि युक्त वर्णन करना मुमुक्षुओं को समझाने के लिये है। उपाधि में टिका हुआ मुमुक्षु निरुपाधिक ब्रह्म को समझ नहीं सकता उसका हित करने के लिये ही उपाधि का वर्णन करके शुद्ध चेतन को समझाया है। जैसे आकाश का टुकड़ा कोठरी की आड़ से दीखता है, वास्तविक आकाश का टुकड़ा हुआ नहीं है, देखने वाले और कोठरी के उपयोग करने वाले को उपाधि के टुकड़े का फल होता है। उपाधि से आकाश को कुछ लेना देना नहीं है; इसी प्रकार व्यष्टि अज्ञान उपाधि से प्रत्यक् आत्मा की प्रतीति होती है तो भी आत्म स्वरूप विकार से रहित ही है। उपाधि से युक्त हुआ चिदाभास ही कर्ता भोक्ता और विकार वाला होता है कूटस्थ किसी प्रकार और किसी हालत में भी विकार को प्राप्त नहीं होता।

पारमार्थिक चैतन्य का बोध अपारमार्थिक भाव में टिके हुए को कराया जाता है इसीसे उपाधि में उपाधि युक्त का कथन किया जाता है। अपारमार्थिक में रहते हुए पारमार्थिक का लक्ष करने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है।

अवच्छिन्नस्य जीवस्य
पूर्णेन ब्रह्मणैकताम्।
तत्त्वमस्यादि वाक्यानि
जगुर्नेतर जीवयोः॥ ३४॥

अर्थः—तत्त्वमसि आदि महावाक्य अवच्छिन्न जीव की पूर्ण ब्रह्म के साथ एकता करते हैं, दूसरे दोनों जीवों की नहीं करते

यानी चिदाभास और स्वप्न कल्पित की ब्रह्म के साथ एकता नहीं करते ।

विवेचन ।

अवच्छिन्न जीव को पारमार्थिक इसी कारण से कहा हैं कि अद्वैत तत्त्व का अपरोक्ष बोध कराने वाले तत्त्वमसि आदि महावाक्य से जीव की पूर्ण परब्रह्म के साथ एकता करना है । चारों वेद अद्वैत तत्त्व को ही अन्तिम प्रतिपादन करते हैं, जीव ही ब्रह्म स्वरूप है, परब्रह्म सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है आदि वाक्यों से अभेद की ही सिद्धि करते हैं । वेद में कर्म और उपासना के अनेक प्रसंग और वाक्य हैं इसी प्रकार ज्ञान प्रतिपादन करने वाले भी वाक्य हैं, अभेद का बोध कराने वाले वाक्यों में दो भेद हैं (१) अवान्तर वाक्य और (२) महावाक्य । परब्रह्म का सामान्य परोक्ष बोध कराने वाले वाक्य अवान्तर वाक्य कहे जाते हैं और वे अनेक हैं । परब्रह्म का अपरोक्ष बोध कराने वाले महावाक्य हैं, ऐसे महावाक्य चार हैं अर्थात् प्रत्येक वेदका एक २ सामवेद मुख्य—अन्तिम वेद होने से अधिकता से उसका "तत्त्वमसि" महावाक्य ही प्रसिद्ध है । इसीसे "तत्त्वमसि" आदि महावाक्य करके एकता कथन की है ।

जीव जब तक ईश्वर को अपने से भिन्न मानता है तब तक संसार और संसार के कष्ट की समूल निवृत्ति कभी भी हो नहीं सकती जब तक द्वैत भाव-दोपना रहेगा तक तक कष्ट ही रहेगा इसीसे सद्गुरु परब्रह्म का सामान्य विवेचन करके योग्य शिष्य को समझाते हैं । जब शिष्यको परब्रह्म का परोक्ष बोध होता है तब

विशेष विवेचन करते हुए "वह ब्रह्म तू है" इस प्रकार तत्त्वमसि महावाक्य से अपरोक्ष बोध कराते हैं।

जगत् मायिक रचना का है ऐसे जगत् में माया में पड़े हुए जीव माया से रहित शुद्ध परब्रह्म को जानते नहीं उस परब्रह्म का उपदेश करने की कई प्रक्रियाएं हैं इसमें से अवच्छिन्न जीव परब्रह्म है यह भी एक प्रक्रिया है। अवच्छेद मिथ्या होने से जिसका अवच्छेद्य समझा गया वह अवच्छेद रहित वास्तविक है, जीव और ब्रह्म में किंचित् मात्र भेद नहीं है, भेद माया की उपाधि से है इस उपाधि का बाध करके सत् स्वरूप समझा जाता है।

शास्त्र बहुत युक्ति पूर्वक उपदेश देते हैं, जो ईश्वर को नहीं मानते उन्हें ईश्वर की ऐश्वर्यता आदि दिखलाकर उन्हें विधि में प्रवृत्त कराते हैं उस करके पुण्यकर्म भोग और स्वर्गादिक की प्राप्ति होती है। इसीसे अधिक योग्यता वाले उपासकों को उपासना में प्रवृत्त कराते हैं। जिससे दिव्य भोगकी प्राप्ति होती है। संपूर्ण भोग और स्वर्गादिलोक भी दुःख रहित नहीं है ऐसा समझने वाले मुमुक्षुओं को संसार में से निवृत्त कराने वाले आनन्द स्वरूप अद्वैत तत्त्वका बोध कराते हैं। अद्वैत का बोध कराना शास्त्र को भी कठिन ही मालूम हुआ है इसीसे अनेक प्रकार की युक्ति द्वारा लक्ष पहुँचाने की प्रक्रियाएं बांधी गई हैं फिर भी योग्य उपदेश देते हुए अधिकारी मुमुक्षु को तुरन्त ही साक्षात्कार हो यह नियम नहीं है। योग्य अधिकारी को दिये हुए उपदेश से बोध अवश्य होता है चाहे सत्वर हो चाहे विलम्ब से, निष्फल नहीं जाता। योग्य मुमुक्षुओं को उपदेश ग्रहण करते हुए फल में विलम्ब होने का कारण मुमुक्षु के पूर्वके संस्कार-प्रारब्ध का प्रतिबंध होता है। उपदेश के अनुसार अभ्यास से और प्रारब्ध भोग

से प्रतिबंध निवृत्त होजाता है, तब शास्त्र और गुरु द्वारा जो अद्वैत परोक्ष रूप से समझा था उसीका अपरोक्ष होकर उसीमें स्थिति होती है।

'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश लौकिक कामना वाले कर्म के अधिकारियों को और देवता की उपासना करने वाले अधिकारियों के लिये नहीं है। अपात्र को उपदेश देने से उसका अहित होना संभव है इस उपदेश को गुप्त रखने की आवश्यकता है इसीसे सामान्य शब्दों का जिस प्रकार शब्दार्थ निकलता है ऐसा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों का अर्थ नहीं होता; बुद्धि पूर्वक, लक्ष से विरोधी अंश का बाध करके अर्थ किया जाता है वह अपने से अभिन्न होता है, अपना स्वरूप समझने में शास्त्र और गुरु उपदेश का सहारा है, समझा अपने आप जाता है। उसे शास्त्रीय भाषा में भाग त्याग लक्षणा कहते हैं।

जीव का कोष्टक।

जीव	अवस्था	उपाधि	सत्ता
अवच्छिन्न (साक्षी)	सुषुप्ति	व्यष्टि अज्ञान	पारमार्थिक
चिदाभास (जीवभाव)	जाग्रत	चिदाभास	व्यावहारिक
स्वप्न कल्पित (भ्रांति)	स्वप्न	स्वप्न कल्पित	मिथ्या

चिदाभास और स्वप्न कल्पित को मिथ्या कहकर अवच्छिन्न को पारमार्थिक कहा है उस अवच्छिन्न में जो अवच्छेद है वह प्राणादि व्यष्टि अज्ञान से है वह मिथ्या है उसमें रहा हुआ अवच्छेद्य पारमार्थिक है। जीव भाव अवच्छिन्न चिदाभास और स्वप्न कल्पित से युक्त होता है उसमें से चिदाभास और स्वप्न कल्पित ये कल्पित की विक्षेप युक्त उपाधि हैं और अवच्छिन्न की अज्ञान उपाधि है उनके त्याग करने से जीव चैतन्य से ब्रह्म की एकता है।

तत्त्वमसि का कोष्टक।

पद	शब्दार्थ	अर्थ	उपाधि
तत्	वह	ईश्वर	माया
त्वम्	तू	जीव	अविद्या
असि	है	दोनों एक	उपाधि छोड़ कर एक

सर्वज्ञ, शक्तिमान, एक, माया का अधिपति ईश्वर है और अल्पज्ञ, तुच्छ सामर्थ वाला अनेक अविद्या से दबा हुआ जीव है दोनों के विरुद्ध लक्षणों से एकता संभवती नहीं है परन्तु ईश्वर में उपाधियों को छोड़ कर रहा हुआ चेतन और जीव में रही

हुई उपाधियों को छोड़ कर रहा हुआ चेतन एक ही है ऐसे उपाधि त्याग द्वारा अखंड लक्ष से समझा जाता है। जीव ईश्वर यानी ब्रह्म में एकता शास्त्र ने की है वह विरोध अंश को छोड़ करके चेतन में एकता है, विरोध अंश सहित एकता हो नहीं सकती यदि कोई करे तो महा अज्ञानी है यह एकता अनर्थ का हेतु होगी। वाचक ज्ञानी की वाचा में एकता व्यर्थ है स्वरूप के लक्ष से और स्थिति से एकता न हो वहां तक व्यर्थ है।

चिदाभास और स्वप्न कल्पित दोनों माया में दबे हुए हैं और अवच्छिन्न दबा हुआ नहीं है इससे अवच्छिन्न की परब्रह्म के साथ एकता दिखलाई है। चिदाभास जगत की पृथकता का बोध वृत्ति द्वारा करने वाला है और स्वप्न तो मिथ्या ही है यह सब जानते हैं इसीसे दोनों को छोड़ कर अवच्छिन्न में से उपाधि का त्याग करके परब्रह्म की एकता है ऐसा कथन किया। चिदाभास और स्वप्न में विशेष उपाधियां होने से मुमुक्षुओं को उनको हटाकर चैतन्य का समझना कठिन है।

ब्रह्मण्यवस्थितामाया
विक्षेपावृति रूपिणी।
आवृत्याखंडता तस्मिन्
जगज्जीवौप्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ:—ब्रह्म में स्थित आवरण और विक्षेपशक्ति वाली माया ब्रह्म की अखंडता को आवरण करके उसमें जगत् और जीव की कल्पना करती है।

विवेचन।

परब्रह्म एक रस अखंड व्यापक तत्त्व है उसमें किसी को टिकने की गुंजायश नहीं है। माया जो स्वरूप से मिथ्या है उसका टिकना ही क्या? परब्रह्म में अन्य वस्तु को टिकने का अवकाश नहीं है परन्तु अवस्तु का भान काल्पनिक होने से हो सकता है। पदार्थ में भ्रांति से अन्य की प्रतीति हो सकती है इसी प्रकार माया भ्रान्ति रूप है—अवस्तु रूप है वह अपनी आवरण शक्ति और विक्षेपशक्ति से अखंड परब्रह्म को ढांपती है और परिच्छिन्न की प्रतीति कराती है। यह नियम है कि अवस्तु—भ्रांति—माया कोई भी वस्तु के सहारे प्रतीत होती है अवस्तु की प्रतीति वस्तु के आधार विना नहीं होती इसीसे परब्रह्म के आधार में माया की प्रतीति है। माया, मा=नहीं, या=जो वस्तुतः नहीं सो माया। परब्रह्म के 'है" से यानी अस्तित्व से माया अस्तित्व वाली होती है। 'परब्रह्म प्रकाश स्वरूप है माया अप्रकाश स्वरूप है तब माया की प्रतीति और व्यवहार किस प्रकार होता है।' यदि कोई ऐसा कहे तो उत्तर यह है कि माया अप्रकाशक है तो भी आधार जो परब्रह्म वह प्रकाशक है इसीसे उसके प्रकाश से प्रकाशित होकर परब्रह्म के प्रकाश को जानने नहीं देती यही उसका आवरण करना है और अनेक प्रकार से भान कराना विक्षेप शक्ति है। जैसे कोई दूसरे के धन से धनवान् होकर धनवाले को कुछ न समझे, इसी प्रकार माया परब्रह्मके प्रकाशसे प्रकाशित होकर उसके प्रकाश को रोकती है अपना प्रकाश दिखलाती है।

परब्रह्म शुद्ध है असंग है चैतन्य घन है उसमें माया नहीं है ऐसा सुनकर कई शंका करते हैं कि परब्रह्म सिवाय और कुछ

नहीं है तब माया आई कहां से ? कहो कि अनादि है तो परब्रह्म भी अनादि है और माया भी अनादि है तब तो दो होने से द्वैत हुआ अद्वैत परब्रह्म कैसे है ? उत्तर यह है कि माया और परब्रह्म ऐसे दो पदार्थ एक परब्रह्म ही है इसीसे अद्वैत की हानि नहीं है। माया अवस्तु है अज्ञानी उसे जानते नहीं इससे अनेक प्रकार की शंकायें किया करते हैं इसीसे पूर्ण ज्ञान न हो तब तक ज्ञान प्राप्त करने के हेतु मायाको अनादि कहा है, अनादि कहकर अन्तवाली भी कही है ऐसा काल्पनिक हो तब ही बन सकता है। अनादि परब्रह्म और माया दोनों हैं परन्तु परब्रह्म अनादि अनन्त है और माया अनादि शांत है क्योंकि ज्ञान से नहीं रहती। परब्रह्म सत्य है माया असत्य है, काल्पनिक है। काल्पनिक अनादि कहने से अनादि का कुछ महत्व न रहा। वस्तु परब्रह्म और अवस्तु माया इन दोनों का जोड़ मिलाकर दो नहीं होता इसीसे माया और माया के कार्य सब कुछ होते हुए पारमार्थिक तत्त्व अद्वैत ही रहता है। आत्मा पारमार्थिक स्वरूप है परन्तु जो अविद्या में पड़े हुए जीव हैं उन्हें जब तक आत्मा का दृढ़ अपरोक्ष बोध न हो तब तक माया के अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। कष्ट पारमार्थिक नहीं है इसी तरह भोक्ता जीव भी पारमार्थिक नहीं है इसीसे उसको मिथ्या मालूम नहीं होता एक ही अवस्था के दोनों होने से कष्ट को वास्तविक ही भोगता है। जैसे स्वप्न के कष्ट जाग्रत में कष्ट रूप नहीं हैं इनसे जाग्रत में कुछ हानि भी नहीं होती तो भी स्वप्न जीव को स्वप्न के कष्ट स्वप्न में झूठे नहीं हैं, सच्चे ही होते हैं, ऐसे ही यह जाग्रत दुःख जाग्रतादि अवस्था से युक्त भोक्ता जीव को सच्चा ही होता है उसकी पूर्ण निवृत्ति स्वस्वरूप के बोध से ही होकर स्वरूप स्थिति होती है।

भोक्ता मायिक है तो भी वह आत्मा से पृथक् नहीं है, मायिक उपाधि से एक भाव माया करके है वही उसे सुख दु:ख का हेतु है इसीसे शुद्ध आत्म स्वरूप को जान कर दु:खों से निवृत्त होता है। आत्म- व्यष्टि अज्ञान से युक्त अवच्छिन्न है, अवच्छिन्न चिदा-भास से युक्त है जो व्यवहारिक भोक्ता है और वही जब निद्रा दोष से युक्त होता है तब स्वप्न जीव होता है।

माया दोनों शक्तियों से युक्त है, शक्तियां नयी उत्पन्न नहीं होतीं उनका आविर्भाव और तिरोभाव है। जैसे थोड़े प्रकाश में पड़ी हुई रस्सी न दीखकर उसके बदले सर्प दीखता है, यहां रस्सी का न दीखना माया का आवरण है और उसमें सर्प का भान होना मायाकी विक्षेप शक्ति है। इसी प्रकार परब्रह्म का यथार्थ बोध— प्रकाश का भान न होना आवरण है और परब्रह्म होते हुए अन्य का भान होना विक्षेप शक्ति है जैसे रस्सी संपूर्ण अंधेरे में हो तो उसमें सर्प का भान नहीं होता, थोड़े प्रकाश में जब रस्सी कुछ आकृति से दीखती और पूर्ण नहीं दीखती तब सर्पका भान होता है, ऐसे ही माया परब्रह्म के प्रकाश को संपूर्ण ढांप नहीं सकती कुछ प्रकाश में ही विक्षेप होताहै।

जीवो धीस्थ चिदाभासो
भवेद्भोक्ता हि कर्म कृत।
भोज्य रूपमिदं सर्वं
जगत्स्याद् भूत भौतिकम् ॥३६॥

अर्थः—बुद्धि में टिका हुआ चिदाभास रूप जीव ही भोक्ता और कर्म का कर्ता है। भूत भौतिक यह सारा जगत् भोग करने के योग्य है।

विवेचन।

माया ने जो जीव और जगत् की रचना की है उसमें एक भोक्ता है दूसरा भोग्य है। स्वरूप का भान न होते हुए जो माया में से भान होता है उसको जीव कहते हैं। माया एक है इसलिये जीव भी एक है जो ईश्वर कहलाता है, वह समष्टि जीव है। माया में से विक्रिया होकर अविद्या होती है जो अनेक प्रकार की है उस करके हुए जीव भी अनेक हैं ऐसेही अविद्या की अनेकता से जगत् के भूत भौतिक पदार्थ भी अनेक हैं। मायाकी आवरण शक्ति स्वरूप का भान होने नहीं देती और विक्षेप शक्ति स्वरूप के अभान में मायिक अनेकता करके दिखलाती है।

माया वाला ईश्वर जगत् की रचना करता है ऐसा कहने से भी चैतन्याधिष्ठित माया ही जगत् की रचना करने वाली होती है, चेतन के सहारे ही माया जगत् की रचना करती है, स्वतंत्रता से नहीं। जीव का भान माया करके है, ईश के परिच्छेद का हेतु माया ही है, ऐसे तो ईश्वर व्यापक है परन्तु परब्रह्म की अपेक्षा से माया करके परिच्छिन्न है और वही माया अविद्या रूप को प्राप्त होकर व्यष्टि जीवके परिच्छेद का भी हेतु है। क्योंकि परब्रह्म के एक अंश में ही माया है; जो परब्रह्म के यथार्थ भान न होने से होती है।

परब्रह्म ने देखा कि मैं एक से अनेक होऊं यह भाव भी कारणोपाधि ईश्वर में से ही है, असंग, अक्रिय, अखंड परब्रह्म में ऐसा भाव हो नहीं सकता परब्रह्म से ईश्वर का अभेद करके उत्पत्ति का कथन है उसीसे आकाश हुआ वायु हुआ अग्नि हुआ जल हुआ पृथिवी हुई। उसने तप करके जगत् की रचना की उसका तप विचार रूप ही है क्योंकि वह सर्वज्ञ है। श्रुति का कथन है कि माया प्रकृति को जानो और मायी महेश्वर को जानो इसीसे जगत् को माया ही रचती है परब्रह्म असंग अखंड होने से उसमें रचना का सम्भव नहीं है। माया की रचना माया में और माया से होती है।

माया त्रिगुणात्मक है यानी सत रज और तम गुण माया के गुण नहीं है माया का स्वरूप है। सत्त्व गुण की शुद्धि वाला सतोगुण जो रजोगुण और तमोगुण की मलिनता से रहित है उसे माया कहते हैं और जो सतोगुण, रजो तमोगुण की मलि-नता युक्त है उसे अविद्या कहते हैं। शुद्ध सतोगुण प्रधान माया जिसकी उपाधि है ऐसा चैतन्य यानी माया में पड़ा हुआ प्रति-बिम्ब चिदाभास ईश्वर है और मलिन सतोगुण वाली अविद्या में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब जीव है। चिदाभास माया में और अविद्या में पड़ा हुआ होने से ईश्वर और जीव मायिक हैं परन्तु ईश्वर माया को वश में करके टिका हुआ होने से सर्वज्ञ और नियंता होने से नित्य मुक्त है अविद्या के वश में जो है ऐसा बुद्धि में पड़ा हुआ चिदाभास—जीव बंधन में है। जीव और ईश्वर दोनों चिदाभास चैतन्य के अधिष्टान सहित ही समझना चाहिये। जीव ही संसार में भोक्ता है वह कर्म को करता है और कर्मके फलको भोक्ता है दुःख सुखका अनुभव भी उसको ही है।

ईश्वराज्ञा से तम प्रधान प्रकृति में से पंच महाभूत हुए, सतो-गुण अंश से पांच ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और नासिका, पंच भूत में से क्रम से एक एक तत्त्व से हुई और पंच भूत के समष्टि भाव से अन्तःकरण हुआ। रजोगुण से पांच कर्मेन्द्रिय क्रम से एक एक तत्त्व से हुई और समष्टि से पांच प्राण हुए और तमोगुण के अंश से पंच महाभूत और सब भौतिक पदार्थ हुए, सब लोक भी पंच महाभूत से ही हुए। अविद्याकृत बुद्धि में टिका हुआ चिदाभास भोक्ता जीव है वही पदार्थों का भोग करता है, भोग के लिये कर्म करता है और भोग भोक्ता है। वहां भी मलिन सतोगुण अंश से भोक्ता है क्योंकि मलिन सतो-गुण प्रधान जीव है भोग तमो गुणी पदार्थ का होता है। मायिक जीव मायिक पदार्थों का भोग करता है। कई समय वह चिदा-भास दूसरे का भोग भी होता है परन्तु दूसरे के भोग्य को स्वयम् भोक्ता ही मानता है। भोग के लिये कर्म करके अनेक योनियों को धारता है लोको में गमन करता है यह सब चिदाभास रूप जीव ही करता है। आत्मा स्वरूप से असंग होने से वह कर्ता भोक्ता नहीं है। इसी प्रकार सब माया—अविद्या की रचना है और उसीमें ही जीवका गमनागमन है।

संसार क्रियामय है। यह सब क्रिया ही प्रकृति है, इसीसे जीव, ईश्वर और संपूर्ण संसार की रचना माया की कही जाती है। यद्यपि चेतन रहित माया कुछ भी कार्य करने में असमर्थ है तो भी कार्य माया का ही है। अग्नि से उत्पन्न हुआ जल विरुद्ध स्वभाव वाला होने से परदा रहित अग्नि के साथ रह नहीं सकता, रेलगाड़ी का एन्जिन बहुत बोझा खेंचकर लेजाता है यह सामर्थ भाफ की है; केवल जलकी अथवा अग्नि की नहीं है। जल में

पड़दा सहित आई हुई जो उष्णता है उसीसे जल ही भाफ वना है; इसी प्रकार चेतन के प्रकाश से प्रकाशित हुई माया ही से संसार और उसकी सब क्रियाएं होती हैं। जैसे अग्नि और जल विरुद्ध लक्षण वाला होने से पड़दा रहित दोनों का योग नहीं होता; इसी प्रकार चैतन्य का अविद्या के साथ सीधा संबंध नहीं होता। आवरण शक्ति के बाद विक्षेप शक्ति काम करती है, भाफ के समान चिदाभास है इसीसे सबका व्यवहार होता है। चिदाभास में चैतन्य का प्रकाश है तोभी वह माया में पड़ा हुआ होने से और विशेपता वाला होने से माया का ही है। यह चिदाभास जीव भाव धारण करके भोक्ता वनता है कर्म करता है और कर्म के अनुसार भ्रमण करता है।

भूत और भौतिक पदार्थ जो संसार में जड़ समझे जाते हैं उन्ही में भोग होता है तमोगुण की विशेपता वाले पदार्थों का भोग होता है और चिदाभास जो विशेप चैतन्य वाला है संसारी है वह भोक्ता होता है कहीं चैतन्य भी भोक्ता होता है, वहां चैतन्य के अंश से भोक्ता है और तमोगुण की अधिकता वाला भोग होता है, जब एक चैतन्य दूसरे चैतन्य का भोग करता है तब भोक्ता चिदाभास है भोग स्थूल है, जैसे एक स्त्री समझती है मैं पुरुप का भोग करती हूँ और पुरुप समझता है मैं स्त्री को भोगता हूँ वहां स्त्री का चिदाभास भोक्ता है और पुरुष का शरीर भोग्य ऐसे ही पुरुप स्त्री को भोगता है तब पुरुष का चिदाभास भोक्ता है और स्त्री का शरीर भोग्य है हर हालत में भोक्ता चिदाभास ही होता है जिसको व्यवहार में जड़ कहते हैं ऐसे कोई भी पदार्थ भोक्ता नहीं हो सकते इसी प्रकार सव भूत भौतिक भोग्य हैं।

स्थूल बुद्धि वाले को समझने के लिये व्यष्टि अज्ञान में-अन्तःकरण में पड़े हुए चिदाभास के बदले बुद्धि में पड़े हुए चिदाभास को कहा है।

अनादिकाल मारभ्य,
मोक्षात्पूर्वमिदंद्वयम्।
व्यवहारे स्थितं तस्मा-
दुभयं व्यवहारिकम् ॥३७॥

अर्थः—अनादि काल से आरंभ करके मोक्ष से पूर्व यह दोनों भूत भौतिक और चिदाभास—जीव व्यवहार में स्थित हैं, इसलिये दोनों व्यवहारिक हैं।

विवेचन।

सृष्टि कब से चालू हुई है उसको कोई कह नहीं सकता। शास्त्र से विदित होता है कि अनादि काल से सृष्टि का प्रवाह चालू है कल्पांत और कल्पारंभ हुआ करते हैं उस चक्र का आदि अन्त नहीं है 'माया के चक्र को ईश्वर घुमाता है' इसीसे सृष्टि अनादि है। नियम यह है कि जो अनादि होता है उसका अन्त भी नहीं होता। माया में भी यह नियम काम देता है, जैसे माया वाले के लिये माया अनादि है ऐसे ही माया में दबे हुए को अन्त रहित भी है परन्तु माया से जो रहित होता है उसको माया सान्त हो जाती है। इसीसे शास्त्र में माया को अनादि सान्त कहा है। जिस अवस्था में अनादि है उसमें सान्त

नहीं है ज्ञान होने से जगत् की अवस्था ही नहीं रहती वहां 'माया रह नहीं' सकती इसीसे ऐसे ज्ञानियों के लिये सान्त कहा है । आदि की प्रतीति व्यवहारिक दशा में न होने से अनादि है और माया वस्तु स्वरूप न होने से जब वस्तु स्वरूप परब्रह्म का बोध होता है तब रहती नहीं इसीसे सान्त है ।

जैसे स्वप्न के पदार्थों की आदि नहीं है. जब देखते हैं तब से पूर्व के हैं । स्वप्न में जिस क्षण में एक शेर को देखा वह एक क्षण का जन्मा हुआ नहीं दीखता चार पांच साल का दीखता है इसीसे उसे स्वप्न के पूर्व का मानना पड़े, ऐसे ही माया है । माया में पड़े हुए जब माया को देखते हैं तब उनसे प्रथम की ही है इसीसे उसको अनादि कहा है । माया काल्पनिक है इसीसे माया का अनादिपन भी काल्पनिक है। माया में दबा हुआ कोई भी माया के आदि का पता लगा नहीं सकता क्योंकि माया भूल है भूल वाला भूल की आदिका पता भूल में रह कर लगा नहीं सकता । भूल में से निकल कर भूल का पता लगाता है तब भूल ही नहीं रहती, वह हाँ, माया की अनादि स्थिति किस प्रकार की है उसे ठीक २ जान जाता है कि माया भूल की ग्रंथि है और कुछ नहीं है ।

ऐसी माया का प्रवाह भी कार्य कारण भाव से अनादि है इससे माया के कार्य रूप बुद्धि में पड़ा हुआ चिदाभास और भूत भौतिक पदार्थादि सब अनादि हैं । जैसे माया की आदि नहीं है इस प्रकार ऐसे चिदाभास और भूत भौतिक पदार्थों की भी आदि नहीं है काल्पनिक प्रवाह में अनादि है । जब तक मोक्ष को प्राप्त नहीं होता तब तक चिदाभास और उसके भोग जाते नहीं हैं । मोक्ष में ही दोनों निवृत्त हो जाते हैं ।

माया में एकमेक होना ही वन्धन है, कितना ही प्रयत्न क्यों न किया जाय माया में रहते हुए वन्धन में से कोई भी निवृत्त नहीं हो सकता, माया वन्धन में से मुक्त होने नहीं देती क्योंकि माया का होना ही वन्धन है। माया को पकड़ने से वन्धन है और चेतन को पकड़ने से माया निवृत्त हो जाती है, स्वस्वरूप के वोध से चैतन्य स्वरूप परमपद ही होता है। जितने दृश्य हैं सव मायिक हैं जव तक लौकिक द्रष्टा द्रष्टा के भाव में है तव तक दृश्य की निवृत्ति नहीं है. जव द्रष्टा अपने स्वरूप में टिकता है तव दृश्य और उसे देखने वाला द्रष्टा दोनों ही नहीं रहते, यह द्रष्टा दृश्य की निवृत्ति का कथन किया है, मोक्ष से पूर्व दोनों द्रष्टा दृश्य अथवा भोक्ता भोग रहते हैं, मोक्ष में ही दोनों की निवृत्ति है।

द्रष्टा दृश्य यानी भोक्ता भोग दोनों व्यवहारिक हैं, व्यवहार में ही प्रवृत्त होते हैं उनके विना व्यवहार की सिद्धि नहीं होती, व्यवहार की निवृत्ति में उसकी निवृत्ति होती है। विद्वानों ने तीन प्रकार की सत्ता कायम की है; पारमार्थिक सत्ता, व्यवहारिक सत्ता और प्रातिभासिक सत्ता। जो सत् स्वरूप है त्रिकालावाधित है ऐसा परब्रह्म ही पारमार्थिक सत्ता का है और उसकी अपेक्षा से दोनों सत्ता और उसके पदार्थ मिथ्या हैं। अविद्या और अविद्या के कार्य व्यवहारिक सत्ताके हैं जिसमें जन्म मरण और जाग्रतके सव व्यवहार होते हैं उसे चिदाभासकी सत्ता भी कहते हैं। तीसरी प्रातिभासिक सत्ता यह है जो अविद्याके भीतरमें निद्रा और भ्रांति आदि दोषसे होती है यह सत्ता व्यवहारमें भी मिथ्या होती है क्योंकि चिदाभास होते हुए चिदाभास स्पष्ट रूपसे इन्द्रियों द्वारा कार्य नहीं करता यह व्यवहार में भी भ्रान्ति की अवस्था होने से व्यवहार में मिथ्या होती है। पारमार्थिक सत्ता में अन्य दोनों सत्ता मिथ्या होती हैं

व्यवहार में पारमार्थिक का बोध नहीं होता और प्रातिभासिक मिथ्या होती है। प्रातिभासिक अवस्था प्रातिभासिक में ही सत्य हो ऐसा मालूम होता है और यह प्रातिभासिक है ऐसा भान भी प्रातिभासिक में नहीं होता। जन्म मरण और सब जगत् का सुख दुःख आदि भोग व्यवहारिक सत्तामें ही होता है क्योंकि जगत्का चिदाभास करके ही भोग होता है। स्वप्नादि प्रातिभासिक हैं उसमें भी भोगकी प्रतीति होती है परन्तु वह व्यवहारिक की अपेक्षा तुच्छ है कोई उसे सत्य नहीं मानता। चिदाभास की समूल निवृत्ति से जीवको मोक्ष प्राप्त होता है, प्रातिभासिक सत्ता क्षण क्षण में बदलती है उससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, बंधन की निवृत्ति का उपाय व्यवहारिक में होता है, प्रातिभासिक में नहीं।

व्यवहारिक सत्ता का अभाव मोक्ष में होता है मोक्ष के प्रथम उसका नाश नहीं है, सुषुप्ति अवस्था में व्यवहारिक चिदाभास दीखता नहीं है और कार्य भी करता नहीं है तो भी चिदाभास का नाश नहीं होता दबा रहता है और स्वप्नावस्था प्रातिभासिक होने से व्यवहारिक चिदाभास वहां कार्य नहीं करता उसे ढांपकर स्वप्न चिदाभास नया बनकर कार्य करता है इसीसे व्यवहारिक सत्ता का पूर्ण नाश और पारमार्थिक तत्त्व में स्थिति रूप ही मोक्ष होता है।

पारमार्थिक सत्ता का तत्त्व त्रिकालाबाधित होने से व्यवहारिक सत्ता में अथवा प्रातिभासिक में न दीखे तो भी आधार रूप होने से रहता ही है। उस आधार में व्यवहारिक सत्ता की प्रतीति है और उसके आधार में प्रातिभासिक सत्ता होती है। जैसे व्यवहारिक सत्ता की अपेक्षा से प्रातिभासिक मिथ्या है

ऐसे ही पारमार्थिक सत्तामें व्यवहारिक मिथ्या है । पारमार्थिक सत्ता का भान हो अथवा न हो तो भी आधार रूप होने से सत्य ही है ।

स्वप्नके भोग भोक्ताके लिये मिथ्या नहीं है तो भी वह अल्प होने से जन्म मरण आदि का हेतु नहीं कहा जाता जन्मान्तर का हेतु चिदाभास युक्त जीव ही होता है वही कर्ता के अभिमान को करता है और वही भोक्ता है ।

चिदाभास स्थिता निद्रा
विक्षेपावृत्ति रूपिणि ।
आवृत्य जीव जगती
पूर्वं नूत्नेन कल्पयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ:—चिदाभास में स्थित आवरण और विक्षेप शक्ति वाली निद्रा पूर्व के जीव और जगत् को आवरण करके स्वप्न में नये जीव और जगत् की कल्पना करती है ।

विवेचन ।

व्यवहारिक चिदाभास अविद्याकी आवरण और विक्षेप शक्ति सहित है, जब वह चिदाभास निद्रा दोष अविद्या की आवरण शक्ति से ढप जाता है और विक्षेप शक्ति से चञ्चलता युक्त होता है तब स्वप्न होता है । निद्रा दोष—अविद्या की आवरण शक्ति व्यवहारिक चिदाभास को ढांपती है, और उसकी विक्षेप शक्ति चञ्चलता को पैदा करती है । व्यवहारिक सत्ता के चिदा-

भास के साथ संपूर्ण जगत् भी ढप जाता है क्योंकि चिदाभास से ही जगत् की प्रतीति थी। दोनों शक्तियों सहित निद्रा दोष की अविद्या स्वप्न के संपूर्ण सृष्टि की कल्पना करतीहै—रच लेती है। व्यवहारिक जीव के स्थान में स्वप्न जीव को बनाती है और व्यवहारिक पदार्थों के बदले स्वप्न के पदार्थों को बना देती है।

जिस प्रकार व्यवहार में जीव, जीव के भोग और जिसमें भोग हो ऐसा जगत् होता है स्वप्न में भी इसी प्रकार के जीव और संपूर्ण जगत् बन जाता है, व्यवहार के समान स्वप्न में भी सब प्रकार के भोग भोगे जाते हैं, पूर्व जगत् का कुछ भी भान नहीं रहता। जाग्रत में एक अविद्या थी और स्वप्न में उस अविद्या के ऊपर दूसरी निद्रा दोष की अविद्या चढ़ी हुई है। आहाहा कितना आश्चर्य है! निद्रा दोष की अविद्या क्षण भर में स्वप्न की सब सृष्टि को रच लेती है।

" स्वप्न में यह स्वप्न है, यह मिथ्या है ऐसा कोई भी नहीं जानता यदि कोई यह स्वप्न है ऐसा जानता है तो यह भी स्वप्न के भीतर है। स्वप्न के सब भोग मिथ्या नहीं हैं। जब स्वप्न का जीव स्वप्न में से जाग्रत में आता है और जब जाग्रत के पदार्थों का द्रष्टा होता है तब उसको स्वप्न सृष्टि झूँठ होती है। स्वप्न में जाग्रत वाला जीव ही अविद्या के निद्रा दोष की शक्ति से युक्त था, जब जाग्रत होता है तब निद्रा दोष की शक्तियों सहित अविद्या नहीं रहती पूर्व का जीव होता है तब स्वप्न सृष्टि को झूँठा कहता है।

शंका:—स्वप्न को झूँठा क्यों कहते हो स्वप्न झूँठा नहीं होता बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो कि स्वप्न में देखी हुई सच्ची

होजाती हैं तव स्वप्न झूँठा कैसे कहा जाय ? स्वप्न अकारण भी नहीं है, पूर्व में जाग्रत अवस्था में किये हुए अनुभव ज्ञान की स्मृति होती है, स्मृति जाग्रत के सत्य पदार्थ की होती है तब वह झूँठा कैसे ?

समाधानः—जाग्रत की अपेक्षा से स्वप्न झूँठा ही होता है, किसी को स्वप्न में एक हजार रुपया मिला, जाग्रत के एक हजार रुपया उसके पास है ऐसे दो हजार रुपये नहीं होते, स्वप्न के रुपये जाग्रत में काम नहीं देते इसीसे स्वप्न और उसमें मिले हुए रुपये झूँठे ही हैं। कभी ऐसा स्वप्न होता है कि जो वात स्वप्न में वनी वही जाग्रत में वन जाती है इससे भी स्वप्न सच्चा नहीं है ऐसा स्वप्न जाग्रत में होने वाली घटनाओं की सूचना देने वाला होता है, ऐसा समझना चाहिये यह जो स्वप्न में है वे जाग्रत में नहीं होते स्वप्न के पदार्थ भिन्न हैं और जाग्रत के पदार्थ भिन्न हैं, जाग्रत के पदार्थ व्यवहार में काम आते हैं स्वप्न के नहीं इसीसे झूँठा है। स्वप्न को पूर्व जाग्रत जगत् की स्मृति कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि स्मृति और प्रत्यक्ष में अन्तर है, यह पूर्व की स्मृति है ऐसा स्वप्न में वोध नहीं होता, ऐसा वोध हो तव ही स्मृति सिद्ध हो। जाग्रत के पदार्थ का जैसे प्रत्यक्ष होता है ऐसे स्वप्न पदार्थ का भी प्रत्यक्ष होता है। स्वप्न पदार्थ सच्चा हो तो उसका जाग्रत में भान भी होना चाहिये।

शंकाः—स्वप्नावस्था में लिंग शरीर युक्त जीव, शरीर में से निकल कर वाहर जाकर गिरी गुफा नदी आदिक जो सच्चे हैं उसीको देखता हैं उसीका अनुभव करता है इसीसे सच्चे पदार्थों का ही उसे प्रत्यक्ष होता है। जिसका प्रत्यक्ष करता है वह पदार्थ

और उसका ज्ञान मिथ्या नहीं है और वहां प्रत्यक्ष करने वाला भी झूँठा नहीं है। जो स्वप्न को देखने वाला झूँठा हो तो जाग्रत के जीवको स्वप्न के देखे हुए पदार्थ की स्मृति रहना न चाहिये।

समाधान:—पदार्थ के अनुसार ज्ञान होता है। पदार्थ झूँठा हो तो उसका ज्ञान भी झूँठा होता है। जहां कुछ अन्धेरे में रस्सी के स्थान में सर्प दीखता है वहां सर्प मिथ्या होने से सर्प का ज्ञान भी मिथ्या है; इसी प्रकार स्वप्न के पदार्थ मिथ्या होने से पदार्थ का ज्ञान भी मिथ्या ही है। तू स्वप्न के पदार्थों को सच्चा कहता है और कहता है कि सच्चे पदार्थों का ही जीव अनुभव करता है यह तो तब बनता कि किसी ने स्वप्न में गंगाजी में स्नान किया तुरन्त ही वह जाग्रत होजाय तब शरीर और वस्त्र भीगे हुए हों। ऐसा होता नहीं है इससे स्वप्न की गंगा मिथ्या ही है, जिस गंगा में भिगोने के योग्य जल नहीं है वह गंगा कैसी? जीवात्मा शरीर को छोड़कर दूर देशमें जाकर पदार्थों का अनुभव करता है यह भी नहीं बन सकता क्योंकि शरीर में से जीवात्मा निकलने से शरीर मृतक हो जायगा, प्राण चलेगा नहीं परन्तु देखते हैं कि स्वप्न में पड़े हुए मनुष्य का प्राण भली प्रकार चलता रहता है! ऐसा कहे कि प्राण नहीं जाता, जीवात्मा ही बाहर जाता है ऐसा बन नहीं सकता प्राण को धारण करने वाला जीव है जीव बिना प्राण टिकने में असमर्थ है। तूने कहा है कि "स्वप्न को देखने वाला झूँठा नहीं है क्योंकि उसे स्वप्न की स्मृति जाग्रत में रहती है" यह भी ठीक नहीं है। जैसे एक सिपाही ने वरदी पहने हुए एक डाकू को पकड़ा वरदी उतार कर भी उसे डाकू को पकड़ने की स्मृति है; इसी प्रकार जाग्रत वाला जीव ही निद्रा दोष की अविद्या का कपड़ा पहने हुए होता है इसीसे उसकी स्मृति जाग्रत में भी रह सकती है।

स्वप्न के संपूर्ण व्यवहार जाग्रत की अपेक्षा से झूँठे हैं ऐसा न हो तो स्वप्नमें कोई एक मित्र से मिला फिर जब जाग्रत अवस्था में मिलता है तब वह मित्र ऐसा नहीं कहता कि रात्रि में मैं तुम से मिला था, उसे रात्रि को मिलने की खबर ही नहीं है इसीसे सिद्ध है कि स्वप्न का मित्र यह नहीं था स्वप्न का मित्र काल्पनिक और जाग्रत का व्यवहारिक मित्र दोनों भिन्न २ हैं।

"रात्रि में स्वप्नावस्था में जीवात्मा शरीर से बाहर निकल कर जाग्रत के सच्चे पदार्थों का ही अनुभव करता है अथवा मन ही बाहर जाकर सच्चे पदार्थों का अनुभव करता है" यह भी ठीक नहीं है क्योंकि बिना प्राण जीव की और मन की गति बाहर नहीं हो सकती, प्राण वाहन है और मन सवार है इसीसे प्राण के निरोध से मनका निरोध होता है और मनके निरोध से प्राण का निरोध होता है। जाग्रत का जीव इन्द्रियों के गोलक सहित ही प्रवृत्त होता है। स्वप्न में जाग्रत की इन्द्रियां चेष्टा रहित हैं तब मन विषयों को ग्रहण कैसे करे ? व्यवहारिक पदार्थों को ग्रहण करने के लिये व्यवहारिक इन्द्रिओं सहित मनकी आवश्यक्ता है इन्द्रियां बिना मन विषयों का ग्रहण कर नहीं सकती, स्वप्न में इन्द्रियों की प्रतीति होती है जैसे वहां का मन कल्पित है ऐसे इन्द्रियां भी कल्पित हैं, कल्पित इन्द्रियों से व्यवहारिक मन की चेष्टा नहीं होती। जाग्रत् के सब व्यवहार पंच भौतिक पंचीकृत किये हुए हैं और स्वप्न के सब व्यवहार काल्पनिक अपंचीकृत हैं।

स्वप्न सच्चा ही हो तो किसी ने स्वप्न में हरद्वार जाकर रामचंद्रजी के मन्दिर में दर्शन किये तुरन्त ही वह जाग्रत होगया तब

वह मन्दिर में होना चाहिये, ऐसा नहीं होता वह अपने मकान में जहां सोया था वहां खटिया में पड़ा हुआ होता है ऐसा कहो कि "मनही जाता है शरीर जाता नहीं" तो मन भी वहां जाग्रतहोना चाहिये। ऐसा नहीं होता शरीर में ही जाग्रत होता है इसीसे शरीर को छोड़कर मन भी गया है नहीं। स्वप्न में दर्शन करने वाला मन और ही था।

स्वप्न में न जीव बाहर जाता है न मन इन्द्रियां बाहर जाती हैं, स्वप्न की सब सृष्टि ही निद्रादोष वाली अविद्या से उत्पन्न हो जाती है वहां जीव, अन्तःकरण मन इन्द्रियां और शरीर नया ही उत्पन्न होजाता है, ऐसे वहां के देशकाल वस्तु भी नये ही उत्पन्न होजाते हैं, इसीसे देश देशान्तर आदिक सब कल्पित हैं वहां की रचना वहां ही होती है यह सब आन्तर कल्पित है और अपंचीकृत है। स्वप्न को रचना स्वप्न से बाहर नहीं होती जैसे ईश्वर सृष्टि ईश्वर से बाहर नहीं है और सब सृष्टिके जीवों के व्यवहार का हेतु होती है। ऐसे निद्रादोष वाली जीव सृष्टि जीव के आन्तर है और वहां के जीवों के व्यवहार का हेतु होती है। जाग्रत अवस्था के शरीर में कंठ देश में आई हुई हिता नाम की नाड़ी स्वप्न सृष्टि का उत्पत्ति स्थान है और लय स्थान भी वही है आधार निद्रा दोष की अविद्या है। सब कुछ होते हुए यह निद्रा दोष की अविद्या सिवाय और कुछ नहीं है, इसीसे निद्रा की निवृत्ति में स्वप्न सृष्टि की निवृत्ति है।

सब जीवों की स्वप्न सृष्टि भिन्न २ होती है एक दूसरे की सृष्टि का मेल नहीं है दो मनुष्य साथ सोये हुए हों दोनों को स्वप्न दीख रहा है दोनों का स्वप्न भिन्न २ है एकके स्वप्नको दूसरा

नहीं जानता, जैसे जाग्रत अवस्था की सृष्टि एक ईश्वर से अनेकता को प्राप्त हुई है ऐसे ही एक जीवकी सृष्टि भी स्वप्नमें अनेकता को प्राप्त होती है और जैसे एक ईश्वर की सृष्टि में अनेक जीव व्यहार करते हैं ऐसे ही एक जीव की स्वप्न सृष्टि में अनेक स्वप्न जीव व्यवहार करते हैं ऐसी समानता होते हुए भी भिन्नता है। ईश्वर सृष्टि माया—अविद्या से रचित है और जीव सृष्टि अविद्या के साथ निद्रा दोष की अविद्या भी मिली है इसीसे ईश्वर सृष्टि के व्यवहार की अपेक्षा मिथ्या होती है।

शंका:—कारण बिना कार्य नहीं होता, स्वप्न में भी सुख दुःख होता है उसका कारण अवश्य होना चाहिये, अनेक प्रकार की रचना बिना कारण कैसे हो? यह सब जीवों को अपने २ जाग्रत अवस्था के संस्कार से ही होना संभव है।

समाधान:—कारण बिना कार्य नहीं होता यह ठीक है परन्तु जहां कार्य ही नहीं है वहां कारण क्या? और स्वप्न कुछ है ऐसा कहो तो उसका कारण निद्रा दोष की अविद्या ही है और कारण कोई नहीं, भले उस अविद्या में कोई सहायक हो, तो भी नियमपूर्वक नहीं है। संस्कारों को तो इसलिये कारण नहीं कहते कि वे क्रम वार नहीं होते अंडबंड होते हैं, एक संस्कार के शिर और दूसरे के पैर से पदार्थ बना दीखता है, व्यवहार में अशक्य है ऐसा भी अनुभव होता है। कभी किसी को मेरा शिर कटा हुआ पड़ा है ऐसा दीखता है कभी शरीर को आसमान में उड़ने का अनुभव होता है कभी पृथिवी के भीतर घुसने का अनुभव करता है ऐसी स्वप्न की रचना का व्यवहार में असंभव है तब संस्कार कैसे? कोई भी योनि में किसी ने भी अपना शिर दूर कटा पड़ा है ऐसा अनुभव किया नहीं है और दीख पड़ता है वह कौन से संस्कार से?

सुख दुःख क्षणिक हैं उसका हेतु कोई भी हो मुख्य कारण स्वप्न दोष की अविद्या है।

स्वप्न काल्पनिक है व्यवहारिक में मिथ्या है, निद्रा दोष की अविद्या से संपूर्ण त्रिपुटि समाज क्षण भर में होजाते हैं विचार करके देखो तो स्वप्न में कोई कार्य कारण नहीं है। नया ही उत्पन्न हुआ नहीं दीखता, दीखने वाले से प्रथम उत्पन्न हुआ दीखता है स्वप्न में देखने वाला भी अपने को तुरन्त का जन्मा हुआ नहीं मानता इसीसे स्वप्न का सम्पूर्ण व्यवहार जाग्रत में मिथ्या ही है काल्पनिक है।

प्रतीति काल एवैते
स्थितत्वात्प्रातिभासिके।
नहि स्वप्न प्रबुद्धस्य
पुनःस्वप्नेस्थितिस्तयोः ॥ ३६ ॥

अर्थः—प्रतीति काल में रहने के कारण दोनों यानी स्वप्न का जीव और स्वप्न का जगत् प्रातिभासिक है। स्वप्न के जगें हुए पुरुष के दूसरे स्वप्न में पहिले स्वप्न के जीव और जगत् की स्थिति नहीं होती।

विवेचन।

जो समय केवल देखने मात्र होता है, जिसका आगे पीछे कोई सम्बन्ध और अनुसंधान नहीं होता, वह प्रातिभासिक काल कहा जाता है। भ्रांति में जो कुछ प्रतीति होती है, उसमें

आगे पीछे का कोई संवन्ध नहीं होता और व्यवहारिक सत्यता भी नहीं होती। स्वप्न में जो कुछ देखने में आता है या क्रिया होती है दिखाई देती है वह भी प्रातिभासिक है। प्रतीति मात्र को प्रातिभासिक कहते हैं। स्वप्न और स्वप्न का जगत् इसी प्रकार का होने से प्रातिभासिक कहा जाता है। जहां व्यवहारिक चिदाभास का व्यवहार न हो और कल्पित चिदाभास खड़ा होकर व्यवहार को करे, वह प्रातिभासिक होता है। स्वप्न में व्यवहारिक सत्ता वाला चिदाभास नहीं है, व्यवहारिक सत्ता के चिदाभास के आधार में निद्रा दोष की अविद्या से स्वप्न में नकली चिदाभास उत्पन्न होकर व्यवहार करता हैं, इसीसे स्वप्न, स्वप्नकाल, व्यवहार और व्यवहार कर्ता नकली है, देखने मात्र है इसीसे प्रातिभासिक है।

जब व्यवहारिक सत्ता का पूर्ण बोध नहीं होता और पदार्थ, क्रिया आदिक भासते हैं, तब प्रातिभासिक सत्ता कहलाती है। प्रातिभासिक व्यवहारिक नहीं होता यानी व्यवहार में काम नहीं आता। वह व्यवहार से विलक्षण और व्यवहार में मिथ्या होता है और भूलरूप ही होता है। स्वप्न का भान जिस अवस्था में होता है, उस अवस्था में शास्त्रकारों ने अन्तःकरण की वृत्ति नहीं कही, वहां अविद्या की वृत्ति का कथन किया है। अन्तःकरण की वृत्ति व्यवहारिक है, स्वप्न व्यवहारिक न होने से अन्तःकरण की वृत्ति वाला नहीं है और वहां जो वृत्ति की प्रतीति होती है वह अविद्या की वृत्ति है। अविद्या की वृत्ति से जहां बोध होता है, वहां सामान्य प्रकाश होता है वह साक्षी का है; चिदाभास का विशेष प्रकाश नहीं होता। सामान्य प्रकाश में ही अविद्या की वृत्ति होती है और वह साक्षी से प्रकाशित होती है। साक्षी का सामान्य प्रकाश चिदाभास के विशेष प्रकाश रहित जाग्रत अवस्था के व्यवहारिक पदार्थों

का बोध नहीं कर सकता और अविद्या की वृत्ति से युक्त प्रातिभासिक स्वप्न आदि का बोध कर सकता है।

व्यवहारिक चिदाभास जाग्रत अवस्था में व्यवहार करने वाला है वह एक शरीरकी जिंदगीका एक ही होता है जो शरीर भोग के लिये तैयार हुआ है उससे युक्त आभास एक ही है इसीसे एक जिंदगी का एक कहा है। स्वप्न, सुषुप्ति में उसका भान न होते हुए भी जो प्रथम का है वह ही रहता है और स्वप्न के जीव और जगत् प्रत्येक स्वप्न के भिन्न २ होते हैं, पहिले स्वप्न के जीव से सम्वन्ध नहीं है ऐसे ही पहिले स्वप्न जगत् से दूसरे स्वप्न जगत् का सम्वन्ध नहीं है। स्वप्न की प्रतीति के आरंभ से प्रतीति के अन्त तक एक जीव होता है। और कभी तो एक स्वप्न में भी जीव और जगत् वदला करते हैं, ऐसे स्वप्न की अपेक्षा से जाग्रत का जगत् और चिदाभास रूप जीव अधिक समय का है, एक जिंदगी पर्यंत स्थायी है।

जाग्रत अवस्था में जो पदार्थ हम आज देखते हैं, रात्रि के स्वप्न और सुषुप्ति के बाद दूसरे दिन जव जाग्रत होते हैं तब वह का वह ही दीखता है। जाग्रत अवस्था जाकर लौट आती है तब जाग्रत के पदार्थों का देश भी वही रहता है, स्वप्न में इस प्रकार नहीं होता, गई हुई स्वप्नावस्था वह की वह फिर लौटकर नहीं आती, एक स्वप्न का पदार्थ और देश काल दूसरे स्वप्न में नहीं होता, स्वप्न सब नये ही होते हैं और जाग्रत अवस्था वह की वह रहती है इसीसे जाग्रत को व्यवहारिक सत्ता का और स्वप्न को प्रातिभासिक सत्ता का कहते हैं।

व्यवहारिक पदार्थ वदलते नहीं हैं स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत पदार्थों का बोध नहीं होता तो भी जो जीव जाग्रत अवस्था में है उसे उन पदार्थों का बोध होता है इसीसे

पदार्थ व्यवहारिक है और स्वप्न के पदार्थ तो स्वप्न के सिवाय प्रतीत नहीं होते। स्वप्न की निवृत्ति में और दूसरे के स्वप्न में अथवा दूसरे स्वप्न में प्रतीत नहीं होते इसीसे प्रातिभासिक हैं।

जाग्रत अवस्था के पदार्थ सब जीवों को सामान्य हैं सबके व्यवहार के हेतु होते हैं और स्वप्न के पदार्थ तो सब स्वप्न वालों को व्यवहार के हेतु नहीं होते इसीसे जैसे सबका स्वप्न भिन्न २ है ऐसे ही सबके स्वप्न के पदार्थ भी भिन्न २ हैं इसीसे प्रातिभासिक है।

जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर के भान सहित सब व्यवहार होता है, स्वप्न में स्थूल शरीर से व्यवहार नहीं होता, स्वप्न में स्थूल शरीर है ऐसे भान सहित व्यवहार होता है परन्तु शरीर नहीं है केवल शरीर का भास होता है इसीसे प्रातिभासिक है।

जाग्रत अवस्था में किये हुए शुभाशुभ कर्मों का संस्कार पड़ के अदृष्य बनता है और उसके अनुसार जन्म और भोग होता है, स्वप्न स्थायी न होने से, जाग्रत में झूँठा बनने से शुभाशुभ कर्मों के संस्कार पड़ते नहीं इसीसे शुभाशुभ कर्म जन्म और भोग के द्वारा नहीं होते इसीसे प्रातिभासिक हैं।

प्रातिभासिक जीवो य--
स्तज्जगत्प्रातिभासिकम्।
वास्तवं मन्यतेऽन्यस्तु
मिथ्येति व्यावहारिकः ॥४०॥

अर्थः—स्वप्न वाला जो प्रातिभासिक जीव है, वह प्रातिभासिक जगत् को सच्चा समझता है, और व्यवहारिक जीव तो उसे मिथ्या समझता है।

विवेचन।

स्वप्न का जीव और स्वप्न का जगत् जाग्रत अवस्था में झूठा होता है स्वप्न के समय में नहीं, स्वप्न में स्वप्न का जीव और जगत् स्वप्न जीव को सच्चा ही मालूम होता है क्योंकि वहां स्वप्न जीव की और स्वप्न जगत् की एक सत्ता है। एकही निद्रा दोष वाली अविद्या से स्वप्न जीव और स्वप्न जगत् की उत्पत्ति है इसीसे स्वप्न जीव स्वप्न जगत् को मिथ्या नहीं समझ सकता और ऐसे ही वहां के सुख दुःखका भोक्ता अपने को मिथ्या नहीं मानता। दीखने वाले पदार्थ, देखने वाले की सत्ता से भिन्न सत्ता वाले हों तब ही झूठा कह सकते हैं। जाग्रत अवस्था के पदार्थ और जाग्रत अवस्था का चिदाभास दोनों एक सत्ता के होने से जाग्रत अवस्था वाले जीवको झूठा नहीं होता परन्तु स्वप्नका जीव और स्वप्न का जगत् तो जाग्रत अवस्था वाले जीव को मिथ्या होता है क्योंकि दोनों की सत्ता भिन्न है। स्वप्न के जीवको स्वप्न का जगत झूठा नहीं होता क्योंकि दोनों की एक ही सत्ता है; स्वप्न की प्रातिभासिक सत्ता स्वप्नमें सच्ची और जाग्रत के व्यवहार की सत्ता व्यवहार में सच्ची और व्यवहार में प्रातिभासिक झूठी। स्वप्न में व्यवहारिक सत्ता का स्मृति रूप से बोध न होने से व्यवहारिक सत्ता को तो स्वप्न में झूठी या सच्ची नहीं कह सकते। अपनी सत्ता के पदार्थ झूठे नहीं होते जैसे एक मट्टी का खिलौना स्वयम् झूठा होने से दूसरे मट्टी के खिलौने को झूठा नहीं कह सकता ऐसे स्वप्न के पदार्थ स्वप्न में झूठे नहीं।

शंका:—स्वप्न मिथ्या हो तो भले परन्तु जाग्रत का जीव ही स्वप्न जीव है ऐसा न हो तो स्वप्न में किये हुए अनुभव की स्मृति जाग्रत के जीव को क्यों रहती है ? जैसे एक के अनुभव की स्मृति दूसरे को नहीं हो सकती वैसे जो स्वप्न जीव जाग्रत जीव से अन्य हो तो जाग्रत जीव को स्वप्न की स्मृति होती है वह न होनी चाहिये।

समाधान:—जाग्रत् के जीव से स्वप्न के जीव को भिन्न इस कारण से कहा है कि एक व्यवहारिक सत्ता का है और दूसरा प्रातिभासिक सत्ता का है। जाग्रत की श्रीमानता से स्वप्न में कोई श्रीमान नहीं होता ऐसे स्वप्न का कंगाल जाग्रत में कंगाल नहीं होता। व्यवहार में जाग्रत सत्य है और स्वप्न मिथ्या है इसीसे दोनों भिन्न हैं। स्मृतिं अनुभव कर्ता को ही होती है यह ठीक है परन्तु स्वप्न जीव के किये हुए अनुभव का आधार जाग्रत जीव था जाग्रत जीव ही निद्रा दोप की अविद्या से युक्त था, स्वप्न और उसके व्यवहार का आधार था इसीसे स्मृति रह सकती है। जाग्रत का चैतन्य ही अविद्या के निद्रा दोप सहित था। जैसे किसी ने वहुत वस्त्र पहिने हों और वस्त्र सहित कुछ कार्य किया हो जव वह वस्त्रको निकाल देता है तव भी वस्त्र सहित किये हुए कार्यका स्मरण रहता है ऐसेही जाग्रतके जीवने निद्रा दोपकी अविद्या का वस्त्र पहना था वह वस्त्र उतर जाने से भी वस्त्र सहित कार्य की स्मृति वनी रहती है।

शंका:—जव जाग्रत का जीव ही निद्रा दोप की अविद्या के वस्त्र सहित है तव स्वप्न जीव को भी जाग्रत के व्यवहार की स्मृति रहनी चाहिए। जाग्रत जीव के किये हुए कर्म की स्मृति स्वप्न जीव को क्यों नहीं रहती ?

समाधानः—निद्रा दोष की अविद्या के वश से जो विशेष व्यवहार स्वप्न में होता है वह जाग्रत के जीव भाव को ढांप कर होता है इसीसे स्वप्न जीव को जाग्रत के व्यवहार की स्मृति नहीं होती और जाग्रत का व्यवहार स्वप्न व्यवहार को ढांपकर नहीं हुआ, स्वप्न व्यवहार रूप वश भिन्न ही प्रतीत होता है इससे स्वप्न व्यवहार की स्मृति जाग्रत जीव को होती है और जाग्रत व्यवहार की स्मृति स्वप्न जीव को नहीं होती।

स्वप्न की अवस्था में "यह स्वप्न है, झूठा है" ऐसा भान स्वप्न में पड़े जीव को नहीं होता, स्वप्न अपनी अवस्था में स्वप्न है ऐसा जानने नहीं देता, यदि ऐसा कोई जानता है तो स्वप्न निवृत्त हो जाता है क्योंकि स्वप्न है ऐसा बोध जाग्रत सिवाय नहीं होता। जाग्रत होकर ही स्वप्न था ऐसा कहेगा। स्वप्न में सब पदार्थ ठीक ठीक व्यवहारिक ही होते हैं, स्वप्न में स्वप्न का भान न होने से सब बर्ताव को सच्चा व्यवहारिक ही माना जाता है। स्वप्न जाग्रत अवस्था का विरोधी है इसीसे स्वप्न हो तब जाग्रत नहीं होता और जाग्रत की स्मृति भी स्वप्न में नहीं होती। जाग्रत से स्वप्न का विरोध है तो भी जाग्रत में स्वप्न की स्मृति हो सकती है और जाग्रत की स्मृति स्वप्न में नहीं। स्वप्न जाग्रत् का भान खोकर होता है इसीसे स्वप्नमें जाग्रत और जाग्रतकी स्मृति भी नहीं होती।

कभी किसी को स्वप्न में "यह स्वप्न तो नहीं है" ऐसा भान होता है परन्तु वह जाग्रत हुआ नहीं होता इसीसे प्रयत्न करके सत्य होने का निश्चय कर लेता है यह सब क्रिया और निश्चय स्वप्न रूप ही होता है, स्वप्न अभी उसका टूटा नहीं है जब वह जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है तब उसे मालूम होता है कि मैंने जो निश्चय किया था कि "स्वप्न नहीं है जाग्रत ही है" यह झूँठ था वह सब स्वप्न ही था जाग्रत तो मैं अब हुआ हूँ।

स्वप्न अवस्था में स्वप्न और सुख दुःख भोगादि सब सच्चे ही भासते हैं। सुख दुःख मिथ्या है ऐसा बोध नहीं होता। स्वप्न में स्वप्न व्यवहार झूँठ नहीं है और जाग्रत अवस्था वाले को स्वप्न और स्वप्न के सुख दुःखादि झूँठे होते हैं, संपूर्ण स्वप्न सृष्टि झूँठी होती है। यदि कोई कहे कि स्वप्न में जाग्रत भी झूँठा होता है तो उत्तर यह है कि जाग्रत का भान स्वप्न में नहीं होता इसीसे जाग्रत झूँठा है अथवा सच्चा है ऐसा निर्णय नहीं होता क्योंकि स्वप्न में जाग्रत की स्मृति ही नहीं है और स्वप्न की तो स्मृति जाग्रत में होती है। स्वप्न झूँठा है ऐसा जाग्रत वाला स्मृति के बल से जान सकता है। स्वप्न वाला जाग्रत झूँठा है ऐसा नहीं जानता, स्वप्नावस्था वाले ने स्वयं जाग्रत का अभिमान धारण किया है, अपनी जाग्रत अवस्था ही है ऐसा वह समझता है उसे स्वप्न की—व्यवहारिक अवस्था को छोड़कर अन्य जाग्रत अवस्था का भान नहीं होता। जाग्रत होते ही स्वप्न का नाश होजाता है और स्वप्न की स्मृति रहती है इसीसे स्वप्न झूँठा कहलाता है।

शंकाः—स्वप्न पूर्ण झूँठा नहीं है, उसमें भी कुछ सत्यता अवश्य है, कारण के बिना कोई कार्य नहीं बनता, स्वप्न का भी कारण होना ही चाहिये। जाग्रत में अनुभव की हुई वस्तुओं का ही भान स्वप्न में होता है इसीसे स्वप्न को जाग्रत अवस्था के अनुभव के संस्कारों की स्मृति ही कहना चाहिये, स्मृति से स्वप्न बनता है और स्वप्न का कोई कोई व्यवहार सच्चा भी होता है।

समाधानः—पूर्ण झूँठा नहीं ऐसा कहने से क्या मतलब है? आधा झूँठा और आधा सच्चा तो बन नहीं सकता, सच्चा झूँठा एक दूसरे से विरुद्ध होने से एक पदार्थ में एक काल में दोनों हो नहीं सकते। स्वप्न झूँठा है इसका अनुभव संपूर्ण संसार को होता

है। निद्रा दोष की अविद्या ही स्वप्न का कारण है और कोई प्रबल कारण नहीं है यह अविद्या निद्रा के दोष से होने से स्वयम् झूँठी है इसीसे इसका कार्य भी झूँठा है। जाग्रत अवस्था के अनुभव संस्कार की स्मृति भी स्वप्न नहीं है; क्योंकि स्मृति-स्मृति रूप से होती है प्रत्यक्ष नहीं और स्वप्न के पदार्थों का भान तो प्रत्यक्ष होता है, संस्कार संभवित का होता है असंभवित का नहीं। स्वप्न में असंभवित दृश्य दीखते हैं, अनुभव करता है तब संस्कार किस प्रकार? वहां संस्कारों की गड़बड़ी भी दीखती है इसीसे संस्कार ही स्वप्न नहीं। स्वप्न कभी जाग्रत अवस्था में होने वाले कार्य की सूचना देते हैं फिर भी स्वप्नावस्था में यह कार्य जाग्रत अवस्था में होगा ऐसा बोध नहीं होता जब जाग्रत में स्वप्न के समान कार्य होता है तब जाना जाता है कि स्वप्न में जैसा हुआ था ऐसा ही व्यवहार में हुआ इसीसे भी वह स्वप्न सच्चा नहीं है। स्वप्न में धन मिला स्वप्न नष्ट होते धन भी पास न रहा बाद जाग्रत की क्रिया से जाग्रत का धन मिला वह जाग्रत का धन है स्वप्न का नहीं है इसीसे स्वप्न और उसका धन झूँठा है। सब स्वप्न जाग्रत में होने वाले की सूचना देते हों यह भी नियम नहीं इसीसे झूँठा ही है।

व्यावहारिक जीवो यस्त-
ज्जगद्व्यावहारिकम्।
सत्यं प्रत्येति मिथ्येति
मन्यते पारमार्थिकः ॥ ४१ ॥

अर्थः—जो व्यवहारिक जीव है, वह व्यवहारिक जगत् को सच्चा समझता है और पारमार्थिक जीव तो उसे मिथ्या समझता है।

विवेचन ।

बुद्धि पूर्वक विचार करने से स्वप्न का मिथ्यात्व सबकी समझ में आजाता है उसका यह मिथ्यात्व भी विलक्षण है। मिथ्या पदार्थ होता नहीं है मिथ्या भान ही होता है क्रिया नहीं होती, स्वप्न में तो संपूर्ण व्यवहार जाग्रत के समान ही होता है और जाग्रत अवस्था में स्वप्न में का कुछ भी नहीं रहता यह उसकी विलक्षणता है। कार्य प्रयोजन के लिये होते हैं, जाग्रत अवस्था में जगत् के व्यवहार का भोग और जन्मान्तर प्रयोजन है, सुषुप्ति अवस्था में, जाग्रत व्यवहार करके शरीर इन्द्रियादिक थके हुए होते हैं उनको आराम देने का प्रयोजन है, सुषुप्ति के आराम के बाद शरीर इन्द्रियादिक जाग्रत के व्यवहार करने में बलिष्ट होते हैं, यह बलिष्ट करना ही सुषुप्ति का प्रयोजन है परन्तु स्वप्न का प्रयोजन मालूम नहीं होता, क्या स्वप्न का कुछ प्रयोजन ही नहीं होगा ? ना, उसका भी प्रयोजन है और अन्य प्रयोजनों से महान् है। जाग्रत अवस्था के सब व्यवहार दृढ़ और सच्चे होगये हैं उनको मिथ्या समझाने का ही स्वप्न का प्रयोजन है। जाग्रत व्यवहार को मिथ्या समझाने का स्वप्न के सिवाय और कोई अच्छा दृष्टांत मिलता नहीं है। विचार पूर्वक स्वप्न के दृष्टांत से जाग्रत जगत् का मिथ्यात्व समझ में आजाता है। यदि स्वप्न न होता तो जगत् की उत्पत्ति स्थिति किस प्रकार से ठीक २ समझी जाती। स्वप्न के समान जाग्रत का जगत् होने से वह भी झूँठा होना चाहिये। यह स्वप्न का प्रयोनन है।

स्वप्न और जाग्रत के व्यवहार को अपनी अपनी अवस्था में विचार किया जाय तो किंचित मात्र भी अन्तर नहीं यानी स्वप्न में जैसा स्वप्न जगत् है ऐसा ही जाग्रत में जाग्रत जगत् है।

जैसे स्वप्न में व्यवहार होता है ऐसे ही जाग्रत में व्यवहार होता है, स्वप्न में स्वप्न सच्चा है जाग्रत में जाग्रत सच्चा है दोनों समान होने से एक को झूँठा और दूसरेको सच्चा क्यों माना जाय ? सब प्रकार से भोग सुख दुःख शरीर इन्द्रियां कुटुम्ब मकान धन आदि सब ही स्वप्न और जाग्रत के समान होते हैं जाग्रत की कोई भी वस्तु स्वप्न में न हो ऐसा नहीं है स्वप्न से कोई भी अधिक वस्तु जाग्रत में नहीं है इसीमें दोनों समान ही हैं। कोई कहे कि वहां देश काल नदी पर्वत नहीं हैं, स्वप्न में स्नान करने से कपड़े भीगते नहीं हैं और जाग्रत में स्नान करने से कपड़े भीगते हैं .यह कहना गलत है। स्वप्न में देश काल नदी पर्वत सब कुछ है वहां की नदीसे वहां का कपड़ा भीगता ही है। स्वप्न में स्नान करके स्वप्न का वस्त्र न भीगे यह बन नहीं सक्ता। स्वप्न अल्प समय का है इसीसे मिथ्या है और जाग्रत अधिक समय का है इसीसे सच्चा है ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि अल्प समय और अधिक समय का निर्णय कब करते हो ? स्वप्न में भी कई साल और जिंदगी व्यतीत होती है वह अल्प कैसे ?

जाग्रत में तो स्वप्न झूँठा है ऐसी स्मृति भी होती है और स्वप्न में तो जाग्रत की स्मृति भी नहीं होती जाग्रत "स्वप्न झूँठा है" ऐसी स्मृति सहित है और स्वप्न में जाग्रत के झूँठे होने की प्रतीति और स्मृति रूप से भान भी नहीं होता इसीसे जाग्रत से भी स्वप्न अधिक सच्चा हुआ। किसी प्रकार से भी जाग्रत से स्वप्न की न्यूनता नहीं है इसीसे जैसा स्वप्न है वैसा ही जाग्रत है।

स्वप्न का मिथ्यापना जाग्रत में होता है स्वप्न में नहीं इसी प्रकार जाग्रत का मिथ्यापना सिद्ध करने के लिये जाग्रत से कोई

अन्य उच्च अवस्था में आना चाहिये तब ही यह जाग्रत मिथ्या हो सकता है। जैसे स्वप्न से अन्य उच्च जाग्रत है ऐसे जाग्रत से उच्च अन्य पारमार्थिक है जो स्वरूप स्थिति है। जैसे जाग्रत में स्वप्न मिथ्या होता है ऐसे ही पारमार्थिक स्वरूप में जाग्रत मिथ्या होता है। यानी स्वप्न कल्पित जीव व्यवहारिक चिदाभासमें मिथ्या और अवच्छिन्न जो कूटस्थ स्वरूप है उसमें चिदाभास भी मिथ्या होता है।

जैसे स्वप्न से सच्ची अवस्था जाग्रत है स्वप्न मिथ्या है, जाग्रत से सच्ची अवस्था पारमार्थिक है, जगत् मिथ्या है ऐसे यह पारमार्थिक भी जिसमें मिथ्या हो ऐसी शंका न करना चाहिये, क्योंकि द्वैत में ही एक अवस्था दूसरी को झूँठी करके सत्य होती है जो अद्वैत की सत्यता है वह स्वतः सिद्ध है उसे मिथ्या करने के लिये द्वैत के अभाव से कोई भी नहीं है। अविद्या, आवरण और विक्षेप दोनों शक्तियों सहित जब नहीं रहती तब पारमार्थिक में स्थिति होती है निद्रादोष वाली विक्षेप शक्ति का नाश अविद्या की आवरण शक्ति वाले जगत् में होता है और आवरण शक्ति सहित अविद्या का नाश ज्ञान स्वरूप पारमार्थिक सत्ता में होता है। स्वरूप स्थिति अन्तिम उच्च अवस्था है इससे आगे कोई अन्य उच्च अवस्था नहीं होती। स्वरूप स्थिति की प्राप्ति रूप पारमार्थिक अखंड ब्रह्म स्वरूप है इससे उसके बाद कोई और अवस्था का होना असंभवित है। आना जाना बदलना सच्चा झूँठा आदिक भेद द्वैत अविद्या में था वह जड़ सहित निवृत्त हो गई है तब अद्वैत स्वरूप में कभी भी कुछ भेद नहीं होता। इसका नाम ही पारमार्थिक अवस्था है उस सत्ता वाला ज्ञानी पुरुष संपूर्ण जाग्रत के जगत् को भी स्वप्न के समान मिथ्या समझता है।

पारमार्थिक सत्ता को प्राप्त हुए ज्ञानी पुरुष जब तक जली हुई अविद्या का लेश रहता है तब तक जगत् को देखते हैं और जगत् में व्यवहार भी प्रारब्ध के अनुसार करते हैं और जाग्रत को स्वप्न के समान मिथ्या समझते हैं। जैसे स्वप्न के पदार्थ मिथ्या होने से संग्रह करने की इच्छा नहीं होती ऐसे ही ज्ञानी पुरुषों को भी पारमार्थिक पूर्ण बोध होने से—जगत् मिथ्या है यह दृढ़ ज्ञान होने से उन पदार्थों में रुचि नहीं होती संग्रह करने की इच्छा नहीं होती दुःख को भी नहीं मानता सब तमाशा है ऐसे जानकर व्यवहार करते हैं इसीसे अलिप्त ही रहते हैं।

पारमार्थिक सत्ता को प्राप्त होने वाले की सब चिन्ता जाती रहती हैं शंका रहित निर्भय है, योग क्षेम की इच्छा नहीं रहती, जहां मिथ्यात्व दृढ़ हुआ है वहां रागद्वेष सुख दुःखादि का अवकाश ही नहीं होता।

पारमार्थिक सत्ता में पूर्ण टिका हुआ पुरुष ही वास्तविक पुरुष है वही सब ब्रह्मांड में भर कर रहा है उसे ब्रह्मांड का संपूर्ण व्यवहार अपनी सत्ता से होता हुआ मालूम होता है।

पारमार्थिक जीवस्तु
ब्रह्मैक्यं पारमार्थिकम्।
प्रत्येति वीक्षतेनान्य-
द्वीक्षते त्वनृतात्मना ॥४२॥

अर्थः—पारमार्थिक जीव तो ब्रह्म की एकता को पारमार्थिक समझताहै, दूसरी वस्तुओं को नहीं देखता और यदि देखता है तो मिथ्या रूप से ही देखता है।

विवेचन ।

पारमार्थिक जीव जो अवच्छिन्न है वह ही मैं हूँ, साक्षी स्वरूप मैं हूँ, कूटस्थ मैं ही हूँ ऐसे निश्चय वाला ज्ञानी पुरुष ही पारमार्थिक जीव है। वह अपने स्वरूपको जगत्का नहीं मानता, अपने में जगत् के विकार को नहीं मानता, पारमार्थिक तत्त्व ही त्रिकालाबाधित सच्चा होता है उसे ही वह सत्य दृष्टि से देखता है इसीसे उसे अपना स्वरूप भी परब्रह्म से अभिन्न प्रतीति होता है। जो जिस दृष्टि से पदार्थ को देखता है उसे उसकी दृष्टि के समान पदार्थ दीखता है ऐसे ही ज्ञानी पुरुष ब्रह्म दृष्टि से जहां २ देखता है वहां २ उसे परब्रह्म स्वरूप ही दीखता है परब्रह्म सिवाय और कुछ दीखता नहीं। व्यवहारिक दृष्टि का जो विषय है उसमें व्यवहार होता है तब भी उसकी व्यवहारिक दृष्टि नहीं होती पारमार्थिक दृष्टि ही होती है इसीसे व्यवहार करते हुए व्यवहार के विकार उसे नहीं लगते। पारमार्थिक तत्त्व एक ही है तब उसे और क्या दीखे, और कुछ दीखता नहीं। ज्ञानी पुरुषकी व्यवहारकी दृष्टि विलक्षण होती है उसे व्यवहार दृष्टिसे व्यवहारका बोध मात्र होता है, विकार नहीं होता। क्रिया भी होती है परन्तु जैसे अज्ञान की दशा में व्यवहार को सच्चा समझ कर वर्तता था, पदार्थों की इच्छा करता था अनुकूल और प्रतिकूल समझकर सुखी दुःखी होता था इस प्रकार अब नहीं होता। व्यवहारमें प्रवृत्त होते हुए संपूर्ण व्यवहार को मिथ्या ही मानता है उसकी दृष्टि में व्यवहार होते हुए भी तत्त्व पारमार्थिक ही भरा है, इसीसे वृत्ति व्यवहार के हेतु होकर भी अंतःकरण में क्षोभ को प्राप्त कराने वाली नहीं होती क्योंकि व्यवहार में उसकी सत्यता पूर्ण रूप से निवृत्ति हो गई है। उसकी यह ही विशेषता है कि व्यवहार दृष्टि में भी

वह व्यवहार से रहित होता है, दूसरों को व्यवहार करता दीखता है तो भी वह स्वयम् आंतर विकार से रहित होता है।

जो व्यवहार मुमुक्षु दशा में आत्म लक्ष में बाधा पहुँचाता था, चित्तको विक्षेप पैदा करने वाला होता था वह अब ज्ञानी को नहीं होता क्योंकि परब्रह्म से उसकी एकता है-एकता होने से परब्रह्म ही है। परब्रह्म सबका आधार है जैसे आधार आधेय के विकार से विकारी नहीं होता ऐसे अब ज्ञानी पुरुष अविद्या के विकार से विकारी नहीं होता ब्रह्म रूप ज्ञानी को व्यवहार बाधा पहुंचा नहीं सकता। कोई शंका करे कि तब तो वह ज्ञानी विरुद्धाचरण पापाचरण में भी प्रवृत्त हो जायगा। उत्तर यह है कि ऐसा नहीं होता, विरुद्धाचरण अथवा पापाचरण कामना से होता है अज्ञान में होता है, ज्ञानी की अज्ञान सहित सब कामनायें निवृत्त हुई हैं तब पापाचरण कैसे हो? अब शरीर से कार्य करता है तो भी कर्ता नहीं है इसीसे भोक्ता भी नहीं होता उसके शरीर में अब प्रारब्ध ही कर्ता रूप से है इसीसे उससे पापाचरण नहीं होता। यदि कोई प्रारब्ध का ऐसा ही फल होना है तो उस करके ज्ञानी पुरुष को किसी प्रकार प्रत्यवाय नहीं होता। ज्ञानी पुरुष अनेक जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धि करके अन्तिम में ज्ञानी हुआ है प्रायः ऐसे ज्ञानियों के पापाचरण के संस्कार शेष ही नहीं होते।

प्रथम कह आये हैं कि अवच्छिन्न में रहा हुआ अवच्छेद्य वास्तविक है माया अविद्या करके जिसका अवच्छेद्य प्रतीत होता है वह पारमार्थिक सत्य परब्रह्म होने से वही सच्चा स्वरूप है तब और जितने हैं वे सब मिथ्या ही रहे। पारमार्थिक में व्यवहारिक नहीं है, इसीसे व्यवहार वाला चिदाभास मिथ्या है और स्वप्न कल्पित तो व्यवहार में ही मिथ्या है तब वह पारमार्थिक सत्य

कैसे हो ? यह ज्ञानी का पूर्ण निश्चय होता है और व्यवहार में प्रवृत्त होते हुए भी आन्तर निश्चय में किसी प्रकार का विकार नहीं होता ।

देखने वाले अपनी दृष्टि से देखते हैं परन्तु ज्ञानी की दृष्टि वास्तविक होने से वास्तविक ही देखता है जैसे एक स्थान पर एक मटका पड़ा हुआ है, एक मनुष्य मटके को देखते हुए और उससे व्यवहार करते हुए वस्तु स्वरुप मट्टी है ऐसे जानता है ऐसा देखने वाला ज्ञानी पुरुप ही है जो अवच्छिन्न जीव है । उस मटके को दूसरा मनुष्य देखता है वह केवल व्यवहार के मटके को देखता है उसका वास्तविक स्वरूप मट्टी है उसका उसे ख्याल भी नहीं होता ऐसे देखने वाला व्यवहारिक जीव चिदाभास है और तीसरा मनुष्य मटके को मटका न देखते हुए ठीकरा देखता है उसे मटका समझता है उसे व्यवहारिक मटका और उसमें रही हुई सच्ची मट्टी का भान नहीं होता यह जानने वाला स्वप्न कल्पित जीव है ।

स्वप्न कल्पित जीव अवच्छिन्न कूटस्थ को और व्यवहारिक चिदाभास को ढांपकर बना है और व्यवहारिक चिदाभास पारमार्थिक अवच्छिन्न जीव को ढांप कर बना है इससे उसे स्वप्न जीव मिथ्या मालूम होता है और अवच्छिन्न का बोध नहीं होता और अवच्छिन्न जीव—जो जीवन्मुक्त ज्ञानी है उसे तो व्यवहारिक चिदाभास और स्वप्न कल्पित दोनों ही मिथ्या मालूम होते हैं यानी जैसे सबको स्वप्न कल्पित झूँठा होता है उसमें शंका नहीं होती । वैसे ही ज्ञानी पुरुप को संपूर्ण जगत् शंका रहित झूँठा होता है । आन्तर में दृढ़ता से झूँठ हुआ है इसीसे व्यवहार होते हुए भी आन्तर चलित नहीं होता ।

जगत् में ऐसे भी कई पदार्थ हैं कि व्यवहार में कुछ आते हैं और समझे कुछ जाते हैं। जैसे आकाश नीला दीखता है परन्तु आकाश को ठीक जानने वाला पुरुष उसमें नीला रंग है ऐसा समझ कर रंग लेने की इच्छा नहीं करता उसे खबर है कि रंग दीखता है परन्तु अवकाश रूप ही है रंग का नाम निशान भी नहीं है ऐसे ही ज्ञानी पुरुष आत्म बोध के पश्चात् संपूर्ण व्यवहार को देखता है, व्यवहार करता है तो भी उसे पारमार्थिक सत्य है ऐसा कभी भी नहीं मानता; दीखता है, सब होता है परन्तु वास्तविक यह कुछ नहीं है ऐसा मिथ्यात्व का परिपक्व निश्चय होता है। किसी अवस्था में भी जगत् सच्चा है ऐसी भूल नहीं होती। अपना और औरों के सब व्यवहार को देखने मात्र ही मानता है सच्चा नहीं। ऐसे व्यवहारिक चिदाभास को भी मिथ्या ही मानता है और सुख दुःख जन्म मरण भी चिदाभास से होने वाले पारमार्थिक में मिथ्या ही है वास्तविक तत्त्व अद्वैत परब्रह्म ही है ऐसे जानता है।

माधुर्य द्रव शैत्यादि
नीरधर्मास्तरङ्गके।
अनुगम्याथ तन्निष्ठे
फेनेप्यनुगता यथा ॥ ४३ ॥

अर्थः—जैसे जलके धर्म मधुरता, द्रवता और शीतलता ये तरंग में रहते हैं वैसे ही फेन में भी अनुगत हैं।

विवेचन।

शंकाः—स्वप्न कल्पित और चिदाभास को और स्वप्न जगत् और जाग्रत जगत् को झूँठा कहने से, माया को जड़ कहने से

उसीमें किसी प्रकार की भी चेष्टा न होना चाहिये और चेष्टा होती है चेतनता दीखती है तब वे किस प्रकार से मिथ्या हैं। मिथ्या पदार्थ में चेतनता नहीं होती चिदाभास चेतन है और स्वप्न कल्पित में भी चेतनता है यह चेतनता कहां से आई ? चिदाभास को झूँठा कहने से उसने जो कुछ पाप पुण्य किया और उस करके जन्मांतर को प्राप्त होता है यह सब ही झूँठा हुआ और उसको बताने वाले शास्त्र जो विधि और निषेध रूप हैं वे भी झूँठे हुए ऐसे सब झूँठा होने से आस्तिकता ही न रही नास्तिकता ही प्राप्त हुई।

समाधानः—स्वप्न कल्पित और चिदाभास को झूँठा कहने से यह मतलब है कि जैसा पारमार्थिक सत्य है ऐसा सत्य न होने से झूँठा है। शास्त्र में उसे अनिर्वचनीय भी कहा है। चिदाभास और स्वप्न कल्पित झूँठे हैं तो भी चिदाभास का आधार और स्वप्न कल्पित का परंपरा से आधार परब्रह्म पारमार्थिक होने से, झूँठ में भी सत होने का भास होता है। आधार रहित झूँठा होता तो ठीक २ जड़ और क्रिया रहित ही होता परन्तु सत के आधार में टिका हुआ होने से चेतनता वाला और क्रिया करने वाला होजाता है। उसमें जो चेतनता दीखती है वह चेतन की विशेषता ही प्रतीत होती है क्रिया प्रकृति की है वह भी चेतन युक्त क्रिया करने में समर्थ होती है। चिदाभास इस प्रकार जड़ और चेतनका अन्योन्याध्यास करके बना है। चिदाभास में परिच्छिन्नता–जड़ता मायासे है और उसमें चेतन चेतन का है दोनों के मेल से परिच्छिन्न चेतनता मालूम होती है। चेतन में परिच्छिन्नता और परिच्छिन्न में चेतनता नहीं यह जो दीखता है सो मायिक है यह दोनों का मिलान व्यर्थ है अविद्या में है और अविद्या की

दृष्टि से है इसीसे जड़ चेतन के मेल रूप ग्रन्थि को-हृदय ग्रन्थि को झूँठ कहा है।

चिदाभास रूप जीव ही जगत् में कर्ता भोक्ता है और वह ही जन्म जन्मान्तर को प्राप्त होता है अनादि अविद्या से उसकी स्थिति है पारमार्थिक सत्ता में जैसा वह झूँठा है ऐसे ही उसने किये हुए शुभाशुभ कर्म, गमनागमन और उसको दिखलाने वाले शास्त्र सब कुछ झूँठे ही हैं। शास्त्र गुरु और ब्रह्मांड को मिथ्या कहने से तू चौंकता है यह तेरा गाढ़ अज्ञान है व्यवहारिक झूँठे नहीं हैं जो पारमार्थिक सत्तामें पहुंचा हुआ है उसी को व्यवहारिक मिथ्या है जो व्यवहारिक में है उसी के लिये व्यवहार—जगत् सच्चा है क्योंकि उसमें जो जो फल होता है उसका उसे सच्चा अनुभव होता है उसको तो पाप पुण्य शास्त्र गुरु ईश्वर सब सच्चे ही हैं। दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् ही यह सब झूँठे हैं ऐसा यथार्थ अनुभव होता है दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान के बिना मुख से झूँठा कहने वाले को जगत् और पाप पुण्य झूँठे नहीं हो सकते।

जब तक मनुष्य मार्गको भूल गया है तब तक मार्ग दिखलाने वाले पर श्रद्धा रखनी पड़ती है यदि श्रद्धा न रखे तो मार्ग में आगे जा नहीं सकता वहां श्रद्धा का रखना आस्था है ऐसे अज्ञान दशा में शास्त्रकारों ने जिसको जानने के लिये श्रद्धा का कथन किया था जब वह शुद्ध स्वस्वरूप को प्राप्त होता है उसका प्रत्यक्ष होता है, उसके सिवाय उसकी निगाह में अन्य कोई तत्त्व ही नहीं है तब आस्तिकता और नास्तिकता क्या ? वह आस्तिकता किस में करे उसे तो संपूर्ण अपना रूप होजाता है।

अविद्या कृत चिदाभास और स्वप्न कल्पित पदार्थ मिथ्या ही हैं क्योंकि अविद्या स्वयम् मिथ्या होने से उसकी उपाधि से युक्त उपाधि धर्मों की जहां विशेषता है वे सब पदार्थ मिथ्या ही

हैं। माया का आधार सत्य होने से माया और उसकी विक्रिया उस आधार रूप चैतन्य का विवर्त है। चैतन्य का विवर्त सम्पूर्ण ब्रह्मांड और ब्रह्मांड के जीव हैं और वे ही माया के कार्य हैं। चैतन्य में विशेष रूप से जगत् का भास होता है इसीसे विवर्त है चैतन्य में विशेष रूप से वर्तने से विवर्त है और माया में विक्रिया होकर भासती है इसीसे माया का कार्य कहा गया है। एक परब्रह्म सिवाय दूसरा कुछ नहीं है तब माया कहां से आई मायाको झूँठ कहा है वह किस प्रकार है? उसे समझाते हैं।

आरंभवाद और परिणामवाद अद्वैत सिद्धांत में पहुंचने के लिये असमर्थ होने से विवर्तवाद की रीति से समझाते हैं। झूँठ में सत्य का भान क्यों होता है? माया सत्य क्यों भासती है? झूँठ सत्यको क्यों ढांपता है? उसके लिये वस्तु धर्म का विवेचन करते हैं। जल एक ही है उसके धर्म मधुरता, द्रवता और शीतलता हैं। मिठास को मधुरता कहते हैं, शास्त्र में जल को मधुर ही कहा है जो बहुत पतला होता है लुढ़कने वाला नीचे स्थान में गिरने वाले को द्रवता कहते हैं और ठंडे को शीतल कहते हैं यह तीनों जलके धर्म हैं, जल मधुर लुढ़कने वाला और ठंडा है एक जल के ही तीन धर्म भिन्न हुए। जल के तरंग बुदबुदे आदि होते हैं। जल के जो धर्म हैं वह तरंग में आते हैं, जलके तरंग में वही धर्म है जो जल में है फिर वे ही धर्म बुदबुदे झाग में भी होते हैं।

जल एक पदार्थ है अथाह है उसी में स्थान भेद है संग दोष से जल अनेक प्रकार के होते हैं। हवा के वेग से नाम रूप वाला तरंग होता है जो हद वाला उत्पन्न हो होकर नाश को प्राप्त होता है। जल में से जल को न छोड़ते हुए विकार को प्राप्त होकर तरंग की उत्पत्ति होती है, तरंग जल का विशेष रूप ही है, जल

ही विशेषता से तरंग होकर प्रतीत होता है। तरंग की आदि अंत और मध्य में जल ही है, जल में से तरंग की उत्पत्ति स्थिति और नाश कथन मात्र है झूँठ है उपाधिकृत परिच्छिन्न भास मात्र है इसीसे उसमें भी वस्तु रूप जल ही है और उसी में से तरंग बुदबुदे और झाग आदि का दीखना जलका विवर्त है यह विवर्त उत्पत्ति नाश वाला होने से माया का कार्य है यथार्थ वस्तु जल ही है इसीसे जल के धर्म ही उसी में प्रवृत होते हैं।

अथवा सुवर्ण ही वस्तु है, सुवर्णके धर्म पीला रंग भारीपना और चमक है, सुवर्ण से बना गहना सुवर्ण का विवर्त है क्योंकि वह विशेष रूप से वर्तता है और नाम रूप माया का होने से माया का कार्य है। गहने में भी सुवर्ण का जो रंग है वह रंग होता है सुवर्ण का भारीपना भी होता है और सुवर्ण की चमक भी होती है। सुवर्ण का गहना उत्पत्ति नाश वाला परिच्छिन्न होने से विकारी है और अविकारी ऐसे सुवर्ण के धर्म गहने में वर्तते हैं।

अथवा मृतिका ही वस्तु है मृतिका जड़ स्थूल और सख्त है यह मृतिका के धर्म हैं। मृतिका जो विशेष रूप से वर्तती है ऐसा मटका मृतिका का विवर्त है और माया का परिणाम है मटके में भी मृतिका के धर्म जड़ स्थूल और सख्ती होती है यानी वस्तु के धर्म वस्तु के विवर्त और माया-अविद्या के कार्य में भी वर्तता है।

साक्षिस्थाः सच्चिदानन्दाः
सम्बन्धाद्व्यावहारिके।
तद्द्वारेणानुगच्छन्ति
तथैव प्रातिभासिके ॥४४॥

अर्थः—वैसे ही साक्षी में स्थित सत् चित् आनंद व्यवहारिक जीवों में अनुगत होकर उसके द्वारा प्रातिभासिक में भी भासित होते हैं।

विवेचन।

साक्षी सच्चिदानंद स्वरूप है, त्रिकाल अबाधित अस्तित्व सत् है, एक रस अखंड चैतन्य चित् है और अखंड आनंद-प्रियता आनंद है। ऊपर जिस प्रकार जल के धर्म मधुरता, द्रवता और शीतलता है वे धर्म तरंग में अनुगत है, और फेन में भी प्रतीत होते हैं, जो मृतिका के धर्म हैं वे घट में भी प्रतीत होते हैं; इसी प्रकार परब्रह्म के स्वरूप धर्म अथवा साक्षी के धर्म जो सत् चित् आनंद है वे चिदाभास में भी प्रतीत होते हैं और जैसे जल के धर्म तरंग में से बुदबुदे या झाग में भी प्रतीत होते हैं ऐसे ही साक्षी के सत् चित् आनंद ये धर्म जाग्रत में और जाग्रत में से स्वप्न कल्पित में भी भासते हैं। साक्षी का सत अबाधित है वह बाधित परिच्छिन्न होकर चिदाभास में व्यवहारिक प्रतीत होता है ऐसे ही चित् और आनंद भी बाधित होकर प्रतीत होते हैं। सत् चित् और आनंद की अखंडता-पारमर्थिकता चिदाभास में नहीं होती ऐसे ही चिदाभास की व्यवहारिकता का सत् चित् आनंद न रह कर स्वप्न कल्पित जीवमें भास मात्र होता है; इस प्रकार साक्षी का ही सत् चित् आनंद उपाधि के योग से बाधित होकर चिदाभास में और स्वप्न कल्पित में मालूम होता है। चिदाभास और स्वप्न कल्पित साक्षी का सत् चित् आनंद लेकर के ही व्यवहार करने के लिये समर्थ होता है।

जैसे जलके तरंग में तरंग नाम है और लंबाकृतिरूप है इससे युक्त हुए जलके धर्म तरंगमें वर्तते हैं, ऐसे ही अन्तःकरणमें स्थित चिदाभास नाम है, लौकिक चेतनता रूप है उसमें भी साक्षी के धर्म सत् चित् आनंद वर्तते हैं ऐसे ही स्वप्न कल्पित में समझना चाहिये।

शंका:—सत् चित् और आनंद परब्रह्म का स्वरूप है-पारमार्थिक है वह व्यवहारिक सत्ता के चिदाभास में किस प्रकार आते हैं ? जो जिस सत्ता का होता है वह उसी सत्ता में ही रहता है दूसरी सत्ता में किस प्रकार आवे ? इसी से परब्रह्म रूप साक्षी का सत् चित् और आनंद चिदाभास में नहीं आ सकता।

समाधान:—सब सत्तायें स्वतंत्र हों तब तो तेरे कहने के समान हो सकता है परन्तु पारमार्थिक सत्ता में अन्य दोनों सत्ता टिकी हुई हैं, इस कारण से ही आधार की चमक आधेय में भी आ सकती है। व्यवहारिक सत्ता का आधार पारमार्थिक सत्ता है और प्रातिभासिक सत्ताका आधार व्यवहारिक सत्ता है। जैसे कुछ अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी का सर्प रूप से भान होता है, सर्प काल्पनिक है, काल्पनिक का प्रत्यक्ष नहीं होता "यह सर्प है" उस में यह प्रत्यक्ष को दिखलाता है और "है" अस्तित्व कायम करता है यह और है दोनों व्यवहारिक सत्ता के हैं वे प्रातिभासिक सत्ता में आते हैं; इसी प्रकार साक्षीका सत् चित् और आनंद जो पारमार्थिक सत्ता का है वह चिदाभास जो व्यवहारिक सत्ता का है उस में आते हैं। साक्षी का सत् चित् आनंद चिदाभास में मालूम होते हैं इसी प्रकार चिदाभास में से सत् चित् और आनंद की अनुवृत्ति स्वप्न कल्पित में भी होती है। तीनों अवस्था के सत् चित् आनंद में अवस्था के भेद के कारण से भेद है, पारमार्थिक में

सत् चित् आनन्द पारमार्थिक है ऐसे व्यवहार वाला व्यवहारिक और प्रातिभाखिक वाला प्रातिभासिक है।

शंकाः—सत् चित् और आनंद जो सामान्य व्यापक है वह टुकड़ा रूप और विशेषता वाला कैसे हुआ ? चिदाभास में सत् चित् और आनंद भिन्न २ होते हैं और वे परब्रह्म के सत् की अपेक्षा अनेक और तुच्छ क्यों है ?

समाधानः—तुझे जो अन्तर दीखता है वह अज्ञान का है, अज्ञान से बने चिदाभास और स्वप्न कल्पित दोनों मिथ्या हैं इसीसे व्यवहार की अनेकता भी अज्ञान में है अनेकता का भान ही विशेषता वाला है। अन्तःकरण निर्मल जल अथवा कांच के समान है जैसे एक ही सूर्य का प्रतिबिंब अनेक पात्रों में अनेक होता है इसी प्रकार साक्षी चेतन की दमक जितने अन्तःकरण हैं सब में होती है और स्वप्न कल्पित में चिदाभास की दमक होती है, ऐसे अनेक होता है और चिदाभास की अनेक वृत्तियां होने से पदार्थों में भी अनेकता प्रतीत होती है। अनेकता का हेतु अज्ञानकी परिछिन्नता है, उपाधि से अनेकता है।

परब्रह्म सामान्य चेतन है, विशेष चेतन चिदाभास में होता है क्योंकि उसे विशेष प्रकार से व्यवहार करना है, यह उसका मिथ्यापना ही है तो भी मिथ्या ऐसा व्यवहार का हेतु होता है। विशेषता वाला चिदाभास परिछिन्न होने से अल्प है महान् नहीं है और परब्रह्म का सामान्य चेतन तो विशेषता वाला न हो कर महान् है।

जैसे एक आतशी शीशेको धूपमें रखने से सूर्यका प्रकाश उसमें होकर बाहर बिन्दु रूप से पड़ता है यह प्रकाश रुई को जला देता

है इसी से विशेप है सूर्य का प्रकाश रुई को जलाता नहीं इसी से सामान्य है, फिर वह विन्दु का प्रतिबिंब दिवाल के ऊपर पड़ा, वह जलाने वाले विन्दु से विलक्षण हुआ, देखने मात्र का है। अंतःकरण आतशी शीशा है। सूर्य साक्षी चेतन है। साक्षी चेतन का प्रकाश अन्तःकरण में से विन्दु रूप बाहर पड़ा वह चिदाभास हुआ और चिदाभास में से पड़ा हुआ प्रकाश स्वप्न कल्पित जीव हुआ। साक्षी चेतन ज्ञान स्वरूप है चिदाभास अज्ञान से है और स्वप्न कल्पित अज्ञान और निद्रा दोष से युक्त है।

एक राजा अपने राज्य में आनंद पूर्वक राज्य करता था, जिस देश में उसका राज्य था, वहां अखंड सूर्य का स्वयम् प्रकाश रहता था, रात्रि कभी भी होती नहीं थी, वहां के लोगों को रात्रि कैसी होती है उसका ज्ञान भी नहीं था। राजा स्वरूप वाला, तेजस्वी और अखंड ब्रह्मचर्य वाला था। उस चक्रवर्ती महाराजा को किसी प्रकार का दुःख नहीं था। एक दिन वह अपने राज्य की सरहद पर घूम रहा था वहां एक अत्यंत सौंदर्य वाली राक्षसी देखने में आई। राजा ने ऐसा सुन्दर स्त्री स्वरूप कभी देखा नहीं था। मन से भी जिसका ब्रह्मचर्य कभी खंडित हुआ नहीं है ऐसा राजा स्त्री को देख कर मोहित हुआ, राक्षसी के नेत्र कटाक्ष से उसका हृदय विदीर्ण हुआ प्रेम से जैसे ही उसने उस राक्षसी को देखा वैसे ही वह अपने को भूल गया जो अखंड था वह खंड हुआ और उसका जीवाराम नाम पड़ा, राक्षसी को अपनी स्त्री बना कर उसके साथ घर बना कर रहने लगा वह अंधेरे में पड़ा, अंधेरे में जो कुछ थोड़ा दीखता था उसमें अपना सब व्यवहार करता था। ऐसे महान् चक्रवर्ती राजा एक सामान्य मनुष्य के समान बन गया और महनत मजदूरी कर के अपना उदर निर्वाह करने लगा।

अनेक प्रकार के सुख दुःखों की हिलोरों में हिलता रहा, कई बाल बच्चे हो गये उनके आपस के कलह, किसी का विवाह, किसी की बीमारी और मृत्यु आदि में दुःखी हो होकर फंसता गया। एक दिन उसके घर पर एक साधू भिक्षा मांगने आया जीवाराम ने भिक्षा न देते हुए कटु वचन कहे साधु ने उसे शाप दिया कि रात्रि में तेरा यह स्वरूप भी न रहेगा अनेक प्रकार के जन्तु होकर तू भ्रमण करेगा। साधु के शाप से जीवाराम रात्रि में कभी पक्षी बनकर घूमता कभी नदी कभी कूप हो जाता, कभी राक्षस बनकर भयंकर चेष्टा करे और कभी डाकुओं से लूटा जाता था ऐसा व्यवहार होता था। दिन में जीवाराम अपने जीवाराम का व्यवहार करता था, रात्रि के सब व्यवहार की स्मृति जीवाराम को रहती थी परन्तु रात्रि में जब अनेक प्रकार के भोग भोगता था तब उसे दिन का जीवाराम और उसके कोई कार्य की स्मृति रहती नहीं थी। इस प्रकार अनंत काल तक वह भटकता रहा। बारंबार कष्ट पाने से जीवाराम को इन दुःखों से किस प्रकार निवृत्त होऊं ऐसा विचार उत्पन्न हुआ। जो गृहस्थी उसे रमणीक भासती थी वह अब दुःख रूप भासने लगी। (दुःखों से निवृत्त होने के लिये अनेक तीर्थों में भ्रमण किया अनेक प्रकार के यज्ञ किये परन्तु कष्टसे निवृत्त न हुआ तब गृहस्थी को छोड़ कर एकान्त में जाकर तपश्चर्या करने लगा। जब कितने ही काल तक तप करने से उसके अंतःकरण की शुद्धि हुई तब एक महात्मा उसकी झोंपड़ी पर आ पहुंचा, उसने प्रेम से सत्कार किया और दुःख निवृत्ति के लिये शिष्य भाव से उपाय पूछा। महात्मा ने उसे "अहं ब्रह्मास्मि" महा मंत्र का उपदेश दिया। आत्म सूर्य प्रकाश होते ही संपूर्ण राक्षसी माया निवृत्त हो गई ? उजेला भक् हो गया

पूर्व अखंड अविचल होने की स्मृति प्राप्त हुई स्वरूपाकार आनंद मय बन गया।

चक्रवर्ती महाराजा आत्मा था, राक्षसी बुद्धि थी उसके संयोग निगाह मात्र से जीवाराम बन गया साधु का शाप रूप निद्रा दोष था। आत्मा का सत् चित् आनन्द अखंड था पर जीवाराम में माया से युक्त हुए और निद्रा दोष में वे भास मात्र ही रह जाते थे।

इस प्रकार तीन जीवों का वर्णन सत् चित् आनन्द का एक में से दूसरे में आना और विकारी होना दिखलाया अब आगे के श्लोक में उसके लय को दिखलाते हैं।

लये फेनस्यतद्धर्माः
द्रवाद्याःस्युस्तरंग के।
तस्यापि विलये नीरे
तिष्ठन्त्येते यथा पुरा ॥४५॥

अर्थः—फेन के लय हो जाने पर उसके द्रवादिक धर्म तरंग में रहते हैं और तरंग के लय हो जाने पर पूर्ववत् जल में ठहर जाते हैं।

विवेचन।

मधुरता द्रवता और शीतलता जल के धर्म तरंग में रह कर झाग में आये थे, जब झाग का लय जल में हो जाता है तब

उसके धर्म का भी लय जल में हो जाता है। कारण के धर्म कार्य में आते हैं, जब कार्य का लय कारण में होता है तब कार्य के धर्मका भी लय कारणमें होजाता है, क्योंकि वे धर्म कार्य में स्वतः सिद्ध नहीं थे, कारण में से ही आये हुए थे जैसे घट में मृतिका के आये हुए धर्म जब घट का नाश हो जाता है तब मृतिका ही में रहते हैं, घट में मृतिका के आये हुए धर्म मृतिका में ही आजाते हैं। जैसे कोई मनुष्य किसी राजा का दीवान हो राजा की सत्ता से दीवान में दीवान की सत्ता आती है जब दीवान को नौकरी से निकाल देता है तब दीवान की सत्ता जो राजा में से आई थी राजा में चली जाती है।

शंकाः—तुमने कारण के धर्म कार्य में आते हैं यह नियम से दिखलाया और जल तरंग के भाव से समझाया परन्तु आत्मा का कार्य चिदाभास नहीं है स्वप्न कल्पित भी नहीं है तब आत्मा के धर्म चिदाभास में और चिदाभास के धर्म स्वप्न कल्पित में कैसे आ सकते हैं?

समाधानः—तूने सत्ता के भेद से कार्य कारण की असंभवता दिखलाई परन्तु यहां कार्य कारण दो प्रकार से हैं। आत्मा का विवर्त चिदाभास और स्वप्न कल्पित है इसी से विवर्त रूप से कार्य कारण भाव है और वे ही चिदाभास और स्वप्न कल्पित जीव माया का कार्य है उनमें जो कार्यत्व हैं वे माया के हैं। माया सम्पूर्ण प्रपंच का उपादान कारण है, इसी प्रकार चिदाभास और स्वप्न कल्पित का अधिष्ठान चेतन होने से पारमार्थिक सत्ता में है और माया का कार्य होने से व्यवहारिक सत्ता में है। व्यवहारिक और प्रातिभासिक सत्ता में पारमार्थिकता का बोध नहीं होता परन्तु आधार किसी प्रकार निवृत्त हो नहीं सकता।

सत् चित् और आनन्द साक्षीमें, चिदाभासमें और स्वप्न कल्पित में विकार रहित ही रहता है और चिदाभास और स्वप्न कल्पित में सत् चित् आनन्दमें विकार की प्रतीति होती हैं, यह विकार माया का कार्य है और विकारकी उत्पत्ति भी मायाका कार्य है। भिन्न२ पदार्थों में, देखने वाले में सत् चित् और आनन्द का देश काल वस्तु से टुकड़ा माया से है।

शंका:—साक्षी और माया, पारमार्थिक सत्ता और व्यवहारिक सत्ता के होने से एक दूसरे से विरुद्ध धर्म वाले हैं तब एक काल में एक पदार्थ में अयुक्त हैं एक में दो सत्ता कैसे रह सकती हैं।

समाधान:—पारमार्थिक सत्ता वाले साक्षी को व्यवहारिक प्रपंच का विरोध नहीं है क्योंकि पारमार्थिक समानता का हेतु है और व्यवहार विशेपता से होता है, जो विरोध हो तो जहां अखंड परब्रह्म व्यापक तत्त्व है वहां माया चिदाभास ही न हो और चिदाभास में स्वप्न कल्पित की प्रतीति भी न हो इसी से सिद्ध होता है कि पारमार्थिक में ही व्यवहारिक सत्ता है। दोनों एक दूसरे से विलक्षण है परन्तु विरोध नहीं है। जैसे रात्रि के चंद्र का सूर्य से विरोध है परन्तु चित्र के चंद्र से सूर्य का विरोध नहीं है, दिवस में भी चित्र का चंद्र दीखता है; वैसे माया का व्यवहार झूठा होने से पारमार्थिक तत्त्व में हो सकता है माया में फँसे हुए को पारमार्थिकका भान नहीं होता तो भी पारमार्थिक अस्तित्व है। एक मनुष्य अपनी बेटी को देखता है तब उसे बेटी दिखलाई देती है और उस स्त्री को जब उसका पति देखता है तब उसे अपनी स्त्री दिखाई देती है। देखने वाले की दृष्टि से दृश्य के भाव में अन्तर है दृश्य

पदार्थ समान है ऐसे ज्ञानी पुरुष व्यवहार में भी पारमार्थिक तत्त्व को देखता है और अज्ञानी व्यवहार के भाव से पदार्थ को देखता है, ज्ञानी के आन्तर में व्यवहार को देखते हुए उसका मिथ्यात्व ही रहता है और अज्ञानी को आन्तर में व्यवहार की सत्यता होती है उसे पारमार्थिक तत्त्व यह और मायिक तत्त्व यह ऐसा स्पष्ट प्रतीत नहीं होता ?

शंका:—जैसे जाग्रत होने से स्वप्न की निवृत्ति हो जाती है, जाग्रत होने के बाद स्वप्नका व्यवहार नहीं होता; इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों को भी अपने स्वरूप में जाग्रत होने के बाद जगत् का व्य-हार न होना चाहिये और व्यवहार होता है तब वह स्वरूप में जाग्रत कैसे हुआ ?

समाधान:—तू विषयान्तर करता है तो भी मैं समझाता हूँ श्रवण कर। ज्ञानी पुरुष की स्थिति परमतत्त्व में होती है, जैसे परब्रह्म का विरोध माया और माया के कार्य से नहीं है इसी प्रकार तत्त्व स्थित ज्ञानी को व्यवहार से विरोध नहीं होता। उसका अज्ञान जल कर खाक हो गया है, उसको व्यवहार जली हुई अविद्या की खाक रूप है, उसके निश्चयमें व्यवहारकी सत्यता नहीं होती। अज्ञानी की दृष्टि में ज्ञानी का व्यवहार दीखता है ज्ञानी को तो अज्ञानी के समान व्यवहार ही नहीं है। जली हुई अविद्या की खाक जब तक उड़ नहीं जाती तब तक दीखती है। शरीर के कुछ शेष प्रारब्ध का वर्ताव होने से दूसरे मनुष्यों को क्रिया होती मालूम देती है ज्ञानी पुरुष स्वयम् क्रिया करता नहीं उसके शरीर में पूर्व प्रारब्ध का प्रवाह ही कर्ता रूप से वर्तता है, वह स्वयम् अकर्ता ही है। जिसके हृदय में व्यवहार का विरोध

है वह पूर्ण ज्ञानी भी नहीं है, व्यवहार होने और न होने में ज्ञानी शरीर और अंतःकरण के साथ मिलता नहीं है, तटस्थ ही रहता है।

जैसे मनुष्य नींद में से जाग्रत हो गया हो तो भी थोड़े समय तक नींद की खुमारी आंख में भरी रहती है, जाग्रत हुआ तो भी जैसे नींद पृथक् नहीं हुई है वैसे अज्ञान अवस्था में अनन्त काल का भटका हुआ था उसमें से चेत होते हुए भी पूर्व का भाव कुछ समय तक रहता है। ज्ञानी की शारीरिक चेष्टा का होना इस प्रकार का है जैसे कोई पेड़ की जड़ काट डाली हो और पेड़ खड़ा हो तब कुछ समय तक वह दूसरों को हरा ही दीखता है पेड़ का नीचे से खींचा हुआ रस जब तक ऊपर चढ़ कर फैलता रहता है तब तक फूल भी खिलते रहते हैं ऐसे ही ज्ञान के पश्चात् जीवन्मुक्त की स्थिति होती है।

पारमार्थिक में जिस प्रकार व्यवहारिक है ऐसे व्यवहारिक में प्रातिभासिक है, प्रातिभासिक जो स्वप्न कल्पित आदि है उसमें व्यवहारिक का भान नहीं होता तो भी प्रातिभासिक व्यवहारिक में ही होताहै। जैसे अंधेरे में सूखा पेड़ के ठूंठ को देख कर मनुष्य को ठूंठ होने का बोध नहीं होता है कोई चोर अथवा भूत है ऐसा समझकर डरता है, जब किसी ने कहा अथवा बिजली की बत्ती से देखा तो मालूम हुआ कि पुरुष नहीं है, लकड़ी का ठूठ है, भ्रान्ति हुई थी भ्रान्ति का पुरुष वास्तविक नहीं था उसमें "है" "दीखता है" और "अप्रिय है" ऐसा जो था वह लकड़ी के ठूँठ में लय होगया। लकड़ी का ठूँठ है लकड़ी ठूंठ दीखता है लकड़ी का ठूँठ प्रिय है ऐसा होता है, इसी प्रकार झाग के धर्म का लय तरंग में हो जाता है।

प्रातिभासिक जीवस्य
लयेस्युर्व्यावहारिके ।
तल्लये सच्चिदानंदाः
पर्यवस्यन्ति साक्षिणि ॥२६॥

अर्थः—इसी प्रकार प्रातिभासिक जीव का लय होने पर सत् चित् आनंद धर्म व्यवहारिक जीव में ठहरते हैं और उसका भी लय हो जाने पर उन धर्मों की साक्षी में समाप्ति होती है।

विवेचन ।

जैसे भाग के धर्मों का लय तरंग में और तरंग के धर्मों का लय जल में होता है ऐसे प्रातिभासिक जो स्वप्न आदि भ्रान्ति स्वरूप है उसमें दीखते हुए सत् चित् आनन्द धर्मों का लय व्यवहारिक चिदाभास रूप जो जीव है उसमें होता है और जब स्वस्वरूप जो साक्षी है उसका बोध होता है तब व्यवहारिक सत्तामें से पारमार्थिक सत्तामें पहुँचते हैं इस समय पर व्यवहारिक चिदाभास और उसमें दीखते हुए सत् चित् और आनन्द धर्मों का लय पारमार्थिक साक्षी में होता है। जैसे भ्रांति के धर्म सहित भ्रांति का लय जाग्रत जीव में होता है, इसी प्रकार जब स्वस्वरूप का बोध होता है तब व्यवहारिक जीव सहित उसके धर्म का लय अन्तिम साक्षी में हो जाता है। साक्षी ही सबका अन्तिम आधार होने से उसमें ही सब का पर्यवसान है। स्वप्न कल्पित और भ्रांति के व्यवहारमें अनेक भेद होते हैं यह सब सत् चित् और आनन्द

से युक्त होते हैं वे बदल कर जाग्रत अवस्था वाले जीव में अन्य ही भिन्नता युक्त होते हैं और स्वस्वरूप के बोध में सबका लय एक रूप अद्वैत में होता है।

स्वप्न प्रतिदिन होते रहते हैं, स्वप्न निवृत्त होता है तब उसमें रहे हुए सत् चित् और आनन्दका लय अन्य कहीं न होते हुए जाग्रत जीव में ही होता है क्योंकि स्वप्न ही जिसका आधार है वह न रहने से उसके धर्म भी नहीं रहते और स्वप्न का आधार जो जाग्रत जीव है वह रहता है यह अनुभव सब किसी को है; इसी प्रकार पारमार्थिक साक्षी में जाग्रत जीव और उनके धर्मों का लय समझना चाहिये।

स्वप्न जीव होता है और निवृत्त होता है परन्तु जाग्रत जीवका ऐसा नहीं है। जाग्रत जीव अनादि अविद्या से है, जब उस अविद्या का नाश हो तब ही साक्षी में सबका पर्यवसान होता है। कोई कहे कि जैसे स्वप्न निवृत्त हो जाता है ऐसे स्वप्न में जाने से जाग्रत भी निवृत्त हो जाता है उसका उत्तर यह है कि जाग्रत का अभाव स्वप्न दोष से है जाग्रतकी निवृत्ति नहीं हुई है क्योंकि जन्मा हुआ शरीर और उसके सब भाव दबे हुए रहते हैं और स्वप्न के अनन्तर भी जाग्रत के व्यवहार का सिल सिला चलता रहता है।

मुमुक्षु अनादि अज्ञान से निवृत्त होना चाहता है, परन्तु अभी अज्ञान में है, इससे जब तक दृढ़ स्वरूप के बोध की प्राप्ति न हो तब तक शास्त्र वचनों के अनुसार सब का लय साक्षी में होता है ऐसा मान कर ज्ञान में प्रवृत्त होना चाहिये। जब श्रवण मनन और निदिध्यासनादि ज्ञान के अभ्यास से उपासना से अथवा निर्विकल्प

समाधि से आत्म साक्षात्कार होता है तब उसे प्रत्यक्ष बोध होता है कि शास्त्र में जिस प्रकार सब का लय साक्षी में कहा था वह ठीक ही है, एक परमतत्त्व सच्चिदानन्द ही शेष रहता है।

जैसे नदी के पास के खड्डे का पानी नदी में जाता है तब खड्डे का गदलापन भी उसी में चला जाता है, नदी में गदलापन नहीं रहता और जब नदी बढ़ती है तब नदी का पानी खड्डे में जाता है इस प्रकार खड्डा रूप प्रातिभासिक है और नदी व्यवहारिक है। नदी का पानी जब समुद्र में जाता है तब वहां से लौट कर फिर नदी में नहीं आता। समुद्र पारमार्थिक है इस प्रकार जब प्रातिभासिक सहित व्यवहारिक का लय जब साक्षी में होता है तब वहां से फिर लौट कर व्यवहारिक में नहीं आता। इस पारमार्थिक की प्राप्ति ही अन्तिम प्राप्ति है जिसे परमपद कहते हैं जब सब की साक्षी में अद्वैत रूप से स्थिति होती है तब साक्ष्य की अपेक्षा रहित उसे साक्षी भी नहीं कह सकते वह स्वयम् सिद्ध तत्त्व ही है।

प्रातिभासिक आदि स्वप्न हो होकर लयको प्राप्त होजाते हैं एक जिंदगी में ऐसे अनेक स्वप्न लय हुआ ही करते हैं, परन्तु व्यवहारिक जीवका साक्षीमें लय एक ही समय होता है, यह अज्ञानी जीवों के अनुभव में नहीं आता क्योंकि स्वप्नादिक के समान हो होकर निवृत्त नहीं होता। अनादि अविद्या से व्यवहारिक सत्ता को प्राप्त है जब अनादि अज्ञान की निवृत्ति होती है तब स्वस्वरूप ही शेष रहता है इस स्वरूप में से हटाकर व्यवहारिक सत्ता में लाने वाला कोई हेतु ही नहीं रहता, इसीसे व्यवहारिक सत्ता में रहने वाले जीव को पारमार्थिक सत्ता में सबका लय होने का अनुभव नहीं हो सकता।

शंका:—जैसे व्यवहारिक और प्रातिभासिक सत्ता बदला करती हैं; इसी प्रकार पारमार्थिक सत्ता भी बदल कर जीव और कोई उच्च अवस्था को प्राप्त होता होगा ?

समाधान:—साक्षी में जो स्थिति है वह अद्वैत अखंड परब्रह्म में ही स्थिति है इससे और कोई उच्च अवस्था नहीं है वह अपनी महिमा में आप स्थित है वहां परिछिन्नत्व न होने से वहां से कभी भी अन्य अवस्था में आना नहीं होता, यह ही परमपद है, सर्वाधार है।

शंका:—जब साक्षी ही व्यवहारिक अवस्था का जीव हुआ है तब ऐसे ही स्वरूप की प्राप्ति के पश्चात् फिर व्यवहारिक जीव क्यों न होगा ? परिछिन्नत्व प्रथम भी वहां नहीं था।

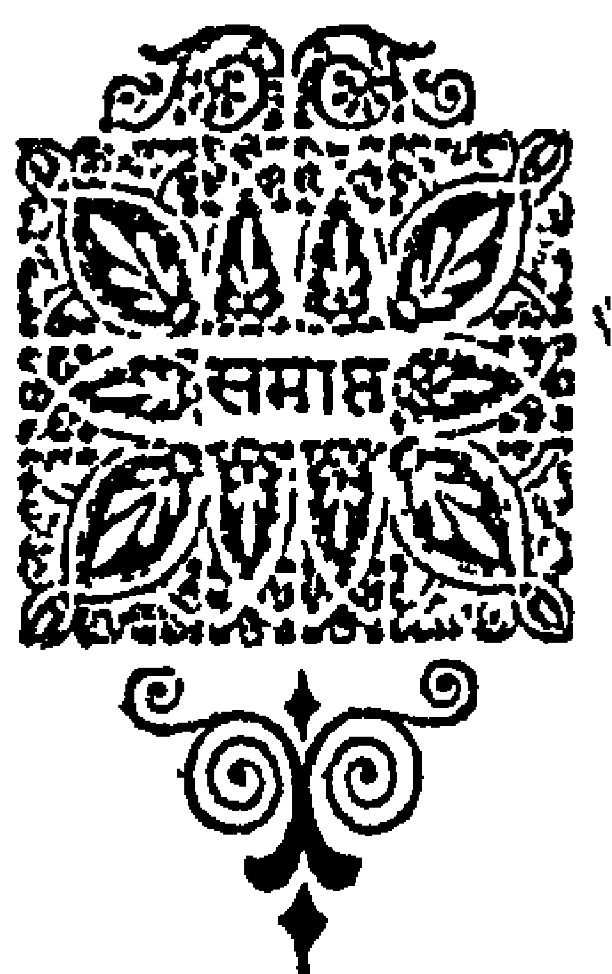
समाधान:—साक्षी व्यवहारिक जीव हुआ ही नहीं है। अविद्या से केवल व्यवहारिक जीव होने का भास होता है। शुद्ध स्वरूप कभी भी अविद्या से विकार को प्राप्त नहीं होता, अविद्या की समूल निवृत्ति से जीव व्यवहार में नहीं आता क्योंकि अविद्या की निवृत्ति के बाद व्यवहार का भान होने का कोई हेतु ही नहीं रहता।

शंका:—शुद्ध साक्षी में प्रथम अविद्या नहीं थी फिर अविद्या में आकर जीव हुआ, तब शुद्ध होने के बाद भी अविद्या फिर से लग जायगी ?

समाधान:—ऐसा नहीं होता। अविद्या कब की है उसका पता न होने से काल्पनिक अनादि है, इसीसे शुद्ध साक्षी को अविद्या लग गई, ऐसा नहीं कह सकते। अविद्या को अनादि

और सान्त भी कहा है इसीसे काल्पनिक अनादि होते हुए भी सान्त होजाती है। स्वस्वरूप का बोध होने के पश्चात् कभी भी अविद्या आ नहीं सकती। ज्ञान से समूल सान्त होजाती है।

इस प्रकार साक्षी में स्थिति करा कर ग्रन्थकार ग्रंथ की समाप्ति करते हैं। अनेक युक्तियों से जिसमें समझाया गया है ऐसा यह वाक्य सुधा—अमृत योग्य मुमुक्षु अधिकारियों को श्रवण, मनन, और निदिध्यासन से जगत की, जगत के अनेक प्रकार के दुःखों की, संपूर्ण अज्ञान की जड़ सहित निवृत्ति करता है और परमानन्द जो प्रत्येक का स्वस्वरूप है उसको प्राप्ति कराने वाला है। संसार में त्रिविध ताप से तपे हुए मुमुक्षुओं को अमृत की वर्षा से शीतल करने वाला, परमानन्द को देने वाला यह वाक्य सुधा अलौकिक अमृत है।



वेदान्त ...री क ... ी पुस्तकें ।

वेदान्त दीपिका—मुमुक्षुओं को सामान्यता से वारंवार उठने वाली शंकाओंका समाधान युक्ति पूर्वक दृष्टांत देकर किया गया है। सामान्य भाषा ज्ञान वाले भी बोध को प्राप्त करले ऐसी सरल और रोचक भाषा है । मू० रु० १॥)

चर्पट पंजरिका—श्रीमच्छङ्कराचार्य कृत "भजगोविन्दं भजगोविंदं" पद्यका समश्लोक पद्य सहित विस्तार वाला भाषा विवेचन है, दृष्टांत सहित है। मूल्य १)

उपासना—साकार, सगुण, निर्गुण कार्य ब्रह्म तथा कारण ब्रह्मकी उपासना है, गायत्री और ॐकार को भी समझाया है। उपासना की स्थिरता से एकाग्र चित्त द्वारा आत्म साक्षात्कार होता है। मूल्य ॥)

कौशल्य गीतावली—दो भाग में है। कविता रोचक सरल और ज्ञान के संस्कारों को प्रदीप्त करने वाली तथा श्रवण मनन और निदिध्यासन रूप है। प्रत्येक भाग का मूल्य ।=)

वेदान्त स्तोत्र संग्रह—वेदान्त के प्रतिभाशाली मुख्य २ चुने हुए २१ स्तोत्र का संग्रह है प्रत्येक स्तोत्र का अर्थ भी दिया है जो थोड़े पढ़े हुए मुमुक्षुओं को भी नित्य पाठ करने में और श्रवण मनन में उपयोगी है। मूल्य ॥) सब पुस्तकों का डाक खर्च अलग होगा।

व्यवस्थापक—वेदान्त केसरी,

बेलनगंज-आगरा।